॥ ओ३म् ॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥

अथर्व० का० १६ सू० ६२ म० १ ॥

प्रिय मोहि करौ देव, तथा राज समाज में ।
प्रिय सब दृष्टि वाले, औ शूद्र और अर्य में ॥

अथर्ववेद भाष्यम् ।

एकादशं काण्डम् ।

आर्यभाषायामनुवाद-भावार्थादिसहितं
संस्कृते व्याकरणनिरुक्तादिप्रमाणसमन्वितं च ।

श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिमश्रीरवीरचिरप्रतापि श्री
सयाजीरावगायकवाडाधिष्ठित बड़ोदेपुरीगतश्रावणमास-
दक्षिणापरीक्षायाम् ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु
लब्धदक्षिणेन

श्री पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदिना

निर्मितं प्रकाशितं च ।

Make me beloved among the Gods,
beloved among the Princes, make
Me dear to every one who sees,
to Sudra and to Aryanman.

Griffith's Trans. Atharv 19: 62 : 1

अयं ग्रन्थः पण्डित ओङ्कारनाथ वाजपेयिप्रबन्धेन
प्रयागनगरे ओंकार यन्त्रालये मुद्रितः ।

प्रथमावृत्तौ } संवत् १६७४ वि०
१००० पुस्तकानि } सन् १६१७ ई०

पता— पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, ५२ लूकर

१–सूक्त विवरण अथर्ववेद, काण्ड ११॥

सूक्त	सूक्त के प्रथम पद	देवता	उपदेश	छन्द
१	अग्ने जायस्वादिति	ब्रह्मौदन	ब्रह्मज्ञान से उन्नति	विराट् त्रिष्टुप् आदि
२	भवाशर्वौ मृडतंमाभि	भव, शर्व, रुद्र	शांति के लिये पुरुषार्थ	स्वराट् त्रिष्टुप् आदि
३(१)	तस्यौदनस्य बृहस्पतिः	ओदन	सृष्टि के पदार्थों का ज्ञान	आसुरी गायत्री आदि
(२)	ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा	तथा	बलविद्या	साम्नी त्रिष्टुप् आदि
(३)	एतद्वैब्रध्नस्यविष्टपं	तथा	ब्रह्मज्ञान से मोक्ष	आसुर्यनुष्टुप् आदि
४	प्राणाय नमो यस्य	प्राण	प्राण की महिमा	शङ्कुमती आदि
५	ब्रह्मचारीष्णंश्चरति	ब्रह्मचारी	ब्रह्मचर्य के महत्त्व	आर्षी त्रिष्टुप् आदि
६	अग्निंब्रूमो वनस्पती	अग्नि आदि	कष्ट हटाना	अनुष्टुप् आदि
७	उच्छिष्टे नाम रूपं	उच्छिष्ट	सब जगत के कारण परमात्मा	अनुष्टुप् आदि
८	यन्मन्युर्जायामावहत्	मन्यु	शरीर की रचना	अनुष्टुप् आदि
९	ये बाहवो या इषवो	अर्बुदि	राजा प्रजा के कर्तव्य	अनुष्टुप् आदि
१०	उत्तिष्ठत संनह्यध्वमु	त्रिषन्धिआदि	राजा प्रजा के कर्तव्य	अनुष्टुप् आदि

२–अथर्ववेद काण्ड ११ के मन्त्र अन्यवेदों में सम्पूर्ण वा कुछ भेद से॥

मन्त्र संख्या	मन्त्र	(काण्ड ११) सूक्त मन्त्र	ऋग्वेद, मण्डल सूक्त, मन्त्र	यजुर्वेद अध्याय, मन्त्र	सामवेद पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक इत्यादि
१	कृणुत धूमं वृषणः	१ । २	३ । २९ । ९		
२	मा नो महान्तमुत	२ । २९	१ । ११४ । ७	१६ । १५	
३	अभिक्रन्दन् स्तनयन्न	५ । १२	१ । १६४ । ४२		

॥ ओ३म् ॥

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।"

आनन्द समाचार ॥

[आप देखिये और अपने मित्रों को दिखाइये]

अथर्ववेदभाष्यम्—जिन वेदों की महिमा सब बड़े २ ऋषि, मुनि और योगी गाते आये हैं और विदेशी विद्वान् जिनका अर्थ खोजने में लग रहे हैं। वे अब तक संस्कृत में होने के कारण बड़े कठिन थे। ऋग्वेद, और यजुर्वेद और सामवेद का अर्थ तो भाषा में हो चुका है। परन्तु अथर्ववेद का अर्थ अभी तक नागरी भाषा में नहीं था, इस महात्रुटि को पूरा करने के लिये प्रयाग निवासी पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी ने उत्साह किया है। वे भाष्य को नागरी (हिन्दी) और संस्कृत में वेद, निघण्टु, निरुक्त, व्याकरणादि सत्य शास्त्रों के प्रमाण से बड़े परिश्रम के साथ बनाकर प्रकाशित कर रहे हैं।

भाष्य का क्रम इस प्रकार है। १—सूक्त के देवता, छन्द, उपदेश, २—सस्वर मूल मन्त्र ३—सस्वर पदपाठ, ४—मन्त्रों के शब्दों को कोष्ठ में देकर सान्वय भाषार्थ, ५—भावार्थ, ६ आवश्यक टिप्पणी, पाठान्तर, अनुरूप पाठादि, ७—प्रत्येक पृष्ठ में लाइन देकर सन्देह निवृत्ति के लिये शब्दों और क्रियाओं की व्याकरण निरुक्तादि प्रमाणों से सिद्धि।

इस वेद में २० छोटे बड़े कांड हैं, एक एक कांड का भावपूर्ण संक्षिप्त स्त्री पुरुषों के समझने योग्य अति सरल हिन्दी और संस्कृत भाष्य अल्प मूल्य में छपकर ग्राहकों के पास पहुंचता है। वेद प्रेमी श्रीमान् राजे, महाराजे, सेठ, साहूकार, विद्वान् और सर्व साधारण स्त्री पुरुष स्वाध्याय, पुस्तकालयों और पारितोषिकों के लिये भाष्य मंगावें और जगतपिता परमात्मा के पारमार्थिक और सांसारिक उपदेश, ब्रह्मविद्या, वैद्यकविद्या, शिल्पविद्या, राजविद्यादि अनेक क्रियाओं का तत्त्व जानकर आनन्द भोगें और धर्मात्मा पुरुषार्थी होकर कीर्ति पावें। छपाई उत्तम और कागज़ बढ़िया रायल अठपेजी है।

स्थायी ग्राहकों में नाम लिखानेवाले सज्जन २०) सैकड़ा छोड़कर पुस्तक वी० पी० वा नगद दाम पर पाते हैं। डाकव्यय ग्राहक देते हैं।

काण्ड	१ भूमिका सहित	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	पृष्ठ २,८५० लगभग
मूल्य	१।)	१।-)	१॥-)	२)	१॥।=)	३)	२।)	२)	२।)	२॥)	२।)	२२।)

काण्ड १२ छप रहा है। कांड १३ शीघ्र प्रकाशित होगा।

हवनमन्त्राः—धर्म शिक्षा का उपकारी पुस्तक—चारों वेदों के संगृहीत मन्त्र ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, हवनमन्त्र वामदेव्यगान सरल भाषा में शब्दार्थ सहित संशोधित बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ ६०, मूल्य।)॥

रुद्राध्यायः—प्रसिद्ध यजुर्वेद अध्याय १६ (नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः) ब्रह्मनिरूपक अर्थ संस्कृत, भाषा और अंग्रेज़ी में बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ १४८ मूल्य =)

रुद्राध्यायः—मूलमात्र बढ़िया रायल अठपेजी पृष्ठ १४ मूल्य)॥

वेदविद्[illegible] में विमान, नौका, अस्त्र शस्त्र निर्माण व्यापार, गृहस्थ, अतिथि, सभा, ब्रह्म[illegible] मूल्य =)॥

[illegible]ता—पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी
५२, लूकरगञ्ज, प्रयाग।

॥ ओ३म् ॥

अथर्ववेदः ॥

एकादशं काण्डम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् १ ॥

१-३७ ॥ ब्रह्मौदनो देवता ॥ १,२,५, विराट् त्रिष्टुप् ; ३ शक्वरी गर्भा त्रिष्टुप् ; ४, ६, १३, १४, १६, २१, २३, २९-३१, ३६, भुरिक् त्रिष्टुप् ; ७, १२, १९, २२, २६, २८, ३२-३४ त्रिष्टुप् ; ८ विराड् गायत्री ; ९, ११ जगती ; १०, १५ स्वराट् त्रिष्टुप् ; १७, ३७ विराड् जगती; १८, २५ भुरिग् जगती ; २० स्वराड् जगती ; २४ निचृदार्षी जगती ; २७ आर्षी जगती; ३५ निचृदुष्णिक् ॥

ब्रह्मज्ञानेनोन्नत्युपदेशः-ब्रह्मज्ञान से उन्नति का उपदेश ॥

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥ १ ॥

अग्ने । जायस्व । अदितिः । नाथिता । इयम् । ब्रह्म-ओदनम् । पचति । पुत्र-कामा ॥ सप्त-ऋषयः । भूत-कृतः । ते । त्वा । मथन्तु । प्र-जया । सह । इह ॥ १ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! (जायस्व) प्रसिद्ध हो, [जैसे] (इयम्) यह (नाथिता) पति वाली, (पुत्रकामा) पुत्रों की कामना वाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रत वाली वा अदीन स्त्री] (ब्रह्मौदनम्)

१—(अग्ने) हे तेजस्विन् विद्वन् (जायस्व) प्रसिद्धो भव (अदितिः) अ० २ । २८ । ४ । दो अवखण्डने दीङ् क्षये वा-क्तिन्, नञ्समासः । अदितिरदीना देवमाता-निरु० ४ । २२ । अखण्डव्रताऽदीना स्त्री (नाथिता) अ० ४ । ?३ । ७ ।

ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के वरसाने वाले परमात्मा] को (पचति) पका [मनमें दृढ़] करती है। [वैसे ही] (ते) वे (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषि [व्यापन शील वा दर्शन शील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] (इह) यहां पर (प्रजया सह) प्रजा के साथ [मनुष्यों के सहित] (त्वा) तुझ [विद्वान्] को (मन्थन्तु) मथें [प्रवृत्त करें] ॥ १ ॥

भावार्थ—हे मनुष्य जैसे माता वेद आदि शास्त्रोंमें प्रवीण होकर सन्तान से प्रीति करती हुयी परमेश्वर की आज्ञा पालन में तत्पर होती है, वैसे ही तू अपनी इन्द्रियों मन और बुद्धि से उपकार लेकर सन्तान सहित पुरुषार्थ कर ॥१॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमच्छ॑ । अयम॒ग्निः पृ॑तनाषाट् सुवीरो येन॑ दे॒वा असहन्त॒ दस्यू॑न् ॥ २ ॥

कृणुत । धूमम् । वृषणः । सखायः । अद्रोघ-अविता । वाचम् । अच्छ॑ ॥ अयम् । अग्निः । पृतनाषाट् । सु-वीरः । येन॑ । देवाः । असहन्त । दस्यू॑न् ॥ २ ॥

नाथ-इतच्, टाप्। नाथवती सभर्तृका (इयम्) प्रसिद्धा (ब्रह्मौदनम्) अ० ४। ३५। ७। बृंहेर्नोऽच्च। उ० ४। १४६। बृहि वृद्धौ-मनिन्, नकारस्य अकार, रत्वं च। ब्रह्म, अन्नम् निघ० २। ७। ब्रह्म धनम्-निघ० २।१० + उन्देर्नलोपश्च उ० २।७६। उन्दी क्लेदने-युच्। ओदनो मेघः-निघ० १। १०। ओदनमुदकदानं मेघम्-निरु० ६। ३४। ब्रह्मणो वेदज्ञानस्यान्नस्य धनस्य वा सेचकं वर्षकं परमात्मानम् (पचति) पक्वं मनसि दृढं करोति (पुत्रकामा) शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः। वा० पा० ३। २। १। कामेर्णप्रत्ययः। पुत्रादीन् कामयमाना (सप्तऋषयः) अ० ४। ११। ६। ऋष गतौ दर्शने च-इन्। ऋत्यकः। पा० ६। १। १२८। इति प्रकृतिभावः। सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे-यजु० ३४। ५५। सप्त ऋषयः षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी-निरु० १२। ३७। त्वक्चक्षुःश्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धयः (भूतकृतः) अ० ६। १०८। ४। भूतमुचितं कर्म कुर्वन्ति ते (ते) प्रसिद्धाः (त्वा) त्वां विद्वांसम् (मन्थन्तु) विलोडयन्तु। प्रवर्तयन्तु (प्रजया) प्रजागणेन (सह) साकम् (इह) अस्मिन् गृहाश्रमे ॥

भाषार्थ—(वृषणः) हे ऐश्वर्य वाले (सखायः) सखाओ ! (धूमम्) कम्पन [चेष्टा] (कृणुत) करो, (वाचम् अच्छ) [अपने] वचन का लक्ष्य करके (अद्रोघाविता) निर्द्रोहियों [शुभाचार्यों] का रक्षक (पृतनाषाट्) संग्रामों का जीतने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीरों वाला (अयम्) यह (अग्निः) तेजस्वी वीर है, (येन) जिस [वीर] के साथ (देवाः) देवों [विजयी जनों] ने (दस्यून्) डाकुओं को (असहन्त) जीता है ॥ २ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य मित्रभाव से रहकर सुपरीक्षित शूरवीर विद्वान् पुरुष को सेनापति बनाकर शत्रुओं का नाश करें ॥ २ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-म० ३ । सू० २६ । म० ६ ॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः । सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्नस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥३॥

अग्ने । अजनिष्ठाः । महते । वीर्याय । ब्रह्म-ओदनाय । पक्तवे । जात-वेदः ॥ सप्त-ऋषयः । भूत-कृतः । ते । त्वा । अजीजनन् । अस्यै । रयिम् । सर्व-वीरम् । नि । यच्छ ॥३॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे प्रसिद्ध ज्ञान वाले (अग्ने) तेजस्वी वीर !

२—(कृणुत) कुरुत (धूमम्) इषियुधीन्धिदसिश्याधूसूभ्यो मक् । उ० १ । १४५ । धूञ् कम्पने-मक् । कम्पनं चेष्टनम् । (वृषणः) अ० १ । १२ । १ । वृषु सेचने प्रजनैश्वर्ययोः-कनिन् । वा षपूर्वस्य निगमे । पा० ६ । ४ । ६ । दीर्घाभावः । वृषाणः । ऐश्वर्यवन्तः । इन्द्राः (सखायः) सर्वमित्रभूताः (अद्रोघाविता) अद्रोहकारिणां सुचरित्राणामविता रक्षिता (वाचम्) वचनम् (अच्छ) अभिलक्ष्य (अयम्) (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् (पृतनाषाट्) अ० ५ । १४ । ८ । संग्रामजेता (सुवीरः) नञ्सुभ्याम् । पा० ६ । २ । १७२ इत्युत्तरपदेऽन्तोदात्ते प्राप्ते । वीरवीर्यौ च । पा० ६ । २ । १२० । उत्तरपदाद्युदात्तः । शोभनवीरोपेतः (येन) शूरेण (देवाः) विजयिनः (असहन्त) अभ्यभवन् (दस्यून्) चौरान् । महासाहसिकान् ॥

(अग्ने) हे तेजस्विन् (अजनिष्ठाः) त्वमुत्पन्नोऽसि (महते

(महते) बड़े (वीर्याय) वीरत्व [पाने] के लिये (ब्रह्मौदनाय पक्तवे) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन बरसाने वाले परमात्मा] के पक्का [मन में दृढ़] करने को (अजनिष्ठाः) तू उत्पन्न हुआ है। (ते) उन (भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषियों [त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] ने (त्वा) तुझ [शूर] को (अजीजनन्) प्रसिद्ध किया है, (अस्यै) इस [प्रजा म० १] को (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नियम से (यच्छ) दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य पराक्रम के साथ परमेश्वर की आज्ञा का पालन करे और मन बुद्धि द्वारा श्रेष्ठ कर्मों से प्रसिद्ध होकर प्रजा पालन में तत्पर रहे ॥ ३ ॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियाँ एह वक्षः। तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ४

सम्-इद्धः। अग्ने। सम्-इधा। सम्। इध्यस्व। विद्वान्। देवान्। यज्ञियान्। आ। इह। वक्षः॥ तेभ्यः। हविः। श्रपयन्। जात-वेदः। उत्-तमम्। नाकम्। अधि। रोहय। इमम् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी पुरुष ! (समिधा) काष्ठ आदि से (समिद्धः) प्रकाशित [अग्नि के समान] (सम् इध्यस्व) प्रकाश कर, (यज्ञियान्) पूजा योग्य (देवान्) देवों [विजयी जनों] को (विद्वान्) जानता-

---

(वीर्याय) वीरकर्मणे (ब्रह्मौदनाय) म० १। ब्रह्मणो वेदज्ञानस्य, अन्नस्य धनस्य वा सेचकाय वर्षकाय। परमेश्वराय (पक्तवे) डु पचष् पाके-तवेन्। पक्तुम्। मनसि दृढीकर्तुम् (जातवेदः) अ० १। ७। २। हे प्रसिद्धज्ञानयुक्त (अजीजनन्) जनेर्ण्यन्ताल्लुङि चङि रूपम्। प्रसिद्धं कृतवन्तः (अस्यै) प्रजायै-म०१। (रयिम्) धनम् (सर्ववीरम्) सर्वैर्वीरैर्युक्तम् (नि) नियमेन (यच्छ) दाण् दाने-लोट्। देहि। अन्यत् पूर्ववत्-म० १ ॥

४—॥ (समिद्धः) प्रदीप्तोऽग्निर्यथा (अग्ने) हे तेजस्विन् पुरुष (समिधा) काष्ठादिप्रज्वलनसाधनेन (सम्) सम्यक् (इध्यस्व) ञि इन्धी दीप्तौ, रुधादिः, ... स्व। दीप्यस्व (विद्वान्) विदन्। जानन् (देवान्)

हुआ तू (इह) यहां [उत्तम पद पर] (आ वक्षः) लाता रहे। (जातवेदः) हे प्रसिद्ध धन वाले (तेभ्यः) उनके लिये (हविः) दातव्य वस्तुको (श्रपयन्) पक्का [दृढ़] करता हुआ तू (इमम्) इस [प्राणी वा प्रजा गण] को (उत्तमम्) श्रेष्ठ (नाकम्) आनन्द में (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्या और पराक्रम से तेजस्वी होकर पूजनीय विद्वानों का यथावत् आदर करके अपने और प्रजागण के लिये उत्तम सुख बढ़ावे ॥ ४ ॥

त्रे॒धा भा॒गो निहि॑तो॒ यः पु॒रा वो॑ दे॒वानां॑ पि॒तॄणां॒ मर्त्या॑नाम् ।
अंशा॑न् जानीध्वं॒ वि भ॑जामि॒ तान् वो॒ यो दे॒वानां॒ स इ॒मां पा॑रयाति ॥ ५ ॥

त्रे॒धा । भा॒गः । नि-हि॑तः । यः । पु॒रा । वः॒ । दे॒वाना॑म् । पि॒तॄणा॑म् । मर्त्या॑नाम् ॥ अंशा॑न् । जा॒नी॒ध्व॒म् । वि । भ॒जा॒मि॒ । तान् । वः॒ । यः । दे॒वाना॑म् । सः । इ॒माम् । पा॒र॒या॒ति॒ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (त्रेधा) तीन प्रकार से, (देवानाम्) देवताओं [विजयी जनों] का, (पितॄणाम्) पितरों [पालक पुरुषों] का और (मर्त्यानाम्) मर्त्यों [मरणधर्मियों] का, (यः) जो (वः) तुम्हारे लिये

विजयिनो जनान् (यज्ञियान्) यज्ञ—घ । पूजार्हान् (इह) अस्मिन् पदे (आ वक्षः) वहेर्लेटि, अडागमः । सिब्बहुलं लेटि । पा० ३ । १ । ३४ । इति सिप्,ढत्व-कत्वषत्वानि । आवहेः (तेभ्यः) विद्वद्भ्यः (हविः) देयं वस्तु (श्रपयन्) श्रा पाके ण्यन्तात् शतृ आकारान्तलक्षणे पुकि कृते घटादिपाठात् । मितां ह्रस्वः । पा० ६ । ४ । ९२ । उपधाह्रस्वः । पचन् । दृढीकुर्वन् (जातवेदः) हे प्रसिद्धधन (उत्तमम्) उत्कृष्टम् (नाकम्) आनन्दम् (अधि) उपरि (रोहय) प्रापय (इमम्) प्राणिनं प्रजागणं वा ॥

५—(त्रेधा) एधाच्च । पा० ५ । ३ । ४६ । त्रि-एधाच् । त्रिप्रकारेण (भागः) अंशः (निहितः) स्थापितः (यः) (पुरा) पूर्वकाले । सृष्ट्यादौ (वः) युष्मभ्यम् (देवानाम्) विजयिनाम् । श्रेष्ठपुरुषाणाम् (पितॄणाम्) पाल-

(भागः) भाग (पुरा) पहिले से (निहितः) ठहराया हुआ है। (जानीध्वम्) तुम जानो कि (तान् अंशान्) उन भागों को (वः) तुम्हारे लिये (वि भजामि) मैं [परमेश्वर] बांटता हूं, (यः) जो [भाग] (देवानाम्) देवताओं का है, (सः) वह (इमाम्) इस [प्रजा—म० १] को (पारयति) पार लगावे॥ ५ ॥

भावार्थ—ईश्वर नियम से अनादि काल से कर्मानुसार मनुष्य तीन प्रकार के हैं—एक उत्तम देवसंज्ञक दूसरे मध्यम पितृसंज्ञक और तीसरे निकृष्ट मर्त्यसंज्ञक। देवसंज्ञक श्रेष्ठ पुरुष ही अपनी प्रजा को यथावत् सुख पहुंचाने में समर्थ होते हैं॥ ५ ॥

अग्ने सहस्वानभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान्।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु॥६॥

अग्ने। सहस्वान्। अभि-भूः। अभि। इत्। असि। नीचः। नि। उब्ज। द्विषतः। स-पत्नान्॥ इयम्। मात्रा। मीय-माना। मिता। च। स-जातान्। ते। बलि-हृतः। कृणोतु॥६॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे तेजस्वी शूर! (सहस्वान्) बलवान् और (अभिभूः) [बैरियों का] हराने वाला तू (इत्) ही (अभि असि) [शत्रुओं को] हराता है, (नीचः) नीच (द्विषतः) द्वेषकरने वाले (सपत्नान्) शत्रुओं को (नि उब्ज) नीचे गिरादे। (इयम्) यह (मीयमाना) नापी जाती हुई (च)

कानां मध्यमजनानाम् (मर्त्यानाम्) मरणधर्मणां निकृष्टजनानाम् (अंशान्) भागान् (जानीध्वम्) अवगच्छत (विभजामि) वण्टयामि परमेश्वरोऽहम् (तान्) (वः) युष्मभ्यम् (यः) भागः (देवानाम्) श्रेष्ठजनानाम् (सः) (इमाम्) प्रजाम्—म० १ (पारयाति) पार कर्मसमाप्तौ-लेट्। पारयेत्। पारं नयेत्॥

६—(अग्ने) हे तेजस्विन् शूर (सहस्वान्) बलवान् (अभिभूः) अभिभविता। वशयिता (इत्) एव (अभि असि) अभिभवसि (नीचः) ऋत्विग्दधृक्०। पा० ३। २। ५६। नि+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन्। अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति। पा० ६। ४। २४। इति नलोपः। अचः। पा० ६। ४। १३८।

और (मिता) नापी गई (मात्रा) मात्रा [परिमाण] (ते) तेरे (सजातान्) सजातियों [साथियों] को (बलिहृतः) [शत्रुओं से] बलि [उपहार वा कर] लाने वाला (कृणोतु) करे ॥ ६ ॥

भावार्थ—शूर वीर पुरुष शत्रुओं को वश में करके नियम पूर्वक अपने विश्वास पात्र मित्रों द्वारा शत्रुओंसे कर एकत्र करे ॥ ६ ॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय । ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति ॥ ७ ॥

साकम् । स-जातैः । पयसा । सह । एधि । उत् । उब्ज । एनाम् । महते । वीर्याय ॥ ऊर्ध्वः । नाकस्य । अधि । रोह । विष्टपम् । । स्वः-गः । लोकः । इति । यम् । वदन्ति ॥ ७ ॥

भाषार्थ—[हे शूर !] (सजातैः साकम्) सजातियों [साथियों] के साथ (पयसा सह) अन्न के सहित (एधि) वर्तमान हो, (एनाम्) इस [प्रजा–म० १] को (महते) बड़े (वीर्याय) वीर कर्म के लिये (उत् ब्ज) ऊंचा उठा । (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर तू (नाकस्य) [उस] आनन्द के (विष्टपम्) स्थानपर (अधि रोह) ऊंचा चढ़, (यम्) जिस [आनन्द] को (वदन्ति) वे [विद्वान्] बताते हैं—"(स्वर्गः लोकः इति) यह स्वर्ग लोक है" ७॥

शसि भसंज्ञायाम् । अकारलोपे । चौ । पा० ६ । ३ । १३८ । इति दीर्घः । नीचगतीन् । अधमान् (न्युब्ज) उब्ज आर्जवे, निपूर्वात् अधोमुखीकरणे । अधोमुखान् कुरु (द्विषतः) अप्रियकारिणः (सपत्नान्) शत्रून् (इयम्) (मात्रा) हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन् । उ० ४ । १३८ । माङ् माने—त्रन् । मात्रा मानात्–निरु० ४ । २५ । परिमाणम् (मीयमाना) क्रियमाणा (मिता) निर्मिता (च) (सजातान्) समानजन्मनः । बन्धून् (ते) तुभ्यम् (बलिहृतः) बलेरुपायनस्य करस्य वा हारकान् प्रापकान् शत्रुसकाशात् (कृणोतु) करोतु ॥

७—(साकम्) सार्धम् (सजातैः) समानजन्मभिः । बन्धुभिः (पयसा) अन्नेन—निघ० २ । ७ (सः) (एधि) अस्तेर्लोटि । भव । वर्तस्व (उदुब्ज) उद्गमय । उन्नतां कुरु (एनाम्) प्रजाम्—म० १ (महते) प्रभूताय (वीर्याय) वीर कर्मणे (ऊर्ध्वः) उन्नतः सन् (नाकस्य) सुखस्य (अधि रोह) अधिरूढो भव (विष्टपम्) अ० १० । १० । ३१ । विश प्रवेशने कपप्रत्ययः तुडागमः । प्रवेशम् । आश्रयम् (स्वर्गः) सुखप्रापकः (लोकः) दर्शनीयः प्रदेशः (इति) (यम्) नाकम् (वदन्ति) कथयन्ति विद्वांसः ॥

भावार्थ—बुद्धिमान् पुरुष अपने भाई बन्धुओं का अन्न आदि से सत्कार करके प्रजा की उन्नति करें और उनकी उन्नति से अपनी उन्नति करके पूर्ण आनन्द भोगे, जिसका नाम स्वर्ग लोक है ॥ ७ ॥

इ॒यं म॒ही प्रति॑ गृह्णातु॒ चर्म॑ पृथि॒वी दे॒वी सु॑मन॒स्यमा॑ना ।
अथ॑ गच्छेम सुकृ॒तस्य॑ लो॒कम् ॥ ८ ॥

इ॒यम् । म॒ही । प्रति॑ । गृ॒ह्णा॒तु॒ । चर्म॑ । पृ॒थि॒वी । दे॒वी । सु॒ऽम॒न॒स्यमा॑ना ॥ अथ॑ । ग॒च्छे॒म॒ । सु॒ऽकृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(इयम्) यह (मही) बड़ी (देवी) श्रेष्ठगुण वाली, (सुमनस्यमाना) प्रसन्न मन वाली [प्रजा] (पृथिवी) पृथिवी पर (चर्म) विज्ञान (प्रति गृह्णातु) ग्रहण करे । (अथ) फिर (सुकृतस्य) धर्म के (लोकम्) समाज में (गच्छेम) हम जावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—प्रशस्त विज्ञानी लोग धर्मात्माओं के समाज में प्रतिष्ठा पाकर आनन्दयुक्त होवें ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का उत्तरभाग आचुका है—अथर्व० ६ । १२१ । १ । और ७ । ८३ । ४ ॥

ए॒तौ ग्रावा॑णौ स॒युजा॑ यु॒ङ्ग्धि॒ चर्म॑णि॒ निर्भि॑न्ध्य॒ंशून् यज॑मानाय सा॒धु । अ॒व॒घ्न॒ती नि ज॑हि॒ य इ॒मां पृ॑त॒न्यव॑ ऊ॒र्ध्वं प्र॒जामु॒द्भर॒न्त्युदू॑ह ॥ ९ ॥

ए॒तौ । ग्रावा॑णौ । स॒ऽयुजा॑ । यु॒ङ्ग्धि॒ । चर्म॑णि । निः । भि॒न्धि॒ । अं॒शून् । यज॑मानाय । सा॒धु ॥ अ॒व॒ऽघ्न॒ती । नि । ज॒हि॒ । ये ।

८—(इयम्) उपस्थिता (मही) महती (प्रतिगृह्णातु) स्वीकरोतु (चर्म) सर्वधातुभ्यो मनिन् । उ० ४ । १४५ । चर गतिभक्षणयोः मनिन् । विज्ञानम्-दयानन्दभाष्ये, यजु० ३० । १५ (पृथिवी) विभक्तेः सु । पृथिव्याम् (देवी) उत्तमगुणा (सुमनस्यमाना) भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः । पा० ३ । १ । १२ । सुमनस्—क्यङ्, शानच् । शुभचिन्तिका (अथ) अनन्तरम् (गच्छेम) प्राप्नुयाम (सुकृतस्य) पुण्यस्य (लोकम्) समाजम् ॥

इ॒माम् । पृ॒त॒न्यवः॑। ऊ॒र्ध्वम् । प्र॒-जाम् । उ॒त्-भर॑न्ती । उत् । ऊ॒ह॒ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—[हे सेना !] (एतौ) इन दोनों (सयुजा) आपस में मिले हुये (ग्रावाणौ) सिल बट्टों को (चर्मणि) विज्ञान में [होकर] (युङ्ग्धि) मिला और (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] के लिये (अंशून्) कणों को (साधु) सावधानी से (निः भिन्द्धि) कूट डाल । (अवघ्नती) मारती हुई तू [उन लोगों को] (नि जहि) मारडाल, (ये) जो (इमाम् प्रजाम्) इस प्रजा पर (पृतन्यवः) सेना चढ़ाने वाले हैं और [प्रजा को] (ऊर्ध्वम्) ऊंची ओर (उद्भरन्ती) उठाती हुई तू (उत् ऊह) ऊंचा विचार कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—सेनापति को योग्य है कि जैसे सिल बट्टे से अन्न आदि कूटकर निःसार वस्तु निकालकर ससार पदार्थ ग्रहण करते हैं, वैसे ही सेना द्वारा शत्रुओं को मारकर श्रेष्ठों की रक्षा करे ॥ ९ ॥

गृ॒हा॒ण ग्रावा॑णौ स॒कृतौ॑ वीर॒ हस्त॒ आ ते॑ दे॒वा य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञ-मं॑गुः । त्रयो॒ वरा॑ यत॒मांस्त्वं वृ॑णी॒षे तास्ते॒ समृ॑द्धीरि॒ह रा॑ध-यामि ॥ १० ॥ (१)

गृ॒हा॒ण। ग्रावा॑णौ। स॒-कृतौ॑ । वी॒र॒ । हस्ते॑ । आ । ते॒। दे॒वाः। य॒ज्ञियाः॑ । य॒ज्ञम् । अ॒गुः॒ ॥ त्रयः॑ । वराः॑ । य॒त॒मान् । त्वम् ।

९—(एतौ) पुरोवर्तिनौ (ग्रावाणौ) उलूखलमुसलरूपौ धान्याद्यवहननप्रस्तरौ (सयुजा) सयुजौ । सहयुञ्जानौ (युङ्ग्धि) योजय (चर्मणि) विज्ञाने—म० ८ (निर्भिन्द्धि) निरन्तरं छिन्द्धि (अंशून्) अंश विभाजने—कु । अवयवान् (यजमानाय) श्रेष्ठकर्मकारकाय (साधु) यथा तथा । सुन्दररीत्या (अवघ्नती) अवहननं कुर्वती (नि जहि) नितरां नाशय तान् शत्रून् (ये) (इमाम्) समीपस्थाम् (पृतन्यवः) अ० ७ । ३४ । १ । सङ्ग्रामेच्छवः (ऊर्ध्वम्) उन्नतं यथा तथा (प्रजाम्) प्रजां प्रति (उद्भरन्ती) उन्नतां धरन्ती (उत्) उत्तमम् (ऊह) ऊह वितर्के । परस्मैपदं छान्दसम् । विचारय ॥

वृणीषे । ताः । ते । सम्-ऋद्धीः । इह । राधयामि ॥१०॥ (१)

भाषार्थ—(वीर) हे वीर ! (सकृतौ) मिलकर काम करने वाले दोनों (ग्रावाणौ) सिलबट्टों को (हस्ते) हाथ में (गृहाण) ले, (यज्ञियाः) पूजा योग्य (देवाः) देवता [विजयी लोग] (ते) तेरे (यज्ञम्) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार में (आ अगुः) आये हैं । (त्रयः) तीन [स्थान नाम और जन्म] (वराः) वरदान हैं, (यतमान्) जिन जिन को (त्वम्) तू (वृणीषे) मांगता है, (ते) तेरे लिये (ताः) उन (समृद्धीः) समृद्धियों को (इह) यहां [संसार में] (राधयामि) मैं सिद्ध करता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो पराक्रमी पुरुष सिल बट्टे के समान मिलकर काम करे, सब पुण्यात्मा विजयी पुरुष उसका साथ देवें और वह अपने स्थान वा स्थिति, नाम वा कीर्ति और जन्म वा मनुष्य जन्म को सफल करे ॥ ७ ॥

भगवान् यास्कमुनि का वचन है "धाम तीन होते हैं, स्थान नाम और जन्म"- निरु० ६ । २८ ॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११॥

इयम् । ते । धीतिः । इदम् । ऊं इति । ते । जनित्रम् । गृह्णातु । त्वाम् । अदितिः । शूर-पुत्रा ॥ परा । पुनीहि । ये । इमाम् । पृतन्यवः । अस्यै । रयिम् । सर्व-वीरम् । नि । यच्छ ११

भाषार्थ—[हे वीर !] (इयम्) यह (ते) तेरी (धीतिः) धारणशक्ति

---

१० (गृहाण) स्वीकुरु (ग्रावाणौ) म० ६। अवहननपाषाणौ (सकृतौ) सह कर्मकर्तारौ (वीर) हे शूर (हस्ते) करे (ते) तव (देवाः) विजिगीषवः (यज्ञियाः) पूजार्हाः (यज्ञम्) श्रेष्ठव्यवहारम् (आ अगुः) इण् गतौ-लुङ् । आगमन् (त्रयः) स्थाननामजन्मरूपाः (वराः) वरणीयाः । प्रार्थनीयाः पदार्थाः (यतमान्) बहुषु यान् वरान् (त्वम्) (वृणीषे) याचसे (ताः) (ते) तुभ्यम् (समृद्धीः) सम्पत्तीः (इह) संसारे (राधयामि) संसाधयामि ॥

११—(इयम्) (ते) तव (धीतिः) अ० ७ । १ । १ । धीङ् आधारे-क्तिन्,

[वा कर्म] (उ) और (इदम्) यह (ते) तेरा (जनित्रम्) जन्म [मनुष्य-जन्म] (त्वाम्) तुझे (गृह्णातु) सहारा देवे, [जैसे] (शूरपुत्रा) शूर पुत्रों वाली (अदितिः) अदिति [अखण्ड व्रतवाली माता सन्तान का हित करती है। (परा पुनीहि) [उन्हें] धो डाल [उन पर पानी फेर दे] (ये) जो [शत्रु] (इमाम्) इस [प्रजा] पर (पृतन्यवः) चढ़ाई करने वाले हैं, (अस्यै) इस [प्रजा] को (सर्ववीरम्) सब वीरों से युक्त (रयिम्) धन (नि) नित्य (यच्छ) दे ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य के शुभ कर्म और शुभ विचार सदा उसका सहाय करते हैं, जैसे ब्रह्मचारिणी माता सन्तान का हित करती है। और वह आत्मा-वलम्बी वीर सन्तान शत्रुओं का नाश करके प्रजा को धनी और बली बनाता है ॥ ११ ॥

इस मन्त्र का चतुर्थ पाद-म० ३ में आ चुका है ॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥१२

उप-श्वसे । द्रुवये । सीदत । यूयम् । वि । विच्यध्वम् । यज्ञियासः । तुषैः ॥ श्रिया । समानान् । अति । सर्वान् । स्याम । अधः-पदम् । द्विषतः । पादयामि ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(यज्ञियासः) हे पूजनीय पुरुषो! (उपश्वसे) उत्तम जीवन वाले (द्रुवये) उद्योग के लिये (यूयम्) तुम (सीदत) बैठो और (तुषैः)

यद्वा, दधातेः-क्तिन् । धीतिभिः-कर्मभिः-निरु० ११ । १६ । धारणशक्तिः । आत्मावलम्बनम् । कर्म (इदम्) (उ) च (ते) तव (जनित्रम्) मनुष्यजन्म (गृह्णातु) धारयतु (त्वाम्) शूरम् (अदितिः) म० १ । अखण्डव्रता माता (शूरपुत्रा) वीरपुत्रयुक्ता (परा पुनीहि) संशोधय (ये) (इमाम्) प्रजाम् (पृतन्यवः) म० ६ । संग्रामेच्छवः । अन्यत् पूर्ववत्-म० ३ ॥

१२—(उपश्वसे) श्वस प्राणने-क्विप् । उत्तमजीवनयुक्ताय (द्रुवये) द्रु गतौ,औणादिकः किप्रत्ययः ॥ गतये । उद्योगाय (सीदत) उपविशत (यूयम्

तुष [बुस] से (वि विच्यध्वम्) अलग होजाओ। (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुण वालों] से (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषतः) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥ १२ ॥

भावार्थ—सब वीर पुरुष मिलकर पराक्रम के साथ दोषों का नाश करें और शत्रुओं को मिटाकर अधिक अधिक सम्पत्ति बढ़ावें ॥ १२ ॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठोऽध्यरुक्षद् भराय। तासां गृह्णीताद् यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात् ॥ १३ ॥

परा। इहि। नारि। पुनः। आ। इहि। क्षिप्रम्। अपाम्। त्वा। गो-स्थः। अधि। अरुक्षत्। भराय ॥ तासाम्। गृह्णीतात्। यतमाः। यज्ञियाः। असन्। वि-भाज्य। धीरी। इतराः। जहीतात् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(नारि) हे नरों की शक्ति वाली स्त्री ! तू (परा) पराक्रम के साथ (इहि) चल, (पुनः) अवश्य (क्षिप्रम्) शीघ्र (आ इहि) आ (अपाम्) विद्या में व्याप्त स्त्रियों के (गोष्ठः) समाज ने (भराय) पोषण के लिये (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊपर चढ़ाया है। (तासाम्) उन [स्त्रियों]

(वि) विविधम् (विच्यध्वम्) विचिर् पृथग्भावे। पृथग् भवत (यज्ञियासः) असुगागमः। हे पूजार्हाः (तुषैः) धान्यत्वग्भिः। बुषैः (श्रिया) संपत्या (समानान्) तुल्यगुणयुक्तान् (सर्वान्) (अति) अतीत्य (स्याम) भवेम (अधस्पदम्) अ० २। ७। २। पादयोरधस्तात् (द्विषतः) शत्रून् (पादयामि) पातयामि ॥

१३—(परा) पराक्रमेण (इहि) गच्छ (नारि) अ० १। ११। १। नर—अञ्, ङीन्। नराणामियं शक्तिमती स्त्री तत्सम्बुद्धौ—दयानन्दभाष्ये, यजु० ५। २६ (पुनः) अवधारणे (एहि) आगच्छ (क्षिप्रम्) शीघ्रम् (अपाम्) व्याप्तविद्यानां स्त्रीणाम्—दयानन्दभाष्ये, यजु० १०। ७ (त्वा) त्वाम् (गोष्ठः) गावो

में (यतमाः) जो जो (यज्ञियाः) पूजा योग्य [स्त्रियां] (असन्) होवें, [उन्हें] (गृह्णीतात्) ग्रहण कर और (धीरी) बुद्धिमती तू (इतराः) दूसरी [स्त्रियों] को (विभाज्य) अलग करके (जहीतात्) छोड़दे ॥ १३ ॥

भावार्थ—सब स्त्रियां विदुषी समाज बनाकर अधिक गुणवती स्त्री को अपनी प्रधानी बनावें, और प्रधानी की सम्मति से विदुषी स्त्रियों को चुनकर कार्य्यकर्त्री सभा स्थापित करें ॥ १३ ॥

एमा अंगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय ॥ १४ ॥

आ । इमाः । अगुः । योषितः । शुम्भमानाः । उत् । तिष्ठ । नारि । तवसम् । रभस्व ॥ सु-पत्नी । पत्या । प्र-जया । प्रजा-वती । आ । त्वा । अगन् । यज्ञः । प्रति । कुम्भम् । गृभाय ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(इमाः) ये सब (शुम्भमानाः) शुभगुणों वाली (योषितः) सेवा योग्य स्त्रियां (आ अगुः) आई हैं, (नारि) हे शक्तिमती स्त्री । (उत् तिष्ठ) खड़ी हो ,(तवसम्) बल युक्त व्यवहार को (रभस्व) आरम्भ कर । (पत्या) [श्रेष्ठ] पति के साथ (सुपत्नी) श्रेष्ठ पत्नी. (प्रजया) [उत्तम] सन्तान के

ऽनेका वाचस्तिष्ठन्त्यत्र । गोष्ठी । समाजः (अधि अरुहत्) रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च-लुङ् । आरूढवान् (भराय) पोषणाय (तासाम्) स्त्रीणाम् (गृह्णीतात्) गृहाण । स्वीकुरु (यतमाः) बह्वीषु याः (यज्ञियाः) पूजार्हाः (असन्) लेटि रूपम् । भवेयुः (विभाज्य) विविच्य (धीरी) धीमती (इतराः) अन्याः (जहीतात्) ओहाक् त्यागे । जहीहि । परित्यज ॥

१४—(आ अगुः) आगमन् (इमाः) (योषितः) अ० १ । १७ । १ । सेव्याः स्त्रियः (शुम्भमानाः) शोभनगुणवत्यः (उत्तिष्ठ) उत्थिता भव (नारि) म० १३ । हे शक्तिमति स्त्रि (तवसम्] तवस्-अर्श आद्यच् । तवो बलनाम-निघ० २ । ६ । बलयुक्तं व्यवहारम् (रभस्व) आरम्भितं कुरु (सुपत्नी) पत्नीनां

साथ (प्रजावती) उत्तम सन्तान वाली [तू है], (यज्ञः) श्रेष्ठ व्यवहार (त्वा) तुझ को (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, तू (कुम्भम्) भूमिको पूरणकरने वाले [शुभव्यवहार] को (प्रति गृभाय) स्वीकार कर ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिस गुणवती स्त्री को गुणवती स्त्रियां प्रधानी बनावें, वह अपने गुणी पति और सन्तानों के साथ आनन्द करती हुई सब को सुखी रक्खे१४

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः। अयं यज्ञो गातुविन्नाथवित् प्रजाविदुग्रः पशुविद् वीरविद् वो अस्तु ॥ १५ ॥

ऊर्जः । भागः । नि-हितः । यः । पुरा । वः । ऋषि-प्रशिष्टा । अपः । आ । भर । एताः ॥ अयम् । यज्ञः । गातु-वित् । नाथ-वित् । प्रजा-वित् । उग्रः । पशु-वित् । वीर-वित् । वः । अस्तु ॥ १५ ॥

भाषार्थ—[हे विदुषी स्त्रियो यही] (ऊर्जः) पराक्रम का (भागः) सेवनीय व्यवहार है, (यः) जो (पुरा) पहिले (वः) तुम्हारे लिये (निहितः) ठहराया गया है, [हे प्रधानी !] (ऋषिप्रशिष्टा) ऋषियों [माता, पिता और आचार्यो] से शिक्षित तू (एताः) इन (अपः) विद्या में व्याप्तस्त्रियों को (आ) सब ओर से (भर) पुष्टकर। [हे स्त्रियो !] (अयम्) यह (उग्रः) तेजस्वी (यज्ञः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (गातुवित्) मार्ग देनेवाला, (नाथ-

---

श्रेष्ठतमा (पत्या) श्रेष्ठपतिना (प्रजया) श्रेष्ठसन्तानेन सह (प्रजावती) उत्तमसन्तानयुक्ता (त्वा) त्वाम् (आ अगन्) प्रापत् (यज्ञः) श्रेष्ठव्यवहारः (कुम्भम्) अ० १ । ६ । ४ । कु + उम्भ पूरणे—अच्, शकन्ध्वादिरूपम्। कुं भूमिमुम्भति पूरयति यस्तं श्रेष्ठव्यवहारम् (प्रतिगृभाय) प्रतिगृहाण। स्वीकुरु ॥

१५—(ऊर्जः) पराक्रमस्य (भागः) सेवनीयो व्यवहारः (निहितः) स्थापितः (यः) (पुरा) पूर्वकाले (वः) युष्मभ्यम् (ऋषिप्रशिष्टा) शासु अनुशिष्टौ—क्त। माता पित्राचार्याभिः शिक्षिता (अपः) म० १३। व्याप्तविद्याः स्त्रीः (आ) समन्तात् (भर) पोषय (एताः) स्त्रीः (अयम्) (यज्ञः) श्रेष्ठ-

वित्) ऐश्वर्य पहुंचाने वाला, (प्रजावित्) प्रजायें देनेवाला, (पशुवित्) [गौ घोड़ा आदि] पशुओंका पहुंचाने वाला,(वीरवित्) वीरों का लाने वाला (वः) तुम्हारे लिये (अस्तु) होवे ॥ १५ ॥

भावार्थ—विदुषी सुशिक्षित स्त्रियां ईश्वर नियम से समाज द्वारा सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करें ॥ १५ ॥

अग्ने॑ चुरुर्य॒ज्ञिय॒स्त्वाध्य॑रुक्षुच्छु॒चिस्तपि॑ष्ठुस्तप॑सा तपै॑नम् ।
आ॒र्षे॒या दै॒वा अ॑भिसं॒गत्य॑ भा॒गमि॒मं तपि॑ष्ठा ऋ॒तुभि॑स्तपन्तु॒ १६

अग्ने॑ । चुरुः । य॒ज्ञियः॑ । त्वा॒ । अधि॑ । अ॒रु॒क्षुत् । शुचि॑ । तपि॑ष्ठः । तप॑सा । तप॒ । ए॒नम् ॥ आ॒र्षे॒याः । दै॒वाः । अ॒भि॒-संगत्य॑ । भा॒गम् । इ॒मम् । तपि॑ष्ठाः । ऋ॒तु-भिः॑ । त॒प॒न्तु॒ ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् ! (यज्ञियः) पूजा योग्य (चरुः) ज्ञान ने (त्वा) तुझे (अधि अरुक्षत्) ऊंचा चढ़ाया है, (शुचिः) शुद्ध आचरण वाला, (तपिष्ठः) अतिशय तप वाला तू (तपसा) [ब्रह्मचर्य आदि] तप से (एनम्) इस [ज्ञान] को (तप) तपा [उपकार में ला] । (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात, (दैवाः) उत्तम गुणवाले (तपिष्ठाः) बड़े तपस्वी लोग

व्यवहारः (गातुवित्) सुमार्गस्य लम्भयिता (नाथवित्) ऐश्वर्यस्य प्रापकः (प्रजावित्) प्रजानां प्रापकः (उग्रः) तेजस्वी (पशुवित्) गवाश्वादीनां लम्भकः (वीरवित्) वीराणां प्रापयिता (वः) युष्मभ्यम् (अस्तु) भवतु ॥

१६—(अग्ने) हे विद्वन् (चरुः) भृमृशीङ्तृचरि० उ० १ । ७ । चर गतिभक्षणयोः-उ । चरुर्मेघनाम—निघ० १ । १० । चरुर्मृच्चयो भवति चरतेर्वा समुचरन्त्यस्मादापः—निरु० ६ । ११ । चरु ज्ञानलाभं मेघं वा—दयानन्दभाष्ये, ऋक्० १ । ७ । ६ । बोधः (यज्ञियः) पूजार्हः (त्वा) ब्रह्मचारिणम् (अधि अरुक्षत्) उन्नतं कृतवान् (शुचिः) शुद्धस्वभावः (तपिष्ठः) तप्तृ-इष्ठन् । तुरिष्ठेमेयस्सु । पा० ६ । ४ । १५४ । तृलोपः । तप्तृतमः । अतिशयेन तपस्वी (तपसा) ब्रह्मचर्यादितपश्चरणेन (तप) तप्तमुपकृतं कुरु (एनम्) बोधम् (आर्षेयाः) ढश्छन्दसि । पा० ४ । ४ । १०६ । इति ऋषि-ढप्रत्ययो बाहु-

(अभिसंगत्य) सर्वथा मिलकर (इमम्) इस (भागम्) सेवनीय [ज्ञान] को (ऋतुभिः) ऋतुओं के साथ (तपन्तु) तपावें [उपकार में लावें] ॥१६॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि तपश्चरण से प्रख्यात होकर उपकार करके उन्नति करते आये हैं, वैसे ही सब विद्वान् लोग मिलकर संसार में शुभगुणों से उपकार करें ॥ १६ ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः । अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥ १७ ॥

शुद्धाः । पूताः । योषितः । यज्ञियाः । इमाः । आपः । चरुम् । अव । सर्पन्तु । शुभ्राः ॥ अदुः । प्र-जाम् । बहुलान् । पशून् । नः । पक्ता । ओदनस्य । सु-कृताम् । एतु । लोकम् ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(शुद्धाः) शुद्धस्वभाव वाली, (पूताः) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञियाः) पूजनीय (योषितः) सेवा योग्य, (शुभ्राः) शुभ चरित्र वाली (इमाः) यह (आपः) विद्या में व्याप्त स्त्रियां (चरुम्) ज्ञान को (अव) निश्चय करके (सर्पन्तु) प्राप्त हों । इन [शिक्षित स्त्रियों] ने (नः) हमें (प्रजाम्) सन्तान और (बहुलान्) बहुविध (पशून्) [गौ भैंस आदि] पशु (अदुः) दिये हैं, (ओदनस्य) सुख बरसाने वाले [वा मेघ रूप परमेश्वर] का

लकात् । ऋषिषु विख्यात आर्षेयः-महीधरभाष्ये, यजु० ७ । ४६ । आर्षेय, ऋषिषु साधुस्तत्सम्बुद्धौ-दयानन्दभाष्ये, यजु० २१ । ६१ । ऋषिषु विख्याताः साधवो वा (दैवाः) दिव्यगुणयुक्ताः (अभिसंगत्य) सर्वतो मिलित्वा (भागम्) सेवनीयं बोधम् (इमम्) (तपिष्ठाः) तप्तृतमाः । तपस्वितमाः (ऋतुभिः) वसन्तादिकालविशेषैः (तपन्तु) तप्तमुपकृतं कुर्वन्तु ॥

१७—(शुद्धाः) निर्मलस्वभावाः (पूताः) पवित्राचाराः (योषितः) अ० १ । १७ । १ । सेव्याः स्त्रियः (यज्ञियाः) पूजार्हाः (आपः) म० १३ । व्याप्तविद्याः स्त्रियः (चरुम्) म० १६ । बोधम् (सर्पन्तु) गच्छन्तु । प्राप्नुवन्तु (शुभ्राः) शुभचरित्राः (अदुः) प्रायच्छन् (प्रजाम्) सन्तानम् (बहुलान्)

(पक्वा) पक्का [मन में दृढ़] करने वाला मनुष्य (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एतु) पहुंचे ॥ १७ ॥

भावार्थ—गुणवती स्त्रियों के शुभ प्रबन्ध से उत्तम सन्तान और उत्तम गौ, भैंस, बकरी आदि उपकारी पशु घर में होते हैं और परमेश्वर की आज्ञा पालने वाला पुरुष अवश्य प्रतिष्ठा पाता है ॥ १७ ॥

इस मन्त्र का पहिला पाद आचुका है—अ० ६ । १२२ । ५ ॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे । अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा । शुद्धाः । उत । पूताः । घृतेन । सोमस्य । अंशवः । तण्डुलाः । यज्ञियाः । इमे ॥ अपः । प्र । विशत । प्रति । गृह्णातु । वः । चरुः । इमम् । पक्त्वा । सु-कृताम् । एत । लोकम् ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (शुद्धाः) शुद्ध किये गये (उत) और (घृतेन) ज्ञानप्रकाश से (पूताः) पवित्र किये हुये, (सोमस्य) ऐश्वर्य के (अंशवः) बांटनेवाले (यज्ञियाः) पूजनीय, (तण्डुलाः) दुःख भञ्जक (इमे) यह तुम (अपः) प्रजाओं में (प्र विशत) प्रवेश करो, (चरुः) ज्ञान (वः) तुमको (प्रतिगृह्णातु) ग्रहण करे, (इमम्) इस [ज्ञान] को (पक्त्वा)

(बहून्) (पशून्) गोमहिष्यादीन् (नः) अस्मभ्यम् (पक्ता) दृढकर्त्ता (ओदनस्य) अ० ६ । ५ । १६ । सुखस्य सेचकस्य वर्धकस्य मेघरूपस्य वा परमेश्वरस्य (सुकृताम्) पुण्यकर्मिणाम् (एतु) प्राप्नोतु (लोकम्) दर्शनीयं समाजम् ॥

१८—(ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञानेन (शुद्धाः) शोधिताः (उत) अपि च (पूताः) पवित्राः (घृतेन) ज्ञानप्रकाशेन (सोमस्य) ऐश्वर्यस्य (अंशवः) अंश विभाजने-कु । विभाजकाः (तण्डुलाः) अ० १० । ६ । २६ । तडि आघाते-उलच् । दुःखभञ्जकाः (यज्ञियाः) पूजार्हाः (इमे) समीपस्थाः (अपः) आपः, आप्ताः प्रजाः-दयानन्दभाष्ये, यजु० ६ । २७ । प्रजागणान् (प्र विशत) (प्रतिगृह्णातु) स्वीकरोतु (चरुः) म० १६ । बोधः (इमम्) बोधम् (पक्त्वा) पक्वं दृढं

पक्का करके (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोकम्) समाज को (एत) जाओ ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैदिक ज्ञान से शुद्ध आचरण वाले होकर संसार में प्रवेश करते हैं, वे पुण्यात्माओं के साथ आनन्द पाते हैं ॥ १८ ॥

उरुः प्रथस्व । महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके । पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥१९॥

उरुः । प्रथस्व । महता । महिम्ना । सहस्र-पृष्ठः । सु-कृतस्य । लोके ॥ पितामहाः । पितरः । प्र-जा । उप-जा । अहम् । पक्ता । पञ्च-दशः । ते । अस्मि ॥ १९ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन्!] (महता) बड़ी (महिम्ना) महिमा से (उरुः) विस्तृत और (सहस्रपृष्ठः) सहस्रों स्तोत्र वाला तू (सुकृतस्य) सुकर्म के (लोके) समाज में (प्रथस्व) प्रसिद्ध हो । (पितामहाः) पितामह [पिता के पिता] आदि, (पितरः) पिता आदि [सब गुरुजन], (प्रजा) सन्तान, और (उपजा) सन्तान के सन्तान [ये हैं] (पञ्चदशः) [पांच प्राण, अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान + पांच इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण + पांच भूत अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु, और आकाश

कृत्वा (सुकृताम्) सुकर्मिणाम् (एत) तप्तनप्तनथनाश्च । पा० ७।१।४५। इण् गतौ-तस्य स्थाने तप् । इत । गच्छत (लोकम्) समाजम् ॥

१९—(उरुः) विस्तीर्णः (प्रथस्व) प्रख्यातो भव (महता) अधिकेन (महिम्ना) महत्त्वेन (सहस्रपृष्ठः) तिथपृष्ठगूथयूथप्रोथाः । उ० २ । १२ । पृषु सेचने—थक् । पृष्ठं शरीरस्य पश्चाद्भागः स्तोत्रं वा । सहस्राणि स्तोत्राणि यस्य सः परमेश्वरः (सुकृतस्य) सुकर्मणः (लोके) समाजे (पितामहाः) अ० ५ । ५ । १ । पितुः पितृतुल्याः पितामहादयः (पितरः) पितृसदृशा माननीयाः (प्रजा) सन्तानः (उपजा) सन्तानस्य सन्तानः (अहम्) प्राणी (पक्ता) मनसि दृढकर्ता (पञ्चदशः) अ० ८ । ९ । १५ । संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये । पा० २ । २ । २५ । इतिपञ्चाधिका दश यत्र स पञ्चदशः । बहु-

इन] पन्द्रह पदार्थ वाला जीवात्मा (अहम्) मैं (ते) तेरा (पक्ता) पक्का [अपने हृदय में दृढ़] करनेवाला (अस्मि) हूं १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि परमेश्वर की आज्ञा पालन करके संसार में अपने बड़ों और छोटों के साथ सुकर्मी होकर आनन्द भोगें ॥ १६ ॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः । अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव ॥ २० ॥ (२)

सहस्र-पृष्ठः । शत-धारः । अक्षितः । ब्रह्म-ओदनः । देव-यानः । स्वः-गः ॥ अमून् । ते । आ । दधामि । प्र-जया । रेषय । एनान् । बलि-हाराय । मृडतात् । मह्यम् । एव २०(२)

भाषार्थ—(सहस्रपृष्ठः) सहस्रों, स्तोत्र वाला, (शतधारः) बहुविध जगत् का धारण करने वाला, (अक्षितः) क्षय रहित, (देवयानः) विद्वानों से पाने योग्य, (स्वर्गः) आनन्द पहुंचाने वाला, (ब्रह्मौदनः) ब्रह्म-ओदन [वेद-ज्ञान, अन्न वा धन का बरसाने वाला, तू परमात्मा है] । (अमून्) उन [बैरियों] को (ते) तुझे (आ दधामि) सौंपता हूं, (एनान्) इन [शत्रुओं] को (प्रजया) [उनकी] प्रजा सहित (रेषय) नाश कर, (मह्यम्) मुझे (बलिहाराय) सेवा विधि स्वीकार करने के लिये (एव) ही (मृडतात्) सुख दे ॥ २० ॥

ब्रीहौ संख्येये डजबहुगणात् । पा० ५ । ४ । ७३ । पञ्चदशन्—डच् । पञ्चप्राणेन्द्रियभूतानि यस्मिन् सः जीवात्मा (ते) तव (अस्मि) ॥

२०—(सहस्रपृष्ठः) बहुस्तोत्रयुक्तः (शतधारः) शतं बहुविधं जगद् धरतीति यः (अक्षितः) अक्षीणः (ब्रह्मौदनः) म० १ । ब्रह्मणो वेदज्ञानस्यान्नस्य धनस्य वा सेचको वर्षकः परमात्मा (देवयानः) विद्वद्भिः प्राप्यः (स्वर्गः) सुखस्य गमयिता प्रापकः (अमून्) शत्रून् (ते) तुभ्यम् (आ दधामि) समर्पयामि (प्रजया) सन्तानेन सह (रेषय) हिंसय (एनान्) अरीन् (बलिहाराय) हृञ् स्वीकरणे—घञ् । बलेः सेवाविधेः स्वीकरणाय (मृडतात्) सुखं देहि (मह्यम्) उपासकाय (एव) निश्चयेन ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा के दिव्य गुणों को अनेक प्रकार साक्षात् करके अपने दोषों को उनकी प्रजा सहित, अर्थात्, दोषों से उत्पन्न दोषों सहित, विचार पूर्वक नाश करके संसार की सेवा करे ॥ २० ॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानानति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥२१॥

उत्-एहि । वेदिम् । प्र-जया । वर्धय । एनाम् । नुदस्व । रक्षः । प्र-तरम् । धेहि । एनाम् ॥ श्रिया । सम्-आनान् । अति । सर्वान् । स्याम । अधः-पदम् । द्विषतः । पादयामि ॥ २१ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन !] (वेदिम्) वेदी पर [यज्ञभूमिरूप हृदय में] (उदेहि) उदय हो (प्रजया) सन्तान के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (वर्धय) बढ़ा, (रक्षः) राक्षस [विघ्न] को (नुदस्व) हटा, (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् मुझ] को (प्रतरम्) अधिक उत्तमता से (धेहि) पुष्ट कर । (सर्वान्) सब (समानान्) समानों [तुल्य गुण वालों] से (श्रिया) लक्ष्मी द्वारा (अति स्याम) हम बढ़ जावें, (द्विषतः) शत्रुओं को (अधस्पदम्) पैरों के तले (पादयामि) मैं गिरा दूं ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा को अपने हृदय में विद्यमान जानते हैं, वे अपने सन्तानों सहित उन्नति करके विघ्नों को हटाकर सुख पाते हैं ॥ २१ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध—म० १२ में आचुका है ॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा मापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज २२

अभि-आवर्तस्व । पशु-भिः । सह । एनाम् । प्रत्यङ् । एनाम् । देवताभिः । सह । एधि ॥ मा । त्वा । प्र । आपत् । शपथः ।

२१—(उदेहि) उदागच्छ (वेदिम्) अ० ५ । २२ । १ । यज्ञभूमिम् (प्रजया) सन्तानेन सह (वर्धय) समर्धय (एनाम्) प्रजाम्, मामित्यर्थः (नुदस्व) प्रेरय (रक्षः) यज्ञविघातकं विघ्नम् (धेहि) पोषय (एनाम्) अन्यत् पूर्ववत्—म० १२ ॥

मा । अभि-चारः । स्वे । क्षेत्रे । अनमीवा । वि । राज ॥२२॥

भाषार्थ—[हे जीव !] (पशुभिः सह) सब दृष्टि वाले प्राणियों के साथ [मिलकर] (एनाम्) इस [प्रजा अर्थात् आत्मा] की ओर (अभ्यावर्तस्व) आकर घूम, (देवताभिः सह) जयकी इच्छाओं के साथ (एनाम्) इस [प्रजा अपने आत्मा] की ओर (प्रत्यङ्) आगे बढ़ता हुआ तू (एधि) वर्तमान हो। [हे प्रजा !] (त्वा) तुझको (मा) न तौ (शपथः) शाप (प्र आपत्) प्राप्त होवे और (मा) न (अभिचारः) विरुद्ध आचरण, (स्वे) अपने (क्षेत्रे) खेत [अधिकार] में (अनमीवा) नीरोग होकर (वि) विविध प्रकार (राज) राज्यकर ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब प्राणियों को अपने आत्मा से मिलाकर उन्नति करता जाता है, वह विजयी होकर पूरा आधिपत्य पाता है और धर्मात्मा होने के कारण उसको दुष्ट जन वाचिक और कायिक क्लेश नहीं दे सकते ॥ २२ ॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥२३॥

ऋतेन । तष्टा । मनसा । हिता । एषा । ब्रह्म-ओदनस्य । वि-हिता । वेदिः । अग्रे ॥ अंसद्रीम् । शुद्धाम् । उप । धेहि । नारि । तत्र । ओदनम् । सादय । दैवानाम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ--(ऋतेन) सत्य ज्ञान करके (तष्टा) बनाई गई, (मनसा) विज्ञान द्वारा (हिता) धरी गई (ब्रह्मौदनस्य) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न

२२—(अभ्यावर्तस्व) अभिलक्ष्य वर्तनं कुरु (पशुभिः) अ० १ । ३० । ३ । पशवो व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च-निरु० ११ । २९ । दृष्टृभिः प्राणिभिः (सह) (एनाम्) प्रजाम् (प्रत्यङ्) प्रत्यञ्चन्, आभिमुख्येन गच्छन् (एनाम्) (देवताभिः) विजिगीषाभिः (सह) (एधि) भव । वर्तस्व (मा प्रापत्) मा प्राप्नोतु (त्वा) (शपथः) शापः (मा) निषेधे (अभिचारः) विरुद्धाचारः (स्वे) स्वकीये (क्षेत्रे) अधिकारे (अनमीवा) रोगरहिता सती (वि) विविधम् (राज) शासनं कुरु ॥

२३—(ऋतेन) सत्येन (तष्टा) तनूकृता । निर्मिता (मनसा) विज्ञानेन (हिता) धृता (एषा) (ब्रह्मौदनस्य) म० १ । ब्रह्मणो वेदज्ञानस्यान्नस्य

वा धन के बरसाने वाले परमात्मा] की (एषा) यह (वेदिः) वेदी [यज्ञ-भूमि अर्थात् हृदय] (अग्रे) पहिले से (विहिता) बताई गयी है । (नारि) हे शक्तिमती [प्रजा !] (शुद्धाम्) शुद्ध (अंसध्रीम्) अंसध्री [कन्धों वा कानों वाली कढ़ाही अर्थात् बुद्धि] को (उप धेहि) चढ़ा दे, (तत्र) उस में (दैवानाम्) उत्तम गुणवाले पुरुषों के (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को (सादय) बैठा दे ॥ २३ ॥

भावार्थ—योगी मन की वेदी अर्थात् यज्ञकुण्ड पर बुद्धि की कढ़ाही में अन्नरूप परमात्मा को सावधानी से धरे ॥ २३ ॥

अदि॑ते॒र्हस्तां॒ स्रुच॑मे॒तां द्वि॒तीयां॑ सप्तऋ॒षयो॑ भूत॒कृतो॒ याम॑कृ॒ण्वन् । सा गात्रा॑णि वि॒दुष्यो॑द॒नस्य॒ दर्वि॒र्वेद्या॒मध्ये॑नं चिनोतु॥२४

अदि॑तेः । हस्ता॑म् । स्रुच॑म् । ए॒ताम् । द्वि॒तीया॑म् । स॒प्त॒-ऋ॒षयः॑ । भू॒त॒-कृतः॑ । याम् । अकृ॑ण्वन् ॥ सा । गात्रा॑णि । वि॒दुषी॑ । ओ॒द॒नस्य॑ । दर्विः॑ । वेद्या॑म् । अधि॑ । ए॒न॒म् । चि॒नो॒तु ॥२४॥

भाषार्थ—(भूतकृतः) उचित कर्म करने वाले (सप्तऋषयः) सात ऋषियों [व्यापन शील वा दर्शन शील, अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा नाक, मन और बुद्धि] ने (अदितेः) अदिति [अखण्ड व्रतवाला प्रजा] के (याम्) जिस (हस्ताम्) खिली हुई [मनोहर], (एताम्) इस (द्वितीयाम्) दूसरी

वा सेचकस्य वर्षकस्य परमात्मनः (विहिता) विधिना बोधिता (वेदिः) यज्ञभूमिः, हृदयमित्यर्थः (अग्रे) पूर्वकाले (अंसध्रीम्) अमेः सन् । उ० ५ । २१ । अम रोगे, पीडने, गतौ भोजने च—सन्+धु गतौ-ड, ङीप् । भोजनपाचनपात्रम् । कटाहम् (शुद्धाम्) निर्मलाम् (उप धेहि) उपरि धारय (नारि) म० १३ । हे शक्तिमति प्रजे (तत्र) तस्मिन् पात्रे (ओदनम्) म० १७ । अन्नरूपं परमात्मानम् (सादय) स्थापय (दैवानाम्) दिव्यगुणवतां पुरुषाणाम् ॥

२४—(अदितेः) म० १ । अखण्डव्रतायाः प्रजायाः (हस्ताम्) इड-भावः । हसिताम् । विकसिताम् । मनोहराम् (स्रुचम्) चिक् च । उ० २ । ६२ । स्रु गतौ-चिक् । यज्ञपात्रम् । चमसम् । चित्तवृत्तिमित्यर्थः (एताम्) (द्वितीयाम्) शारीरिकभिन्नां मानसीम् (सप्तऋषयः) म० १ । त्वक्चक्षुः श्रवणादयः

[शारीरिक से भिन्न मानसिक] (स्रुचम्) स्रुचा [डोई अर्थात् चित्तवृत्ति] को (अकृण्वन्) बनाया है। (ओदनस्य) ओदन [सुखकी वर्षा करनेवाले अन्नरूप परमात्मा] के (गात्राणि) अङ्गों [गुणों के तत्त्वों] को (विदुषी) जानती हुई (सा) वह (दर्विः) करछी [चित्तवृत्ति] (वेद्याम्) वेदी पर [हृदय में] (एनम्) इस [अन्न रूप परमात्मा] को (अधि) अधिक अधिक (चिनोतु) एकत्र करे ॥ २४ ॥

भावार्थ—इन्द्रियों द्वारा विषयों के ज्ञान से बाहिरी और भीतरी दो वृत्तियां उत्पन्न होती हैं। बाहिरी वृत्ति भीतरी वृत्तिके आधीन है। योगी को उचित है कि भीतरी वृत्तियों को परमात्मा के गुणों में लगाकर उस जगदीश्वर को अपने हृदय में बैठावे, जैसे वेदी पर चढ़ी बटलोही के घृत आदि को करछी से संभाल संभाल कर उपकारी बनाते हैं ॥ २४ ॥

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद। सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥ २५ ॥

शृतम्। त्वा। हव्यम्। उप। सीदन्तु। दैवाः। निः-सृप्य। अग्नेः। पुनः। एनान्। प्र। सीद ॥ सोमेन। पूतः। जठरे। सीद। ब्रह्मणाम्। आर्षेयाः। ते। मा। रिषन्। प्र-अशितारः २५

भाषार्थ—[हे ओदन] (दैवाः) उत्तम गुण वाले पुरुष (शृतम्) परिपक्व, (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (त्वा उप) तेरे समीप (सीदन्तु) बैठें, (अग्नेः) अग्नि से (निःसृप्य) निकलकर (पुनः) अवश्य (एनान्) इन

(भूतकृतः) म० १। उचितकर्मकर्तारः (याम्) स्रुचम् (अकृण्वन्) अकुर्वन् (सा) (गात्राणि) अङ्गानि। गुणतत्त्वानि (विदुषी) जानती (ओदनस्य) सुखवर्षकस्यान्नरूपस्य परमात्मनः (दर्विः) उल्मुकदर्विहोमनः। उ० ३। ८४। दृ विदारणे-विन्। व्यञ्जनादिहारकं पात्रम् (वेद्याम्) यज्ञभूमौ (अधि) उपरि (एनम्) ब्रह्मौदनम् (चिनोतु) राशीकरोतु ॥

२५—(शृतम्) श्रा पाके-क्त। शृतं पाके। पा० ६। १। २७। इति शृभावः। परिपक्वम् (त्वा) त्वाम्। ओदनम् (हव्यम्) ग्राह्यम् (उप सीदन्तु) समीपे तिष्ठन्तु (दैवाः) दिव्यगुणाः पुरुषाः (निःसृप्य) निर्गत्य (अपि) सम्भावनायाम्

[पुरुषों] को (प्रसीद) प्रसन्न कर । (सोमेन) अमृत रस से (पूतः) शोधा हुआ तू (ब्रह्मणाम्) ब्राह्मणों [ब्रह्मज्ञानियों] के (जठरे) पेट में (सीद) बैठ, (ते) तेरे (प्राशितारः) भोग करने वाले (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात पुरुष (मा रिषन्) न दुःखी होवें ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि तप से परमात्मा को अपने हृदय में दृढ़ करके बैठालते हैं, वे क्लेशों से छूटकर आनन्द भोगते हैं, जैसे मनुष्य परिपक्व उत्तम अन्न को अग्नि पर से उतार कर परोसते और भोजन करके भूख से निवृत्त होकर तृप्त होते हैं ॥ २५ ॥

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् । ऋषीनार्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥ २६ ॥

सोम । राजन् । सम्-ज्ञानम् । आ । वप । एभ्यः । सु-ब्राह्मणाः । यतमे । त्वा । उप-सीदान् ॥ ऋषीन् । आर्षेयान् । तपसः । अधि । जातान् । ब्रह्म-ओदने । सु-हवा । जोहवीमि ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(सोम) हे सर्वप्रेरक (राजन्) राजन् ! [परमात्मन्] (संज्ञानम्) चेतन्यता (एभ्यः) उनके लिये (आ वप) फैला दे, (यतमे) जो जो (सुब्राह्मणाः) अच्छे अच्छे ब्राह्मण [बड़े ब्रह्मज्ञानी](त्वा) तुझ को (उपसीदान्) प्राप्त होवें । (तपसः) तप से (अधि) अधिकार पूर्वक (जातान्)

(अग्नेः) पावकात् (पुनः) अवश्यम् (एनान्) उपसत्तॄन् (प्र सीद) प्रसन्नान् कुरु । संतोषय (सोमेन) अमृतरसेन (पूतः) शोधितः (जठरे) उदरे (सीद) उपविश (ब्रह्मणाम्) ब्रह्मज्ञानिनाम् (आर्षेयाः) म० १६ । ऋषिषु विख्याताः (ते) तव (मा रिषन्) मा विनश्यन्तु (प्राशितारः) प्रकर्षेण भोक्तारः ॥

२६—(सोम) हे सर्वप्रेरक (राजन्) परमैश्वर्यवन् (संज्ञानम्) यथार्थज्ञानम् (आ वप) प्रक्षिप (एभ्यः) ब्राह्मणेभ्यः (सुब्राह्मणाः) श्रेष्ठब्रह्मज्ञानिनः (यतमे) बहुषु ये (त्वा) (उप सीदान्) सेदतेर्लेटि, आडागमः। उपसीदन्तु । सेवन्ताम् (ऋषीन्) सूक्ष्मदर्शिनः पुरुषान् (आर्षेयान्) म० १६ । ऋषिषु व्या-

प्रसिद्ध (ऋषीन्) ऋषियों और (आर्षेयान्) ऋषियों में विख्यात पुरुषों को (ब्रह्मौदने) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] के विषय में (सुहवा) सुन्दर बुलावे से (जोहवीमि) मैं पुकार पुकार कर बुलाता हूं ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्य बड़े ब्रह्मज्ञानी ऋषी महात्माओं से आदर पूर्वक ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करके आनन्द पावे ॥ २६ ॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि । यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥ २७ ॥

शुद्धाः । पूताः । योषितः । यज्ञियाः । इमाः । ब्रह्मणाम् । हस्तेषु । प्र-पृथक् । सादयामि ॥ यत्-कामः । इदम् । अभि-सिञ्चामि । वः । अहम् । इन्द्रः । मरुत्वान् । सः । ददात् । इदम् । मे ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(शुद्धाः) शुद्ध स्वभाव वाली, (पूताः) पवित्र आचरण वाली, (यज्ञियाः) पूजनीय (इमाः) इन (योषितः) सेवा योग्य [प्रजाओं] को (ब्रह्मणाम्) ब्रह्मज्ञानियों के (हस्तेषु) हाथों में [विज्ञान के बलों में] (प्रपृथक्) नाना प्रकार से (सादयामि) मैं बिठलाता हूं। [हे प्रजाओ !] (यत्कामः) जिस उत्तम कामना वाला (अहम्) मैं (इदम्) इस समय (वः) तुम्हारा (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूं, (सः) वह (मरुत्वान्) दोष नाशक गुणों वाला (इन्द्रः) संपूर्ण ऐश्वर्यवान् जगदीश्वर (इदम्) वह वस्तु (मे) मुझे (ददात्) देवे ॥ २७ ॥

ख्यातान् (तपसः) तपश्चरणात् (अधि) अधिकारपूर्वकम् (जातान्) प्रसिद्धान् (ब्रह्मौदने) म० १ । परमेश्वरविषये (सुहवा) सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९ । इत्याकारः । सुहवेन । यथाविध्यावाहनेन (जोहवीमि) अ० २ । १२ । ३ । पुनः पुनराह्वयामि ॥

२७—(योषितः) अ० १ । १७ । १ । सेव्याः प्रजाः (ददात्) लेटि रूपम् । ददातु (इदम्) काम्यमानं फलम् । अन्यत् पूर्ववत्-अ० [illegible] । ५ ॥

भावार्थ—सब प्रजायें अर्थात् स्त्री पुरुष महात्माओं के सत्संग से ईश्वर ज्ञान द्वारा शुद्ध आचरण करके उन्नति करें ॥ २७ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आचुका है-अ० ६। १२२। ५। और दूसरा, तीसरा पाद-अ० १०। ६। २७॥

इ॒दं मे॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ हिर॑ण्यं प॒क्वं क्षेत्रा॑त् काम॒दुघा॑ म ए॒षा ।
इ॒दं धनं॒ नि द॑धे ब्राह्म॒णेषु॑ कृण्वे पन्था॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥२८॥

इ॒दम् । मे॒ । ज्योतिः॑ । अ॒मृत॑म् । हिर॑ण्यम् । प॒क्वम् । क्षेत्रा॑त् । का॒म॒-दुघा॑ । मे॒ । ए॒षा ॥ इ॒दम् । धन॑म् । नि । द॒धे॒ । ब्रा॒ह्म॒णेषु॑ । कृ॒ण्वे । पन्था॑म् । पि॒तृषु॑ । यः । स्वः॒-गः ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(इदम्) यह (मे) मेरा (ज्योतिः) चमकता हुआ (अमृतम्) मृत्यु से बचाने वाला (हिरण्यम्) सुवर्ण, (क्षेत्रात्) खेत से [लाया गया] (पक्वम्) पका हुआ [अन्न], और (एषा) यह (मे) मेरी (कामदुघा) कामना पूरी करने वाली [कामधेनु गौ] है। (इदम्) इस (धनम्) धन को (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मज्ञानों में [वेद प्रचार व्यवहारों में] (नि दधे) मैं धरता हूं, और (पन्थाम्) मार्ग को (कृण्वे) मैं बनाता हूं, (यः) जो (पितृषु) पालन करने वाले [विज्ञानियों] के बीच (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला है ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपना सर्वस्व परमेश्वर को समर्पण करके सत्यज्ञान द्वारा संसार का उपकार करते हैं, वे विद्वानों के बीच कीर्ति पाते हैं ॥२८॥

अ॒ग्नौ तुषा॒ना व॑प जा॒तवे॑दसि प॒रः क॒म्बूका॑ँ अप॑ मृड्ढि दू॒रम् ।
ए॒तं शु॑श्रुम गृहरा॒जस्य॑ भा॒गमथो॑ वि॒द्म निर्ऋ॑तेर्भाग॒धेय॑म् । २९ ।

२८—(इदम्) उपस्थितम् (मे) मम (ज्योतिः) दीप्यमानम् (अमृतम्) नास्ति मृतं मरणं यस्मात् तत् (हिरण्यम्) सुवर्णम् (पक्वम्) परिणतमन्नम् (क्षेत्रात्) सस्यप्रदेशात् (कामदुघा) अ० ४। ३४। ८। कामनां दोग्ध्री प्रपूरयित्री। कामधेनुर्गौः (मे) मम (एषा) (इदम्) (धनम्) (नि दधे) स्थापयामि (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मज्ञानप्रचारेषु (कृण्वे) करोमि (पन्थाम्) पन्थानम्। मार्गम् (पितृषु) पालकेषु विज्ञानिषु (यः) पन्थाः (स्वर्गः) सुखस्य गमयिता प्रापकः ॥

अग्नौ । तुषान् । आ । वप । जात-वेदसि । परः । कम्बूकान् । अप । मृड्ढि । दूरम् ॥ एतम् । शुश्रुम । गृह-राजस्य । भागम् । अथो इति । विद्म । निः-ऋतेः । भाग-धेयम् ॥ २९ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्य !] (तुषान्) तुष [भुस] को (जातवेदसि) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्नौ) अग्नि के बीच (आ वप) फैला दे, (कम्बूकान्) कम्बूकों [छिलकों] को (परः) बहुत) (दूरम्) दूर (अप मृड्ढि) धोकर फेंक दे। (एतम्) इसको (गृहराजस्य) घरके राजा [गार्हपत्य अग्नि] का (भागम्) भाग (शुश्रुम) हमने सुना है, (अथो) और भी (निर्ऋतेः) पृथिवी का (भागधेयम्) भाग (विद्म) हम जानते हैं ॥ २९ ॥

भावार्थ—अन्न का जो चोकर भुसी कुछ आग में और कुछ धो धाकर पृथिवी पर दूर फेंक देते हैं, उस सब में अर्थात् तुच्छ पदार्थ में भी विज्ञानी पुरुष परमेश्वर की महिमा देखते हैं ॥ २९ ॥

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् । येन रोहात् परमापद्य यद् वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ३०(३)

श्राम्यतः । पचतः । विद्धि । सुन्वतः । पन्थाम् । स्वः-गम् । अधि । रोहय । एनम् ॥ येन । रोहात् । परम् । आ-पद्य । यत् । वयः । उत्-तमम् । नाकम् । परमम् । वि-ओम ॥ ३० ॥ (३)

२९—(अग्नौ) पावके (तुषान्) धान्यत्वचः (आ वप) प्रक्षिप (जातवेदसि) उत्पन्नपदार्थेषु विद्यमाने (परः) परस्तात् (कम्बूकान्) उलूकादयश्च । उ० ४ । ४१ । कमु कान्तौ-ऊक, बुगागमः । वल्कलानि (अप मृड्ढि) मृजू शौचालङ्कारयोः—लोट्, अदादिश्चुरादिश्च । विशेषेण मार्जय शोधय (दूरम्) (एतम्) (शुश्रुम) वयं श्रुतवन्तः (गृहराजस्य) राजाहः सखिभ्यष्टच् । पा० ५ । ४ । ९१ । इति टच् । गार्हपत्यस्याग्नेः (भागम्) अंशम् (अथो) अपि च (विद्म) विदो लटो वा । पा० ३ । ४ । ८३ । मसो मादेशः । विद्मः । जानीमः (निर्ऋतेः) निः+ऋ गतौ—क्तिन् । नितराम् ऋतिर्गतिर्यस्याः सा निर्ऋतिः । तस्याः पृथिव्याः । निर्ऋतिः पृथिवीनाम—निघ० १ । १ । निर्ऋतिर्निरमणादृच्छतेः कृच्छ्रापत्तिरितरा—निरु० २ । ७ (भागधेयम्) भागम् ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] (श्राम्यतः) श्रमी [ब्रह्मचारी आदि तपस्वी] का, (पचतः) पक्का करनेवाले [दृढ़ निश्चय करनेवाले], (सुन्वतः) तत्त्व निचोड़ने वाले [विज्ञानी पुरुष] का (विद्धि) तू ज्ञान कर और (स्वर्गम्) सुख पहुंचाने वाले (पन्थाम्) मार्ग में (एनम्) इस [जीव] को (अधि) ऊपर (रोहय) चढ़ा। (येन) जिस [मार्ग] से वह [जीव] (यत्) जो (परम्) बड़ा उच्च (वयः) जीवन है, [उसको] (आपद्य) पाकर (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) सुख स्वरूप (परमम्) सर्वोत्कृष्ट (व्योम) विविध रक्षक [परब्रह्म ओ३म्] को (रोहात्) ऊंचा होकर पावे ॥ ३० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य तपस्वी, दृढ़विश्वासी और विवेकी होकर अपना जीवन सुधारते हैं, वे ही सर्वरक्षक, [ओ३म्] परमात्मा को पाते अर्थात् उस की आज्ञा पालकर संसार का सुधार करते हैं ॥ ३० ॥

ब॒भ्रेर॑ध्वर्यो॒ मुख॑मे॒तद्वि मृ॑ड्ढ्याज्याय॑ लो॒कं कृ॑णुहि प्रवि॒द्वान्। घृ॒तेन॒ गात्रानु॒ सर्वा॒ वि मृ॑ड्ढि कृ॒ण्वे पन्थां॑ पि॒तृषु॒ यः स्व॒र्गः ॥ ३१ ॥

ब॒भ्रेः। अ॒ध्व॒र्यो इति॑। मुख॑म्। ए॒तत्। वि। मृ॒ड्ढि। आ॒ज्याय॑। लो॒कम्। कृ॒णु॒हि॒। प्र॒-वि॒द्वान्॥ घृ॒तेन॑। गात्रा॑। अनु॑। सर्वा॑। वि। मृ॒ड्ढि॒। कृ॒ण्वे। पन्था॑म्। पि॒तृषु॑। यः। स्वः॒-गः॥ ३१

३०—(श्राम्यतः) श्रमु तपसि खेदे च—शतृ। शमामष्टानां दीर्घः श्यनि। पा० ७। ३। ७४। इति दीर्घः तप्यमानस्य ब्रह्मचारिणः (पचतः) डु पचष् पाके-शतृ। परिपक्वस्य। दृढनिश्चयस्य (विद्धि) ज्ञानं कुरु (सुन्वतः) षुञ् पीडने-शतृ। तत्त्वस्य पीडनं मन्थनं कुर्वतः पुरुषस्य (पन्थाम्) मार्गम् (स्वर्गम्) सुखप्रापकम् (अधि) उपरि (रोहय) आरोहय। स्थापय (एनम्) जीवम् (येन) पथा (रोहात्) रोहेत्। अधितिष्ठेत् (परम्) उच्चम् (आपद्य) प्राप्य (यत्) (वयः) सर्वधातुभ्योऽसुन्। उ० ४। १८९। वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु, यद्वा वय गतौ -असुन्। वयः=अन्नम्—निघ० २। ७। जीवनम् (उत्तमम्) (नाकम्) सुखस्वरूपम् (परमम्) सर्वोत्कृष्टम् (व्योम) वि+अव—मनिन्। व्योमन् व्यवने—निरु० ११। ४०। विविधं रक्षकम्, ओ३म्, इति संज्ञकं परब्रह्म ॥

भाषार्थ—(अध्वर्यो) हे हिंसा के न करने वाले पुरुष ! (बभ्रेः) पोषण करनेवाले [अन्नरूप परमेश्वर] के (एतत्) इस (मुखम्) मुख [भोजन के ऊपरी भाग] को (वि मृड्ढि) संवार ले, (प्रविद्वान्) बड़ा ज्ञानवान् तू (आज्याय) घी के लिये (लोकम्) स्थान (कृणुहि) बना। (घृतेन) घी से (सर्वा) सब (गात्रा) अङ्गों को (अनु) निरन्तर [देख भाल करके] (वि मृड्ढि) शोध ले, (पन्थाम्) मार्ग (कृणवे) मैं बनाता हूं (यः) जो [मार्ग] (पितृषु) पालन करने वाले [विज्ञानियों] के बीच (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जैसे थाली में चावल आदि भोजन परोसकर और संवार कर ऊपर घृत आदि छोड़कर स्वादिष्ठ बनाते हैं, वैसे ही योगी भोजन रूप परमात्मा को [थाली रूप] हृदय में धारण करके [घृत रूप] ज्ञान से विचारता हुआ विज्ञानियों में आनन्द पावे ॥ ३१ ॥

बभ्रे॒ रक्षः॑ स॒मद॒मा व॑पै॒भ्योऽब्रा॑ह्मणा॒ यत॒मे त्वो॑प॒सीदा॑न्। पु॒री॒षिणः॑ प्रथ॑मानाः पु॒रस्ता॑दा॒र्षे॒या॒स्ते॒ मा रि॑षन् प्राशि॒तारः॑ ॥ ३२ ॥

बभ्रे॑। रक्षः॑। स॒-मद॑म्। आ। व॒प॒। ए॒भ्यः॒। अब्रा॑ह्मणाः। य॒त॒मे। त्वा॒। उ॒प॒-सीदा॑न्॥ पु॒री॒षिणः॑। प्रथ॑मानाः। पु॒रस्ता॑त्। आ॒र्षे॒याः। ते॒। मा। रि॒ष॒न्। प्र॒-अ॒शि॒तारः॑ ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(बभ्रे) हे पोषक ! [अन्नरूप परमात्मन्] (रक्षः) विघ्न और (समदम्) लड़ाई (एभ्यः) उनके लिये (आ वप) फैला दे, (यतमे)

३१—(बभ्रेः) आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च । पा० ३ । २ । १७१ । डु भृञ् धारणपोषणयोः-किप्रत्ययः । पोषकस्य । अन्नरूपस्य परमेश्वरस्य (अध्वर्यो) अ० ७ । ७३ । ५ । न ध्वरति न हिनस्तीति अध्वरः । ध्वृ कौटिल्ये हिंसायां च-अच् । ध्वरति वधकर्मा-निघ० २ । १९ । अध्वर+या प्रापणे-कु । हे अहिंसाप्रापक (मुखम्) उपरिदेशम् (एतत्) (विमृड्ढि) म० २९ । विशेषेण शोधय भूषय (आज्याय) घृतमिश्रणाय (लोकम्) स्थानम् (कृणुहि) कुरु (प्रविद्वान्) प्रकर्षेण जानन् (घृतेन) सर्पिषा (गात्रा) अङ्गानि (अनु) अनुक्रमेण (सर्वा) सर्वाणि (विमृड्ढि) (कृणवे) करोमि (पन्थाम्) पन्थानम् (पितृषु) पालकेषु । विज्ञानिषु (यः) पन्थाः (स्वर्गः) सुखस्य गमयिता ॥

३२—(बभ्रे) म० ३१ । हे पोषक (रक्षः) रक्ष्यते यस्मात् । विघ्नम् (समदम्) सम्+अद भक्षणे-क्विप् । यद्वा सम्+मदी हर्षे-क्विप्, समो मलोपः

जो (अब्राह्मणाः) अब्राह्मण [अब्रह्मज्ञानी] (त्वा) तुझको (उपसीदान्) प्राप्त होवें। (पुरीषिणः) पूर्ति रखने वाले, (पुरस्तात्) आगे आगे (प्रथमानाः) फैलते हुये, (आर्षेयाः) ऋषियों में विख्यात (ते) तेरे (प्राशितारः) भोग करने वाले पुरुष (मा रिषन्) न दुःखी होवें ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जैसे कुपथ्य भोजी प्राणी रोगी होजाते हैं, वैसे ही, नास्तिक पाखंडी लोग क्लेश पाते हैं। और जैसे सुपथ्य भोजी तृप्त होकर बली होते हैं, वैसे ही ऋषि मुनि परमात्मा की आज्ञा पालने में आनन्द पाते हैं ॥ ३२ ॥

इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध का मिलान पूर्वार्द्ध–म० २६ से और उत्तरार्द्ध का उत्तरार्द्ध–म० २५ से करो ॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र । अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥३३॥

आर्षेयेषु । नि । दधे । ओदन । त्वा । न । अनार्षेयाणाम् । अपि । अस्ति । अत्र ॥ अग्निः । मे । गोप्ता । मरुतः । च । सर्वे । विश्वे । देवाः । अभि । रक्षन्तु । पक्वम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—(ओदन) हे ओदन ! [सुख की बरसा करने वाले, अन्नरूप परमेश्वर] (आर्षेयेषु) ऋषियों में विख्यातों के बीच (त्वा) तुझको (निदधे) मैं धरता हूं, (अनार्षेयाणाम्) ऋषियों में विख्यातों से भिन्न लोगों

समत्सु संग्रामनाम–निघ० २। १७। समदः समदो वात्तेः सम्मदो वा मदनेः–निरु० ९। १७। युद्धम् (आ वप) प्रक्षिप (एभ्यः) वक्ष्यमाणेभ्यः (अब्राह्मणाः) अब्रह्मज्ञानिनः (पुरीषिणः) शॄपॄभ्यां किच्च। उ० ४। २७। पॄ पालनपूरणयोः–ईषन्, कित्, णिनि। पुरीषमुदकनाम–निघ० १। १२। पुरीषं पृणातेः पूरयतेर्वा–निरु० २। २२। पूर्तियुक्ताः (प्रथमानाः) विस्तीर्यमाणाः (पुरस्तात्) अग्रे (आर्षेयाः) म० १६। ऋषिषु विख्याताः (ते) तव (मा रिषन्) मा हिंसन्ताम् (प्राशितारः) प्रकर्षेण भोक्तारः ॥

३३—(आर्षेयेषु) म० १६। ऋषिषु विख्यातेषु (नि दधे) स्थापयामि (ओदन) म० १७। हे सुखस्य वर्षक (त्वा) त्वाम् (न) निषेधे (अनार्षेयाणाम्) ऋषिषु विख्यातेभ्यो भिन्नानां पाखण्डिनाम् भाग,इति शेषः (अपि)

का [भाग] (अत्र) इसमें (अपि) कभी (न) नहीं (अस्ति) है। (मे) मेरा (गोप्ता) रक्षक (अग्निः) अग्नि [शारीरिक अग्नि] (च) और (सर्वे) सब (मरुतः) प्राण वायु [प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान] और (विश्वे) सब (देवाः) इन्द्रियां (पक्वम्) पक्के [दृढ़स्वभाव परमात्मा] को (अभि) सब ओर से (रक्षन्तु) रक्खें ॥ ३३ ॥

भावार्थ—ऋषि महात्मा लोग ही परमात्मा के गुणों को जान सकते हैं, इतर लोग नहीं। मनुष्य अपने शरीरस्थ अग्नि, वायु आदि और इन्द्रियों के सूक्ष्म संगठन और कर्मों के भीतर परमेश्वर की महिमा को विचारें ॥ ३३ ॥

य॒ज्ञं दुहा॑नं॒ सद॒मित् प्रपी॑नं॒ पुमां॑सं धे॒नुं सद॑नं र॒यीणाम् ।
प्र॒जामृ॑त॒त्वमु॒त दी॒र्घमायू॑ रा॒यश्च॒ पोषै॒रुप॑ त्वा सदेम ॥३४॥

य॒ज्ञम् । दुहा॑नम् । सद॑म् । इत् । प्र-पी॑नम् । पुमां॑सम् । धे॒नुम् । सद॑नम् । र॒यीणाम् ॥ प्र॒जा-अ॒मृ॒त॒त्वम् । उ॒त । दी॒र्घम् । आयुः॑ । रा॒यः । च॒ । पोषैः॑ । उप॑ । त्वा॒ । स॒दे॒म ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन्!] (यज्ञम्) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] को, (प्रपीनम्) बढ़े हुये [समृद्ध] (पुमांसम्) रक्षक [पुरुषार्थी] को, (धेनुम्) तृप्त करने वाली [वाणी अर्थात् विद्या, वा गौ] को, (रयीणाम्) धनों के (सदनम्) घर को, (प्रजामृतत्वम्) प्रजा [जनता वा सन्तान] के अमरण को, (उत) और (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) जीवन को (च) निश्चय करके

सम्भावनायाम् (अस्ति) (अत्र) ओदनविषये (अग्निः) जाठराग्निः (मे) मम (गोप्ता) गोपायिता रक्षिता (मरुतः) प्राणादयो वायवः (च) (सर्वे) (विश्वे) समस्ताः (देवाः) इन्द्रियाणि (अभि) सर्वतः (रक्षन्तु) धरन्तु (पक्वम्) दृढस्वभावं परमेश्वरम् ॥

३४—(यज्ञम्) पूजनीयं व्यवहारम् (दुहानम्) दुह प्रपूरणे-शानच् । प्रपूरयन्तम् (सदम्) सदा (इत्) एव (प्रपीनम्) ओ प्यायी वृद्धौ—क्त । प्रवृद्धं समृद्धम (पुमांसम्) अ० १ । ८ । १ । पा रक्षणे-डुमसुन् । पातारं रक्षकं पुरुषम् (धेनुम्) अ० ३ । १० । १ । धेञ् धारणतर्पणयोः–नु । धेनुर्वाङ्नाम–निघ० ११ । ४२ । तर्पयित्रीं वाचं विद्यां गां वा (सदनम्) गृहम् (रयीणाम्) धनानाम्

(रायः) धन की (पोषैः) पुष्टियों से (सदम् इत्) सदा ही (दुहानम्) पूर्ण करते हुये (त्वा) तुझ को (उप) आदर से (सदेम) हम प्राप्त होवें ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना में तत्पर रहते हैं, वे उत्तम व्यवहार, समृद्ध पुरुषों, विद्या, गौ, धन के कोष, प्रजा और सन्तान की वृद्धि और दीर्घ जीवन को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं ॥ ३४ ॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीनार्षेयान् गच्छ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

वृषभः । असि । स्वः-गः । ऋषीन् । आर्षेयान् । गच्छ ॥ सु-कृताम् । लोके । सीद । तत्र । नौ । संस्कृतम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] तू (वृषभः) महाबली और (स्वर्गः) सुख पहुंचाने वाला (असि) है, (ऋषीन्) ऋषियों [सूक्ष्मदर्शियों] को और (आर्षेयान्) ऋषियों में विख्यात पुरुषों को (गच्छ) प्राप्त हो । (सुकृताम्) सुकर्मियों के (लोके) समाज में (सीद) बैठ, (तत्र) वहां (नौ) हम दोनों का (संस्कृतम्) संस्कार होवे [अर्थात् मैं तेरी उपासना करूं और तू मुझे बल देवे] ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जगदीश्वर की उपासना करके पुण्यात्माओं के समान व्यवहार करते हैं, वे बली और सुखी होते हैं ॥ ३५ ॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् । एतैः सुकृतैरनु गच्छेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥ ३६ ॥

(प्रजामृतत्वम्) जनतायाः सन्तानस्य वा मृत्युराहित्यम् (उत) अपि (दीर्घम्) प्रवृद्धम् (आयुः) जीवनम् (रायः) धनस्य (च) अवधारणे (पोषैः) समृद्धिभिः सह (उप) आदरेण (त्वा) त्वां परमात्मानम् (सदेम) षद्लृ गतौ-आशीर्लिङ् । लिङ्याशिष्यङ् पा० ३ । १ । ८६ । इत्यङ् । सद्यास्म । गम्यास्म ॥

३५—(वृषभः) अ० ४ । ५ । १ । वृषु प्रजनैश्वर्ययोः—अभच् , कित् । महाबली (असि) (स्वर्गः) सुखस्य गमयिता (ऋषीन्) सूक्ष्मदर्शिनः पुरुषान् (आर्षेयान्) म० १३ । ऋषिषु विख्यातान् (गच्छ)प्राप्नुहि (सुकृताम्) सुकर्मिणाम् (लोके) समाजे (सीद) तिष्ठ (तत्र) समाजे (नौ) आवयोः । मम च तव च (संस्कृतम्) संस्कारः ॥

सम्-आचिनुष्व । अनु-सम्प्रयाहि । अग्ने । पथः । कल्पय । देव-यानान् ॥ एतैः । सु-कृतैः । अनु । गच्छेम । यज्ञम् । नाके । तिष्ठन्तम् । अधि । सप्त-रश्मौ ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—(अग्ने) हे विद्वान् पुरुष ! (देवयानान्) देवताओं [विजय चाहने वालों] के चलने योग्य (पथः) मार्गों को (समाचिनुष्व) चौरस करके ठीक ठीक सुधार, [उनपर] (अनु संप्रयाहि) निरन्तर यथाविधि आगे बढ़, [और उन्हें दूसरों के लिये] (कल्पय) बना । (एतैः) इन (सुकृतैः) सुन्दर [विचार से] बनाये हुये [मार्गों] द्वारा (सप्तरश्मौ) सात किरणों वाले (नाके) [लोकों वा प्रकाश आदि के चलाने वाले] सूर्य पर (अधि) राजा होकर (तिष्ठन्तम्) ठहरे हुये (यज्ञम्) पूजनीय [परमात्मा] को (अनु) निरन्तर (गच्छेम) पावें ॥ ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि वे वेदद्वारा विचार पूर्वक अपना आचरण ऐसा धार्मिक बनावें, जिसके अनुकरण से सब मनुष्य सूर्य आदि के प्रकाशक परमात्मा को प्राप्त होकर शुभगुणों से प्रकाशमान होवें । सूर्य की किरणों में शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र, ये सात वर्ण हैं ॥३६॥

३६—(समाचिनुष्व) चिञ् चयने-लोट् । समाभावेन समन्ताद् रचनं कुरु (अनु संप्रयाहि) निरन्तरं सम्यक् प्रकर्षेण गच्छ (अग्ने) हे विद्वन् पुरुष (पथः) मार्गान् (कल्पय) विरचय (देवयानान्) विजिगीषुभिर्गन्तव्यान् (एतैः) पूर्वोक्तैः (सुकृतैः) सुनिर्मितैःपथिभिः (अनु) निरन्तरम् (गच्छेम) प्राप्नुयाम (यज्ञम्) पूजनीयं परमात्मनम् (नाके) अ० १ । ९ । २ । पिनाकादयश्च । उ० ४ । १५ । णीञ् प्रापणे आकप्रत्ययः, टिलोपः । नाक आदित्यो भवति नेता रसानां नेता भासां ज्योतिषां प्रणयः—निरु० २ । १४ । लोकानां प्रकाशादीनां वा नेतरि सूर्ये । यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी । पा० २ । ३ । ९ । इति कर्मप्रवचनीययुक्ते सप्तमी (तिष्ठन्तम्) विद्यमानम् (अधि) अधिरीश्वरे । पा० १ । ४ । ९७ । इति ईश्वरार्थे कर्मप्रवचनीयत्वम् । ईश्वरो भूत्वा (सप्तरश्मौ) अ० ९ । ५ । १५ । शुक्लनीलपीतादिवर्णाः सप्तकिरणाः सन्ति यस्मिन् तस्मिन् ॥

येन॑ दे॒वा ज्योति॑षा द्यामु॒दाय॑न् ब्रह्मौद॒नं प॒क्त्वा सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒कम् । तेन॑ गेष्म सुकृ॒तस्य॑ लो॒कं स्व॑रा॒रोह॑न्तो अ॒भि नाक॑मुत्त॒मम् ॥ ३७ ॥ (४)

येन॑ । दे॒वाः । ज्योति॑षा । द्याम् । उ॒त्-आय॑न् । ब्र॒ह्म-ओ॒द॒नम् । प॒क्त्वा । सु॒-कृ॒तस्य॑ । लो॒कम् ॥ तेन॑ । गे॒ष्म॒ । सु॒-कृ॒तस्य॑ । लो॒कम् । स्वः॑ । आ॒-रोह॑न्तः । अ॒भि । नाक॑म् । उ॒त्-त॒मम् ॥ ३७ ॥ (४)

भाषार्थ—(येन ज्योतिषा) जिस ज्योति द्वारा (देवाः) देवता [विजय चाहने वाले लोग (ब्रह्मौदनम्) ब्रह्म-ओदन [वेदज्ञान, अन्न वा धन के बरसाने वाले परमेश्वर] को (पक्त्वा) पक्का [मन में दृढ़] करके (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (द्याम्) प्रकाशमान (लोकम्) लोक [समाज] को (उदायन्) ऊपर पहुंचे हैं। (तेन) उसी [ज्योति] से (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःख रहित (स्वः) सुख स्वरूप परब्रह्म को (अभि=अभिलक्ष्य) लखकर (आरोहन्तः) चढ़ते हुये हम (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (लोकम्) समाज को (गेष्म) खोजें ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जिस वैदिक ज्योति द्वारा विजयी महात्मा लोगों ने चलकर परमात्मा को पाया है, उसी वैदिक ज्योति द्वारा परमात्मा को देखते हुये हम सब पुण्यात्माओं के बीच सुख पावें ॥ ३७ ॥

इस मन्त्र का उत्तरार्ध आचुका है—अ० ४ । १४ । ६ ॥

सूक्तम् २ ॥

१-३१ ॥ भवाशर्वौ रुद्रश्च देवताः । १ स्वराट् त्रिष्टुप् ; २ स्वराडार्षी त्रिष्टुप्; ३ भुरिगुष्णिक्; ४, ५, ७, १३, १५, १६, २१ अनुष्टुप्; ६ गायत्री ; ८ महाबृहती ;

३७—(येन) (देवाः) विजिगीषवः (ज्योतिषा) प्रकाशेन (द्याम्) प्रकाशमानम् (उदायन्) इण् गतौ—लङ् । उदगच्छन् (ब्रह्मौदनम्) म० १ । ब्रह्मणो वेदज्ञानस्यान्नस्य धनस्य वा सेचकं वर्षकं परमात्मानम् (पक्त्वा) दृढं कृत्वा (सुकृतस्य) सुकर्मणः (लोकम्) समाजम् (गेष्म) गेषृ अन्विच्छायाम्-लोट् । गेषामहै । अन्वेषणेन प्राप्नवामः । अन्यत् पूर्ववत्-अ० ४ । १४ । ६ ॥

६, २८ त्रिष्टुप् ; १० आर्ष्युष्णिक्; ११ पञ्चपदा शक्वरी; १२ भुरिक् त्रिष्टुप् ; १४, १७, १८, १६, २३, २६, २७ विराड् गायत्री; २० भुरिग् गायत्री ; २२ स्वराड् विराड् गायत्री; २४ भुरिग् जगती, २५ पञ्चपदाऽतिशक्वरी; २६ निचृज् जगती ; ३० उष्णिक् ; ३१ षट्पदा जगती ॥

शान्त्यर्थः पुरुषार्थोपदेशः—शान्ति के लिये पुरुषार्थ का उपदेश ॥

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् । प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ १ ॥

भवाशर्वौ । मृडतम् । मा । अभि । यातम् । भूतपती इति भूत-पती । पशुपती इति पशु-पती । नमः । वाम् ॥ प्रति-हिताम् । आ-यताम् । मा । वि । स्राष्टम् । मा । नः । हिंसिष्टम् । द्वि-पदः । मा । चतुः-पदः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(भवाशर्वौ) हे भव और शर्व ! [भव, सुख उत्पन्न करने वाले और शर्व, शत्रुनाशक परमेश्वर के तुम [दोनों गुणों] (मृडतम्) प्रसन्न हो, (मा अभियातम्) [हमारे] विरुद्ध मत चलो, (भूतपती) हे सत्ता के पालको ! (पशुपती) हे सब दृष्टि वालों के रक्षको ! (वाम्) तुम दोनों को (नमः) नमस्कार है। (प्रतिहिताम्) लक्ष्य पर लगाई हुई और (आयताम्) तानी हुई [इषु, तीर] को (मा वि स्राष्टम्) तुम दोनों मत छोड़ो, (मा) न

१—(भवाशर्वौ) अ० ४ । २८ । १। भवत्युत्पद्यते सुखमस्मादिति भवः, सुखोत्पादको गुणः । शृणाति शत्रून् इति शर्वः, शॄ हिंसायाम्—व । भवश्च शर्वश्च भवाशर्वौ, ईश्वरगुणौ । देवताद्वन्द्वे च । पा० ६ । ३ । २६ । इति आनङ् । अस्मिन् सूक्ते गुणवर्णनेन गुणिग्रहणम् (मृडतम्) सुखिनौ प्रसन्नौ भवतम् (मा) निषेधे (अभियातम्) अभिमुखं विरुद्धं गच्छतम् (भूतपती) प्राणिनां पालकौ (पशुपती) दृष्टिमतां रक्षकौ (नमः) नमस्कारः (वाम्) युवाभ्याम् (प्रतिहिताम्) लक्ष्यीकृत्य संहितामारोपिताम् (आयताम्) आङ्+यम—क्त । आकृष्टां प्रसारिताम् इषुमिति शेषः (मा वि स्राष्टम्) सृज विसर्गे तुदादिः । माङि लुङि रूपम् । नैव विसृजतम् (नः) अस्माकम् (मा हिंसिष्टम्) मा पीडयतम् (द्विपदः)

(नः) हमारे (द्विपदः) दोपायों और (मा) न (चतुष्पदः) चौपायों को (हिंसिष्टम्) मारो ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे एक ही मनुष्य अपने अधिकारों से गुरुकुल में आचार्य और यज्ञ में ब्रह्मा आदि होता है, वैसे ही एक परमेश्वर अपने गुणों से (भव) सुख उत्पन्न करने वाला और (शर्व) शत्रुनाशक कहाता है, अर्थात् गुणों के वर्णन से गुणी परमात्मा का ग्रहण है । कहीं (भवाशर्वौ, भवारुद्रौ) द्विवचनान्त और कहीं (भव, शर्व, रुद्र,) आदि एक वचनान्त पद हैं। मन्त्र का आशय यह है कि मनुष्य परमेश्वर के गुणोंके ज्ञानसे सब उपकारी पदार्थों और प्राणियों की रक्षा करके धर्म में प्रवृत्त रहे, जिससे परमेश्वर उस पर क्रुद्ध न होवे ॥१॥

इस सूक्त का मिलान अ० ४ । २८ से करो ॥

शुने॑ क्रोष्ट्रे मा शरी॑राणि कर्त॑मलिक्ल॑वेभ्यो गृध्रे॑भ्यो ये च॑ कृष्णा अ॑विष्यवः॑। मक्षि॑कास्ते पशुपते वयां॑सि ते विघसे मा विदन्त २

शुने॑ । क्रोष्ट्रे । मा । शरी॑राणि । कर्त॑म् । अलिक्ल॑वेभ्यः । गृध्रे॑-भ्यः । ये । च । कृष्णाः । अविष्यवः॑ ॥ मक्षि॑काः । ते । पशु-पते । वयां॑सि । ते । वि-घसे । मा । विदन्त ॥ २ ॥

भाषार्थ—(शुने) कुत्ते के लिये, (क्रोष्ट्रे) गीदड़ के लिये, (अलिक्लवेभ्यः) अपने बलसे भय देने वाले [श्येन, चील आदियों] के लिये, (गृध्रेभ्यः) खाऊ [गिद्ध आदियों] के लिये (च) और (ये) जो (अविष्यवः) हिंसाकारी (कृष्णाः) कौवे हैं [उनके लिये] (शरीराणि) [हमारे] शरीरों को (मा कर्तम्) तुम दोनों मत करो । (पशुपते) हे दृष्टिवाले [जीवों] के रक्षक ! (ते) तेरी

पादद्वयोपैतान् मनुष्यादीन् (मा) निषेधे (चतुष्पदः) पादचतुष्टययुक्तान् गोमहिष्याश्वादीन् ॥

२—(शुने) कुक्कुराय (क्रोष्ट्रे) शृगालाय (शरीराणि) अस्माकं देहान् (मा कर्तम्) मा कुरुतम् (अलिक्लवेभ्यः) सर्वधातुभ्य इन् । उ० ४ । ११८ । अल भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणेषु-इन्+क्लव भये—अच् । अलिना शक्त्या बलेन भयानकाः । श्येनादयस्तेभ्यः (गृध्रेभ्यः) मांसाहारिभ्यः खगविशेषेभ्यः (ये) (च) (कृष्णाः) कृष्णवर्णा वायसाः (अविष्यवः) अ० ३ । २६ । २ । अर्चिशुचि...

[उत्पन्न] (मक्षिकाः) मक्खियां और (ते) तेरे [उत्पन्न] (वयांसि) पक्षी (विघसे) भोजन पर (मा विदन्त) [हमें] न प्राप्त होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य सावधान रहें कि कुत्ते आदि उन्हें न सतावें और न मक्खी आदि भोजन को बिगाड़ें ॥ २ ॥

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।

नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥

क्रन्दाय । ते । प्राणाय । याः । च । ते । भव । रोपयः ॥

नमः । ते । रुद्र । कृण्मः । सहस्र-अक्षाय । अमर्त्य ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(भव) हे भव ! [सुख उत्पन्न करनेवाले] (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (अमर्त्य) हे अमर ! [जगदीश्वर] (सहस्राक्षाय) सहस्रों कर्मों में दृष्टि वाले (ते) तुझको (क्रन्दाय) [अपना] रोदन मिटाने के लिये (ते) तुझे (प्राणाय) [अपना] जीवन बढ़ाने के लिये (च) और (ते) तुझे

इसि । उ० २ । १०८ । अव रक्षणहिंसादिषु-इसि । छन्दसि परेच्छायामपि । वा० पा० ३ । १ । ८ । इति क्यच् । क्याच्छन्दसि । पा० ३ । २ । १७० । उप्रत्ययः । परहिंसेच्छवः (मक्षिकाः) हनिमशिभ्यां सिकन् । उ० ४ । १५४ । मश ध्वनौ कोपे च —सिकन् । कीटभेदाः (ते) तव, उत्पन्ना इति शेषः (पशुपते) हे दृष्टिमतां पालक (वयांसि) पक्षिणः (ते) तव (विघसे) उपसर्गेऽदः । पा० ३ । ३ । ५६ । अद् भक्षणे-अप् । घञपोश्च । पा० २ । ४ । ३८ । घस्लृ आदेशः । अन्ने । भोजने (मा विदन्त) विद्लृ लाभे माङि लुङि रूपम् । न लभन्ताम्, अस्मान् इति शेषः ॥

३—(क्रन्दाय) क्रदि आह्वाने रोदने च—घञ् । क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । पा० ३ । २ । १४ । क्रन्दं रोदनं नाशयितुम् (ते) तुभ्यम् (प्राणाय) प्राणं जीवनं वर्धयितुम् (याः) (च) (ते) तुभ्यम् (भव) भू—अप् । हे सुखोत्पादक (रोपयः) सर्वधातुभ्य इन् । उ० ४ । ११८ । रुप विमोहने–इन् । विमोहिकाः पीडाः (नमः) सत्कारः (ते) तुभ्यम् (रुद्र) अ० २ । २७ । ६ । रु बधे-क्विप्, तुक्+रु बधे-ड । हे दुःखनाशक । यद्वा, रु गतौ-क्विप्+रा

(याः) जो (रोपयः) [हमारी) पीड़ायें हैं [उन्हें हटाने के लिये] (नमः कृण्मः) हम नमस्कार, करते है ॥ ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की भक्ति से सब ओर दृष्टि करके और भीतरी क्लेश मिटाकर अपना जीवन सुफल करे ॥ ३ ॥

पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

पुरस्तात् । ते । नमः । कृण्मः । उत्तरात् । अधरात् । उत ॥
अभि-वर्गात् । दिवः । परि । अन्तरिक्षाय । ते । नमः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन् !] (ते) तुझे (पुरस्तात्) आगे से, (उत्तरात्) ऊपर से (उत) और (अधरात्) नींचे से (नमः) नमस्कार, (ते) तुझे (दिवः) आकाश के (अभिविर्गात् परि) अवकाश से (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष लोकको जानने के लिये (नमः कृण्मः) हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर को सर्वत्र व्यापक जानकर विद्या की प्राप्ति से सब दिशाओं और अन्तरिक्ष के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी रक्षा करें ॥ ४ ॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥

मुखाय । ते । पशु-पते । यानि । चक्षूंषि । ते । भव ॥
त्वचे । रूपाय । सम्-दृशे । प्रतीचीनाय । ते । नमः ॥ ५ ॥

दाने—क । हे ज्ञानदातः (कृण्मः) कुर्मः (सहस्राक्षाय) अ० ३ । ११ । ३ । सहस्रेषु बहुषु कर्मसु अक्षीणिदर्शनशक्तयो यस्य तस्मै (अमर्त्य) हे अमर ॥

४—(पुरस्तात्) अग्रे वर्तमानाद् देशात् (ते) तुभ्यम् (उत्तरात्) उपरिस्थानात् (अधरात्) अधः स्थानात् (उत) अपि च (अभीवर्गात्) अभि+वृजी वर्जने-घञ् । उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् । पा० ६ । ३ । १२२ । इति दीर्घः । अभितो वृज्यते गृहादिभिः परिच्छिद्यते यः । अवकाशात् (दिवः) आकाशस्य (परि) (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्षं ज्ञातुम् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—(पशुपते) हे दृष्टि वालों के रक्षक ! (ते) तुझे (मुखाय) [हमारे] मुख के हितके लिये, (भव) हे सुख उत्पादक ! (ते) तुझे, (यानि) जो (चक्षूंषि) [हमारे] दर्शन साधन हैं [उनके लिये] । (त्वचे) [हमारी] त्वचा के लिये (रूपाय) सुन्दरता के लिये, (संदृशे) आकार के लिये (प्रतीचीनाय) प्रत्यक्ष व्यापक (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की उपासना पूर्वक अपने मुख आदि इन्द्रियों और त्वचा आदिको उपयोगी बनाकर पुरुषार्थी होवें ॥ ५ ॥

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वायै आस्याय ते ।

दुद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥

अङ्गेभ्यः । ते । उदराय । जिह्वायै । आस्याय । ते ॥

दुत्-भ्यः । गन्धाय । ते । नमः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मन्!] (ते) तुझे (अङ्गेभ्यः) [मारे] अङ्गों के हित के लिये, (उदराय) उदर के हित के लिये,(ते)तुझे (जिह्वायै) [हमारी] जिह्वा के हित के लिये और (आस्याय) मुख के हित के लिये (ते) तुझे (दद्भ्यः) [हमारे] दाँतों के हित के लिये और (गन्धाय) गन्ध ग्रहण करने के लिये (नमः) नमस्कार है ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने अङ्गों को यथावत् उपकारी बनाकर परमेश्वर की भक्ति करें ॥ ६ ॥

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।

रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥

५—(मुखाय) मुखहिताय (ते) तुभ्यम् (पशुपते) हे दृष्टिमतां रक्षक (यानि) (चक्षूंषि) दर्शनसाधनानि (भव) हे सुखोत्पादक (त्वचे) त्वचाहिताय (रूपाय) सौन्दर्याय (संदृशे) सम्यग् दर्शनीयाय आकाराय (प्रतीचीनाय) अ० ४ । ३२ । ६ । प्रत्यक्षं व्यापकाय (ते) तुभ्यम् (नमः) नमस्कारः ॥

६—(अङ्गेभ्यः) अस्माकं शरीरावयवेभ्यः (ते) तुभ्यम् (उदराय) उदरहिताय (आस्याय) मुखहिताय (ते) तुभ्यम् (दद्भ्यः) दन्तानां हिताय (गन्धाय) गन्धं ग्रहीतुम् (ते) तुभ्यम् (नमः) नमस्कारः ॥

अस्त्रा । नील॑-शिखण्डेन । सहस्र-अक्षेण॑ । वाजिना॑ ॥ रुद्रेण॑ । अर्धक-घातिना॑ । तेन॑ । मा । सम् । अरामहि ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(अस्त्रा) प्रकाश करने वाले, (नीलशिखण्डेन) नीलों [निधियों] के पहुंचाने वाले, (सहस्राक्षेण) सहस्रों कर्मों में दृष्टिवाले (वाजिना) बलवान्। (अर्धकघातिना) हिंसकों के मारने वाले (तेन) उस (रुद्रेण) रुद्र [दुःख नाशक परमात्मा] के साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य स्वयंप्रकाशमान, सर्वहितकारी, महाबली परमात्मा की आज्ञा में रहकर सदा सुखी रहें ॥ ७ ॥

स नो॑ भवः परि॑ वृणक्तु विश्वत॒ आप॑ इवाग्निः परि॑ वृणक्तु नो भवः । मा नो॒ऽभि मां॑स्त नमो॑ अस्त्वस्मै ॥ ८ ॥

सः । नः । भवः । परि॑ । वृणक्तु । विश्वतः॑ । आपः॑-इव । अग्निः । परि॑ । वृणक्तु । नः । भवः ॥ मा । नः । अभि । मांस्त । नमः॑ । अस्तु । अस्मै ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(सः) वह (भवः) भव [सुख उत्पन्न करने वाला पर-

७—(अस्त्रा) अस दीप्तौ-तृन्, इडभाव। प्रकाशमानः (नीलशिखण्डेन) अ० २ । २७ । ६ । णीञ् प्रापणे-रक्, रस्य लः । नीयते प्राप्यते स नीलो निधिः । शिख शिखि गतौ-अण्डन् । निधीनां शिखण्डः प्राप्तिर्यस्मात् तेन । निधीनां प्रापकेण (सहस्राक्षेण) म० ३ । सहस्रेषु कर्मसु दृष्टियुक्तेन (वाजिना) बलवता (रुद्रेण) म० ३ । दुःखनाशकेन परमात्मना (अर्धकघातिना) अर्द हिंसायाम्-ण्वुल्, दस्य धः + हन हिंसागत्योः-णिनि । हनस्तोऽचिण्णलोः पा० ७ । ३ । ३२ । इति तत्वम् । हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु । पा० ७ । ३ । ५४ । इति घत्वम् । अर्दकानां हिंसकानां नाशकेन (तेन) प्रसिद्धेन (मा सम् अरामहि) ऋ गतौ-माङि लुङि रूपम् । समो गम्यृच्छिप्रच्छि० । पा० १ । ३ । २६ । इत्यात्मनेपदम् । सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्च । पा० ३ । १ । ५६ । इति च्लेरङादेशः । समरं युद्धं न करवाम ॥

८—(सः) प्रसिद्धः (नः) अस्मान् (भवः) म० ३ । सुखोत्पादकः

मेश्वर] (नः) हमें [दुष्ट कर्मों से] (विश्वतः) सब ओर (परि वृणक्तु) बरजता [रोकता] रहे, (इव) जैसे (आपः) जल और (अग्निः) अग्नि [एक दूसरे को रोकते हैं वैसे ही] (भवः), भव [सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर] (नः) हमें (परि वृणक्तु) बरजाता रहे। (नः) हमें (मा अभि मांस्त) वह न सतावे, (अस्मै) इस [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे॥८

भावार्थ—जैसे जल अग्नि से और अग्नि जल से पृथक् होते हैं; वैसेही हम दुष्ट कर्मों से पृथक् रहकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके सुरक्षित रहें ॥ ८ ॥

चतुर्नमो॑ अष्टुकृत्वो॑ भुवाय॒ दश॒ कृत्व॑: पशुपते॒ नम॑स्ते । तवे॒मे पञ्च॑ पुशवो॒ विभ॑क्ता॒ गावो॒ अश्वा॑: पुरु॑षा अजावय॑: ॥ ९ ॥

चतुः॑ । नम॑: । अष्ट-कृत्व॑: । भुवाय॑ । दश॑ । कृत्व॑: । पुशु-पुते॒ । नम॑: । ते॒ ॥ तव॑ । इमे । पञ्च॑ । पुशव॑: । वि-भ॑क्ता: । गाव॑: । अश्वा॑: । पुरु॑षा: । अज-अवय॑: ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(भवाय) भव [सुखोत्पादक परमेश्वर] को (चतुः) चार बार, (अष्टकृत्वः) आठ बार (नमः) नमस्कार है, (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (ते) तुझे (दश कृत्वः) दस बार (नमः) नमस्कार है। (तव) तेरेही (विभक्ताः) बांटे हुये (इमे) यह (पञ्च) पांच

(परि वृणक्तु) परितो वर्जयतु, दुष्टकर्मभ्य इति शेषः (विश्वतः) सर्वतः (आपः) जलानि (इव) यथा (अग्निः) (नः) अस्मान् (मा अभि मांस्त) अभिपूर्वो मन्यतिर्हिंसने—माङि लुङि रूपम् । न हिनस्तु (नमः) नमस्कारः (अस्तु) (अस्मै) भवाय। अन्यद् गतम् ॥

९—(चतुः) द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् । पा० ५ । ४ । १८ । इति सुच् । चतुर्वारम् । ब्रह्मचर्यगृहस्थवानप्रस्थसंन्यासाश्रमान् ध्यात्वा (नमः) नमस्कारः (अष्टकृत्वः) संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् । पा० ५ । ४ । १७ । इति कृत्वसुच् । अष्टवारम् । यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि—योगदर्शने , पा० २ सूत्रे २९—इत्येतानि आश्रित्य (भवाय) म० ३ । सुखोत्पादकाय (दश कृत्वः) पूर्ववत् कृत्वसुच, व्यवधानं छान्दसम् ।

(पशवः) दृष्टिवाले [जीव] (गावः) गौयें, (अश्वाः) घोड़े, (पुरुषाः) पुरुष और (अजावयः) बकरी और भेड़ें हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर को चार बार [ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रमों का ध्यान करके], आठबार [यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, आठ योग के अङ्गों का आश्रय लेकर—योगदर्शन, पाद २ सूत्र २९ [और दस बार [पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय को वश में करके] नमस्कार करे। परमेश्वर ही कर्मानुसार गौ आदि पदार्थों को मनुष्यों के लिये बांटता है ॥ ९ ॥

तव॒ चत॑स्रः प्र॒दिश॒स्तव॒ द्यौस्तव॑ पृथि॒वी तवे॒दमु॑ग्रो॒वे॑१॒न्तरि॑क्षम् । तवे॒दं सर्व॑मा॒त्मन्व॒द् यत् प्रा॒णत् पृ॑थि॒वीमनु॑ ॥१०॥ (५)

तव॑ । चत॑स्रः । प्र॒ऽदिशः॑ । तव॑ । द्यौः । तव॑ । पृ॒थि॒वी । तव॑ । इ॒दम् । उ॒ग्र॒ । उ॒रु । अ॒न्तरि॑क्षम् ॥ तव॑ । इ॒दम् । सर्व॑म् । आ॒त्मन्ऽव॒त् । यत् । प्रा॒णत् । पृ॒थि॒वीम् । अनु॑ ॥ १० ॥ (५)

भाषार्थ—(उग्र) हे तेजस्वी ! [परमेश्वर] (तव) तेरी (चतस्रः) चारो (प्रदिशः) बड़ी दिशायें हैं, (तव) तेरा (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य, (तव) तेरी (पृथिवी) फैली हुई भूमि, (तव) तेरा (इदम्) यह (उरु) चौड़ा (अन्तरिक्षम्) आकाश लोक है। (तव) तेरा ही (इदम्) यह (सर्वम्) सब है, (यत्) जो (आत्मन्वत्) आत्मा वाला और (प्राणत्) प्राण वाला [जगत्] (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर है ॥ १० ॥

दशवारम्। दशेन्द्रियाणि वशीकृत्वेति यावत् (पशुपते) (नमः) (ते) (तव) (इमे) समीपवर्तिनः (पशवः) दृष्टिमन्तो जीवाः (विभक्ताः) विभागं प्राप्ताः (गावः) धेनवः (अश्वाः) तुरङ्गाः (पुरुषाः) मनुष्याः (अजावयः) अजाश्च अवयश्च ते छागमेषाः ॥

१०—(तव) (चतस्रः) चतुः संख्याकाः (प्रदिशः) प्रधानाः प्राच्यद्या महादिशः (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यः (पृथिवी) विस्तृता भूमिः (इदम्) सर्वत्र व्यापकम् (उग्र) हे तेजस्विन् (उरु) विस्तृतम् (अन्तरिक्षम्) सर्वमध्ये दृश्यमान आकाशः (इदम्) सर्वम् (आत्मन्वत्) अ० ४। १०। ७। सात्मकं जगत् (यत्) (प्राणात्) प्राणव्यापारं कुर्वत् (पृथिवीम् अनु) भूमिं प्रति ॥

भावार्थ—यह सब चराचर जगत् और पृथिवी आदि सब लोक परमेश्वर के आधीन हैं ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ।
स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

उरुः । कोशः । वसु-धानः । तव । अयम् । यस्मिन् । इमा । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ॥ सः । नः । मृड । पशुपते । नमः । ते । परः । क्रोष्टारः । अभिभाः । श्वानः । परः । यन्तु । अघ-रुदः । वि-केश्यः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—[परमेश्वर !] (तव) तेरा (अयम्) यह (उरुः) चौड़ा (कोशः) कोश [निधि] (वसुधानः) श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है, (यस्मिन् अन्तः) जिसके भीतर (इमा विश्वा) ये सब (भुवनानि) भुवन [सत्तायें] हैं । (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (सः) तू सो (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो, (क्रोष्टारः) चिल्लाने वाले गीदड़, (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई विपत्तियां, (श्वानः) घूमने वाले कुत्ते (परः) दूर और (विकेश्यः) केश फैलाये हुये [भयानक](अघरुदः) पाप की पीड़ायें (परः) दूर (यन्तु) चली जावें ॥ ११ ॥

११—(उरुः) विस्तृतः (कोशः) निधिः । भाण्डागारः (वसुधानः) वसूनां श्रेष्ठपदार्थानामाधारः (तव)(अयम्)(यस्मिन्) कोशे (इमा) इमानि (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) अस्तित्वानि । लोकाः (अन्तः) मध्ये (सः) स त्वम् (नः) अस्मान् (मृड) मृडय । सुखय (पशुपते) दृष्टिमतां जीवानां पालक (नमः) नमस्कारः (ते) तुभ्यम् (परः) परस्तात् । दूरम् (क्रोष्टारः) क्रोशनशीलाः शृगालाः (अभिभाः) अ १ । २० । १ । अभि + भा दीप्तौ—क्विप् । अभितो दीप्यमाना विपत्तयः (श्वानः) अ० ४ । ३६ । ६ । टुओश्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् । भ्रमणशीलाः कुक्कुराः (परः) दूरम् (यन्तु) गच्छन्तु (अघरुदः) अ० ८ । १ । ११ । अघ + रुदेः क्विप् । पापस्य पीडाः (विकेश्यः) अ० १ । २८ । ४ । वि + केश—ङीप् । विकीर्णकेशाः । अतिभयकारिण्यः ॥

भावार्थ—परमेश्वर के आश्रय भण्डार से यह सब लोक पलते हैं, उसी के आश्रय से सब मनुष्य पुरुषार्थ के साथ अनेक विपत्तियों और विघ्नों से बचकर आनन्दित होवें ॥ ११ ॥

धनु॑र्बिभर्षि॒ हरि॑तं हिर॒ण्ययं॑ सहस्र॒घ्नि श॒तव॑धं शिखण्डिन् ।
रु॒द्रस्येषु॑श्चरति देवहे॒तिस्तस्यै॒ नमो॑ यत॒मस्यां॑ दि॒शी॒३॒॑तः ॥१२॥

धनुः॑ । बि॒भ॒र्षि॒ । हरि॑तम् । हि॒र॒ण्यय॑म् । स॒ह॒स्र॒ऽघ्नि । श॒तऽव॑धम् । शि॒ख॒ण्डि॒न् ॥ रु॒द्रस्य॑ । इषुः॑ । च॒र॒ति॒ । दे॒व॒ऽहे॒तिः । तस्यै॑ नमः॑ । य॒त॒मस्या॑म् । दि॒शि । इ॒तः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(शिखण्डिन्) हे परम उद्योगी ! [रुद्र परमेश्वर] (हरितम्) शत्रुनाशक, (हिरण्ययम्) बलयुक्त, (सहस्रघ्नि) सहस्रों [शत्रुओं] के मारने वाले, (शतवधम्) सैकड़ों हथियारों वाले, (धनुः) धनुष को तू (बिभर्षि) धारण करता है। (रुद्रस्य) रुद्र [दुःख नाशक परमेश्वर] का (इषुः) बाण (देवहेतिः) दिव्य [अद्भुत] बज्र (चरति) चलता रहता है, (अस्यै) उस [बाण] के रोकने के लिये (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (नमः) नमस्कार है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे शूर पुरुष अनेक प्रकार के सहस्राघ्नि, शतघ्नी, शतवध आदि अस्त्र शस्त्र बना के शत्रुओं को मारता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से पापियों का नाश कर देता है। इससे हम लोग उसकी आज्ञा का उल्लंघन न करके उसकी शरण में रहें ॥ १२ ॥

१२—(धनुः) चापम् (बिभर्षि) धारयसि (हरितम्) हृश्याभ्यामितन्। उ० ३। ९३। हृञ् नाशने-इतन्। शत्रुनाशकम् (हिरण्ययम्) हिरण्यं रेतो वीर्यं मतम्, तेन युक्तम् (सहस्रघ्नि) भुजेः किच्च। उ० ४। १४२। सहस्र+हन हिंसागत्योः—इप्रत्ययः कित्। सहस्रशत्रुनाशकम् (शतवधम्) वधो वज्रनाम—निघ० २। २०। अनेकायुधोपेतम् (शिखण्डिन्) अ० । ३७। ४। शिख गतौ—अण्डन् किन्, तत इनि। हे महोद्योगिन् (रुद्रस्य) दुःखनाशकस्य (इषुः) बाणः (चरति) विचरति (देवहेतिः) अद्भुतवज्रः (तस्यै) तां निवारयितुम् (नमः) (यतमस्याम्) यस्यां कस्याम् (दिशि) दिशायाम् (इतः) अस्मात् स्थानात् ॥

भावार्थ—यह सब चराचर जगत् और पृथिवी आदि सब लोक परमेश्वर के आधीन हैं ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः । स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

उरुः । कोशः । वसु-धानः । तव । अयम् । यस्मिन् । इमा । विश्वा । भुवनानि । अन्तः ॥ सः । नः । मृड । पशुपते । नमः । ते । परः । क्रोष्टारः । अभिभाः । श्वानः । परः । यन्तु । अघ-रुदः । वि-केश्यः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—[परमेश्वर !] (तव) तेरा (अयम्) यह (उरुः) चौड़ा (कोशः) कोश [निधि] (वसुधानः) श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है, (यस्मिन् अन्तः) जिसके भीतर (इमा विश्वा) ये सब (भुवनानि) भुवन [सत्तायें] हैं । (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (सः) तू सो (नः) हमें (मृड) सुखी रख, (ते) तेरे लिये (नमः) नमस्कार हो, (क्रोष्टारः) चिल्लाने वाले गीदड़, (अभिभाः) सन्मुख चमकती हुई विपत्तियां, (श्वानः) घूमने वाले कुत्ते (परः) दूर और (विकेश्यः) केश फैलाये हुये [भयानक](अघरुदः) पाप की पीड़ायें (परः) दूर (यन्तु) चली जावें ॥ ११ ॥

११—(उरुः) विस्तृतः (कोशः) निधिः । भाण्डागारः (वसुधानः) वसूनां श्रेष्ठपदार्थानामाधारः (तव)(अयम्)(यस्मिन्) कोशे (इमा) इमानि (विश्वा) सर्वाणि (भुवनानि) अस्तित्वानि । लोकाः (अन्तः) मध्ये (सः) स त्वम् (नः) अस्मान् (मृड) मृडय । सुखय (पशुपते) दृष्टिमतां जीवानां पालक (नमः) नमस्कारः (ते) तुभ्यम् (परः) परस्तात् । दूरम् (क्रोष्टारः) क्रोशनशीलाः शृगालाः (अभिभाः) अ० १ । २० । १ । अभि + भा दीप्तौ—क्विप् । अभितो दीप्यमाना विपत्तयः (श्वानः) अ० ४ । ३६ । ६ । टुओश्वि गतिवृद्ध्योः—कनिन् । भ्रमणशीलाः कुक्कुराः (परः) दूरम् (यन्तु) गच्छन्तु (अघरुदः) अ० ८ । १ । ११ । अघ + रुदेः क्विप् । पापस्य पीडाः (विकेश्यः) अ० १ । २८ । ४ । वि + केश—ङीष् । विकीर्णकेशाः । अतिभयकारिण्यः ॥

भावार्थ—परमेश्वर के आश्रय भण्डार से यह सब लोक पलते हैं, उसी के आश्रय से सब मनुष्य पुरुषार्थ के साथ अनेक विपत्तियों और विघ्नों से बचकर आनन्दित होवें ॥ ११ ॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥१२॥

धनुः । बिभर्षि । हरितम् । हिरण्ययम् । सहस्र-घ्नि । शत-वधम् । शिखण्डिन् ॥ रुद्रस्य । इषुः । चरति । देव-हेतिः । तस्यै । नमः । यतमस्याम् । दिशि । इतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(शिखण्डिन्) हे परम उद्योगी ! [रुद्र परमेश्वर] (हरितम्) शत्रुनाशक, (हिरण्ययम्) बलयुक्त, (सहस्रघ्नि) सहस्रों [शत्रुओं] के मारने वाले, (शतवधम्) सैकड़ों हथियारों वाले, (धनुः) धनुष को तू (बिभर्षि) धारण करता है। (रुद्रस्य) रुद्र [दुःख नाशक परमेश्वर] का (इषुः) बाण (देवहेतिः) दिव्य [अद्भुत] वज्र (चरति) चलता रहता है, (अस्यै) उस [बाण] के रोकने के लिये (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (नमः) नमस्कार है ॥ १२ ॥

भावार्थ—जैसे शूर पुरुष अनेक प्रकार के सहस्राघ्नि, शतघ्नी, शतवध आदि अस्त्र शस्त्र बना के शत्रुओं को मारता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से पापियों का नाश कर देता है। इससे हम लोग उसकी आज्ञा का उल्लंघन न करके उसकी शरण में रहें ॥ १२ ॥

१२—(धनुः) चापम् (बिभर्षि) धारयसि (हरितम्) हृश्याभ्यामितन्। उ० ३। ९३। हृञ् नाशने-इतन्। शत्रुनाशकम् (हिरण्ययम्) हिरण्यं रेतो वीर्यं बलम्, तेन युक्तम् (सहस्रघ्नि) भुजेः किच्च। उ० ४। १४२। सहस्र+हन हिंसागत्योः—इप्रत्ययः, कित्। सहस्रशत्रुनाशकम् (शतवधम्) वधो वज्रनाम—निघ० २। २०। अनेकायुधोपेतम् (शिखण्डिन्) अ०। ३७। ४। शिख गतौ—अण्डन् कित्, तत इनि। हे महोद्योगिन् (रुद्रस्य) दुःखनाशकस्य (इषुः) बाणः (चरति) विचरति (देवहेतिः) अद्भुतवज्रः (तस्यै) तां निवारयितुम् (नमः) (यतमस्याम्) यस्यां कस्याम् (दिशि) दिशायाम् (इतः) अस्मात् स्थानात् ॥

यो ३॑ऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥

यः । अभि-यातः । नि-लयते । त्वाम् । रुद्र । नि-चिकीर्षति ॥
पश्चात् । अनु-प्रयुङ्क्षे । तम् । विद्धस्य । पदनीः-इव ॥१३॥

भाषार्थ—(यः) जो [दुष्कर्मी] (अभियातः) हारा हुआ (निलयते) छिप जाता है, और (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (त्वां) मुझे (निचिकीर्षति) हराना चाहता है। (पश्चात्) पीछे पीछे (तम्) उसका (अनुप्रयुङ्क्षे) तू अनुप्रयोग करता है [यथा अपराध दण्ड देता है], (इव) जैसे (विद्धस्य) घायल का (पदनीः) पद खोजिया ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो दुष्ट गुप्त रीति से भी परमेश्वर की आज्ञा का भङ्ग करता है, परमेश्वर उसे दण्ड ही देता है, जैसे व्याध घायल आखेट के रुधिर आदि चिन्ह से खोज लगा कर उसे पकड़ लेता है ॥ १३ ॥

इस मन्त्र का मिलान करो—अ० १० । १ । २६ ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥ १४ ॥

भवारुद्रौ । स-युजा । सम्-विदानौ । उभौ । उग्रौ । चरतः ।
वीर्याय ॥ ताभ्याम् । नमः । यतमस्याम् । दिशि । इतः ॥१४॥

भाषार्थ—(सयुजा) समान संयोग वाले, (संविदानौ) समान ज्ञान वाले, (उग्रौ) तेजस्वी (उभौ) दोनों (भवारुद्रौ) भव और रुद्र [सुखोत्पादक

१३—(यः) दुष्कर्मी (अभियातः) अभिगतः । अभिभूतः सन् (निलयते) निलीनो गुप्तो भवति (त्वाम्) (रुद्र) म० ३ । हे दुःखनाशक (निचिकीर्षति) डु कृञ् करणे, यद्वा, कृञ् हिंसायाम् सन् । निराकर्तुं नितरां हिंसितुं वेच्छति (पश्चात्) निरन्तरम् (अनुप्रयुङ्क्षे) अनुप्रयोगं करोषि । यथापराधं दण्डयसि (तम्) दुष्टम् (विद्धस्य) ताडितस्य । क्षतस्य (पदनीः) पद + णीञ् प्रापणे-क्विप् । पदचिह्नानां नेता । पदानुगामी (इव) यथा ॥

१४—(भवारुद्रौ) म० ३ । भवश्च रुद्रश्च तौ । सुखोत्पादकदुःखनाशकौ गुणौ (सयुजा) समानं युञ्जानौ मित्रभूतौ (संविदानौ) समानं

और दुःख नाशक गुण] (वीर्याय) वीरता देने को (चरतः) विचरते हैं। (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (ताभ्याम्) उन दोनों को (नमः) नमस्कार है ॥ १४ ॥

भावार्थ—चाहे हम कहीं होवें, परमेश्वर को सर्वज्ञ और सर्वव्यापक जानकर अपना वीरत्व बढ़ावें ॥ १४ ॥

नम॑स्तेऽस्त्वाय॒ते नमो॑ अस्तु परा॒य॒ते ।
नम॑स्ते रुद्र॒ तिष्ठ॑त॒ आसी॑नायो॒त ते॒ नमः॑ ॥ १५ ॥

नमः॑ । ते॒ । अ॒स्तु॒ । आ॒-य॒ते । नमः॑ । अ॒स्तु॒ । प॒रा॒-य॒ते ॥
नमः॑ । ते॒ । रु॒द्र॒ । तिष्ठ॑ते । आसी॑नाय । उ॒त । ते॒ । नमः॑ १५

भाषार्थ—(आयते) आते हुये [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (अस्तु) होवे, (परायते) दूर जाते हुये के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (रुद्र) हे रुद्र ! [दुःखनाशक] (तिष्ठते) खड़े होते हुये के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुये के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है ॥१५॥

भावार्थ—मनुष्य आते, जाते, उठते, बैठते परमेश्वर का स्मरण करके पुरुषार्थ करे ॥ १५ ॥

नमः॑ सा॒यं नमः॑ प्रा॒तर्नमो॒ रात्र्या॒ नमो॒ दिवा॑ ।
भ॒वाय॑ च श॒र्वाय॑ चो॒भाभ्या॑मक॒रं नमः॑ ॥ १६ ॥

नमः॑ । सा॒यम् । नमः॑ । प्रा॒तः । नमः॑ । रात्र्या॑ । नमः॑ दिवा॑ ॥
भ॒वाय॑ । च॒ । श॒र्वाय॑ । च॒ । उ॒भाभ्या॑म् । अ॒क॒र॒म् । नमः॑ ॥१६॥

जानन्तौ (उभौ) (उग्रौ) तेजस्विनौ (चरतः) विचरतः(वीर्याय) वीरत्वं दातुम् (ताभ्याम्) भवारुद्राभ्याम्। अन्यत् पूर्ववत्-म० ॥ १३ ॥

१५—(नमः) (ते) तुभ्यम् (अस्तु) (आयते) आगच्छतः पुरुषस्य हिताय (परायते) दूरं गच्छते (रुद्र) म० ३ । हे दुःखनाशक (तिष्ठते) उत्तिष्ठतः पुरुषस्य हिताय (आसीनाय) उपविष्टस्य हिताय (उत) अपि च । अन्यद् गतम् ॥

भाषार्थ—(सायम्) सायं काल में (नमः) नमस्कारः (प्रातः) प्रातः काल में (नमः) नमस्कार (रात्र्या) राति में (नमः) नमस्कार , (दिवा) दिन में (नमः) नमस्कर । (भवाय) भव [सुख उत्पन्न करने वाले] (च च) और (शर्वाय) शर्व [दुःख नाश करने वाले] (उभाभ्याम्) दोनों [गुणों] को (नमः अकरम्) मैं ने नमस्कार किया है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रत्येक समय महाशक्तिमान् परमेश्वर का ध्यान करके सदा पराक्रम करता रहे ॥ १६ ॥

स॒ह॒स्रा॒क्षम॑तिप॒श्यं पु॒रस्ता॑द् रु॒द्रमस्य॑न्तं बहु॒धा वि॑प॒श्चित॑म् ।
मोपा॑राम जि॒ह्वये॑यमानम् ॥ १७ ॥

स॒ह॒स्र॒-अ॒क्षम् । अ॒ति॒-प॒श्यम् । पु॒रस्ता॑त् । रु॒द्रम् । अस्य॑न्तम् । ब॒हु॒-धा । वि॒पः॒-चित॑म् ॥ मा । उप॑ । अ॒रा॒म॒ । जि॒ह्वया॑ । ई॒य॑मानम् ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(सहस्राक्षम्) सहस्रों कामों में दृष्टि वाले (पुरस्तात्) सन्मुख से (अतिपश्यम्) आड़े बेंड़े देखनेवाले, (बहुधा) अनेक प्रकार से [पापों को] (अस्यन्तम्) गिराने वाले, (विपश्चितम्) महाबुद्धिमान्, (जिह्वया) जयशक्ति के साथ (ईयमानम्) चलते हुये (रुद्रम्) रुद्र [दुःख नाशक परमेश्वर] से (मा उप अराम) हम विरोध न करें ॥ १७ ॥

१६—(नमः) नमस्कारः (सायम्) सूर्यास्तसमये (प्रातः) प्रभात-समये (रात्र्या) रात्रिसमये (दिवा) दिनकाले (भवाय) म० ३ । सुखोत्पादकाय (च च) समुच्चये (शर्वाय) म० ३ । दुःखनाशकाय (उभाभ्याम्) द्वाभ्यां गुणाभ्याम् (अकरम्) अहं कृतवानस्मि । अन्यद् गतम् ॥

१७—(सहस्राक्षम्) सहस्रेषु कर्मसु दृष्टियुक्तम् (अतिपश्यम्) पाघ्रा-ध्माधेट् दृशः शः । पा० ३ । १ । १३७ । दृशिर् प्रेक्षणे—शप्रत्ययः । पाघ्राध्मा-स्था० । पा० ७ । ३ । ७८ । पश्यादेशः । सर्वानतिक्रम्य द्रष्टा (पुरस्तात्) अग्रे (रुद्रम्) दुःखनाशकम् (अस्यन्तम्) शत्रुं क्षिपन्तम् (बहुधा) अनेकप्रकारेण (विपश्चितम्) मेधाविनम् । सूक्ष्मदर्शिनम् (मा उप अराम) ऋ गतौ हिंसायां वा माङि लुङि रूपम् । न हिंसेम (जिह्वया) शेवायह्वजिह्वा० । उ० १ । १५४ । जि जये-वन् हुक् च । जयशक्त्या सह (ईयमानम्) गच्छन्तम् । व्याप्नुवन्तम् ।

भवार्थ—परमात्मा सब व्यवहारों को भली भांति देखता हुआ सब को कर्मों का फल यथावत् देता है। हम उसकी आज्ञा का सदा पालन करें ॥ १७

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम्।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

श्याव-अश्वम् । कृष्णम् । असितम् । मृणन्तम् । भीमम् । रथम् । केशिनः । पादयन्तम् ॥ पूर्वे । प्रति । इमः । नमः । अस्तु । अस्मै ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(श्यावाश्वम्) ज्ञान में व्याप्ति वाले, (कृष्णम्) आकर्षण करने वाले, (असितम्) बन्धन रहित (मृणन्तम्) मारते हुये, (भीमम्) डरावने, (केशिनः) क्लेशकारी के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) गिराते हुये [अथवा , (केशिनः) किरणों वाले सूर्य के (रथम्) रथ को (पादयन्तम्) चलाते हुये] [रुद्र परमेश्वर] को (पूर्वे) हम पहिले होकर (प्रति) प्रत्यक्ष (इमः) मिलते हैं, (अस्मै) उसे (नमः अस्तु) नमस्कार होवे ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो सर्वज्ञ, अनन्त सामर्थ्य युक्त परमेश्वर दुष्टों को दण्ड देता और सूर्य आदि लोकों को रचता है, उसकी उपासना से हम अपना बल बढ़ावें ॥ १८ ॥

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते।
अन्यत्रास्मद् दिव्यां शाखां वि धूनु ॥ १९ ॥

१८—(श्यावाश्वम्) अ० ४ । २६ । ४ । श्यैङ् गतौ-व + अशू व्याप्तौ—क्वन् । श्यावे ज्ञानेऽश्वो व्याप्तिर्यस्य तं ज्ञानव्याप्तिकम् (कृष्णम्) अ० ८ । ७ । १ । कृष आकर्षणे-नक् । आकर्षणशीलम् । वशयितारम (असितम्) षिञ् बन्धने-क्त । बन्धनरहितम् (मृणन्तम्) मृण हिंसायाम्-शतृ । हिंसन्तम् (भीमम्) भयङ्करम् (रथम्) यानम् (केशिनः) क्लिशेरन् लो लोपश्च। क्लिश उपतापे-अन्, ललोपः, इनि । क्लेशकस्य । उपतापकस्य । यद्वा,केशीकेशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भवति •काशानाद्वा प्रकाशनाद्वा-निरु० १२ । २५ । रश्मिमतः सूर्यस्य (पादयन्तम्) तस्य दः । पातयन्तम् । क्षियन्तम् । यद्वा गमयन्तम् (पूर्वे) प्रथमभाविनो वयम् (प्रति) प्रत्यक्षम् (इमः) प्राप्नुमः । अन्यद् गतम् ॥

मा । नः । अभि । स्राः । मत्यम् । देव-हेतिम् । मा । नः । क्रुधः । पशु-पते । नमः । ते ॥ अन्यत्र । अस्मत् । दिव्याम् । शाखाम् । वि । धूनु ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक ! (नः) हमारे लिये (देवहेतिम्) दिव्य [अद्भुत] वज्र, (मत्यम्) अपनी मुट्ठी [घूंसा] को (मा अभि स्राः) ताककर मत छोड़, (नः) हम पर (मा क्रुधः) मत क्रोध कर, (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है । (अस्मत्) हमसे (अन्यत्र) दूसरों [दुष्टों] पर (दिव्याम्) दिव्य (शाखाम्) भुजा को (वि धूनु) हिला ॥१९॥

भावार्थ—हम सदा धर्म में प्रवृत्त रहकर परमेश्वर की आज्ञा का पालन करें, जिस से वह हम पर क्रोध न करे और न भय दिखावे ॥ १९ ॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्ग्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥ २० ॥ (६)

मा । नः । हिंसीः । अधि । नः । ब्रूहि । परि । नः । वृङ्ग्धि । मा । क्रुधः ॥ मा । त्वया । सम् । अरामहि ॥ २० ॥ (६)

१९—(नः) अस्मभ्यम् (अभि) अभितः (मा स्राः) सृज विसर्गे माङि लुङि रूपम् । सृजिदृशोर्झल्यमकिति । पा० ६ । १ । ५८ । अमागमः, वृद्धौ । झलो झलि । पा० ८ । २ । २६ । सिचो लोपः । बहुलं छन्दसि । पा० ७ । ३ । ९७ । ईडभावः । हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्० । पा० ६ । १ । ६८ । सिलोपः, जलोपश्छा-न्दसः । मा स्राक्षीः । मा त्यज (मत्यम्) अ० ८ । ८ । ११ । मतजनहलात् करण० । पा० ४ । ४ । ९७ । मत-यत् । मतं ज्ञानं तस्य करणमिति । मुष्टिम् (देवहेतिम्) अद्भुतवज्रम् (नः) अस्मभ्यम् (मा क्रुधः) क्रुध कोपे माङि लुङि- पुषादित्वात् च्लेः अङ् आदेशः । क्रोधं मा कुरु (पशुपते) हे दृष्टिमतां जीवा-नां पालक (नमः) (ते) तुभ्यम् । (अन्यत्र) अन्येषु शत्रुषु (अस्मत्) अस्मत्तः (दिव्याम्) अद्भुताम् (शाखाम्) शाखृ व्याप्तौ-अच्, टाप् । बाहुम्—यथा शब्दकल्पद्रुमकोषे (वि) विविधम् (धूनु) कम्पय ॥

भाषार्थ—[हे रुद्र परमेश्वर !] (नः) हमें (मा हिंसीः) मत कष्ट दे, (नः) हमें (अधि) ईश्वर होकर (ब्रूहि) उपदेश कर, (नः) हमें [पाप से] (परि वृङ्ग्धि) सर्वथा अलग रख, (मा क्रुधः) क्रोध मतकर। (त्वया) तेरे साथ (मा सम् अरामहि) हम समर [युद्ध] न करें ॥ २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा में चलते हैं, वे पुरुषार्थी पुरुष अपराध से बचकर सदा सुखी रहते हैं ॥ २० ॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥ २१ ॥

मा । नः । गोषु । पुरुषेषु । मा । गृधः । नः । अज-अविषु ।
अन्यत्र । उग्र । वि । वर्तय । पियारूणाम् । प्र-जाम् । जहि ॥ २१ ॥

भाषार्थ—[हे रुद्र परमात्मन् !] (मा) न तो (नः) हमारी (गोषु) गौओं में और (पुरुषेषु) पुरुषों में, और (मा) न (नः) हमारी (अजाविषु) बकरी और भेड़ों में [मारनेकी] (मा गृधः) अभिलाषा कर । (उग्र) हे बलवान् ! (अन्यत्र) दूसरे [बैरियों] में (विवर्तय) घूम जा, और (पियारूणाम्) हिंसकों की (प्रजाम्) प्रजा [जनता] को (जहि) मार ॥ २१ ॥

भावार्थ—पुरुषार्थी मनुष्य परमेश्वर की शरण लेकर उपकारी दोपाये और चौपायों की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करें ॥ २१ ॥

२०—(नः) अस्मान (मा हिंसीः) मा वधीः (अधि) ईश्वरत्वेन (नः) अस्मान् (परि) सर्वतः (वृङ्ग्धि) वर्जय । वियोजय (मा क्रुधः) म० १६ । (त्वया) (मा सम् अरामहि) म० ७ । समरं युद्धं न करवाम ॥

२१—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (गोषु) गवादिषु (पुरुषेषु) मनुष्येषु (मा गृधः) गृधु अभिकाङ्क्षायां माङि लुङि पुषादित्वात् च्लेः अङादेशः । अभिलाषं मा कुरु, नाशनायेति शेषः (नः)(अजाविषु) अजेषु अविषु च (अन्यत्र) अन्येषु शत्रुषु (उग्र) हे महाबलवन् (वि) विवधम् (वर्तय) वर्तस्व (पियारूणाम्) पीयतिर्हिंसाकर्मा-निघ० ४ । २५ । अर्त्तिमदिमन्दिभ्य आरन् । उ० ३ । १३४ । अत्र बाहुलकात् पीयतेः—आरुप्रत्ययो ह्रस्वश्च । यद्वा पि गतौ—आरु । हिंसकानाम् (प्रजाम्) जनताम् (जहि) नाशय ॥

यस्यं तुक्मा कासिका हेतिरेकमश्वंस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमों अस्त्वस्मै ॥ २२ ॥

यस्यं । तुक्मा । कासिका । हेतिः । एकम् । अश्वस्य-इव । वृषणः । क्रन्दः । एति ॥ अभि-पूर्वम् । निः-नयते । नमः । अस्तु । अस्मै ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(यस्य) जिस [रुद्र] का (हेतिः) वज्र (तक्मा) तुच्छ जीवन करनेवाला [ज्वर] और (कासिका) खांसी (एकम्) एक [उपद्रवी] को (एति) प्राप्त होती है, (इव) जैसे (वृषणः) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के (क्रन्दः) हिनहिनाने का शब्द । (अभिपूर्वम्) एक एक को यथाक्रम (निर्णयते) निर्णय करनेवाले (अस्मै) इस [रुद्र] को (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ २२ ॥

भावार्थ—प्रत्येक उपद्रवी मनुष्य परमेश्वर के नियम से ज्वर आदि अनेक पीड़ायें प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

यो ३ न्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयंज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमों दुशभिः शक्वंरीभिः ॥ २३ ॥

यः । अन्तरिक्षे । तिष्ठंति । वि-स्तभितः । अयंज्वनः । प्र-मृणन् । देव-पीयून् ॥ तस्मै । नमः । दुश-भिः । शक्वंरीभिः ॥२३

भाषार्थ—(यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (विष्टभितः) दृढ़ जमा

२२—(यस्य) रुद्रस्य (तक्मा) अ० १ । २५ । १ । तकि कृच्छ्रजीवने-मनिन् । कृच्छ्रजीवनकरो ज्वरः (कासिका) कासृ शब्द कुत्सायाम्—घञ्, स्वार्थेकन्, अत इत्वम् । कुत्सितशब्दकारी रोगविशेषः । कासः (हेतिः) वज्रः (एकम्) अपकारिणम् (अश्वस्य) (इव) यथा (वृषणः) बलवतः (क्रन्दः) हेषाशब्दः (एति) प्राप्नोति (अभिपूर्वम्) पूर्वं पूर्वमभिलक्ष्य । यथाक्रमम् (निर्णयते) निः + णीञ् प्रापणे—शतृ । निर्णयं निश्चयं कुर्वते । अन्यद् गतम् ॥

२३—(यः) परमेश्वरः (अन्तरिक्षे) आकाशे (तिष्ठति) वर्तते (वि-

हुआ [परमेश्वर] (अयज्वनः) यज्ञ न करने वाले [दुर्जन] (देवपीयून्) विद्वानों के हिंसकों को (प्रमृणन्) मारता हुआ (तिष्ठति) ठहरता है। (दशभिः) दस (शक्करीभिः) शक्तिवाली [दिशाओं] के साथ [वर्तमान] (तस्मै) उस [परमेश्वर] को (नमः) नमस्कार है ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा आकाश में और सब दिशा विदिशाओं में और ऊपर नीचे व्यापक है, सब मनुष्य उसका आश्रय लेकर दुष्ट विघ्नों और शत्रुओं का नाश करें ॥ २३ ॥

तुभ्यमा॑र॒ण्याः प॒शवो॑ मृ॒गा वने॑ हि॒ता हं॒साः सु॑प॒र्णाः श॑कु॒ना वयां॑सि। तव॑ य॒क्षं प॑शुपते अ॒प्स्व१॒॑न्तस्तुभ्यं॑ क्षरन्ति दि॒व्या आपो॑ वृ॒धे ॥ २४ ॥

तुभ्य॑म्। आ॒र॒ण्याः। प॒शवः॑। मृ॒गाः। वने॑। हि॒ताः। हं॒साः। सु॒-प॒र्णाः। श॒कु॒नाः। वयां॑सि ॥ तव॑। य॒क्षम्। प॒शु॒-प॒ते॒। अ॒प्-सु। अ॒न्तः। तुभ्य॑म्। क्ष॒र॒न्ति॒। दि॒व्याः। आपः॑। वृ॒धे ॥ २४

भाषार्थ—(तुभ्यम्) तेरे [शासन मानने] के लिये (आरण्याः) बनैले (पशवः) पशु [जीव], (मृगाः) हरिण आदि, (हंसाः) हंस, (सुपर्णाः) बड़े उड़ने वाले [गरुड़ आदि], (शकुनाः) शक्तिवाले [गिद्ध चील्ह आदि] (वयांसि) पक्षी (वने) वन में (हिताः) स्थापित हैं। (पशुपते) हे दृष्टि वाले [जीवों] के रक्षक [परमेश्वर] (तव) तेरा (यक्षम्) पूजनीयस्वरूप

ष्टभितः) विविधं स्तभितो दृढीभूतः सन् (अयज्वनः) अ० ३। २४। २। यज—ङ्वनिप्। देवपूजारहितान् दुर्जनान् (देवपीयून्) अ० ४। ३५। ७। विदुषां हिंसकान् (तस्मै) परमेश्वराय (नमः) प्रणामः (शक्करीभिः) अ० ३। १७।७। शक्लृ शक्तौ—वनिप्, ङीब्रेफौ। उच्चनीचदिग्विदिशाभिःसह वर्तमानायेतिशेषः॥

२४—(तुभ्यम्) तवाज्ञापालनाय (आरण्याः) अरण्ये भवाः (पशवः) जन्तवः (मृगाः) हरिणादयः (वने) अरण्ये (हिताः) स्थापिताः (हंसाः) पक्षिविशेषाः (सुपर्णाः) शोभनपतनाः (शकुनाः) शक्तिमन्तो गृध्रचिल्हादयः (वयांसि) पक्षिणः (तव) (यक्षम्) यक्ष पूजायाम्—घञ्। पूज्यं स्वरूपम् (पशुपते) हे दृष्टिमतां जीवानां रक्षक (अप्सु) आपो व्यापिकास्तन्मात्राः—

(अप्सु अन्तः) तन्मात्राओं के भीतर है, (तुभ्यम्) तेरे [शासन मानने] के लिये (दिव्याः) दिव्य [अद्भुत] (आपः) तन्मात्रायें (वृधे) वृद्धि करने को (क्षरन्ति) चलती हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—संसार के भीतर सब भयानक और शीघ्रगामी प्राणी परमेश्वर के आज्ञा पालक हैं और अणु अणुमें संयोग वियोग उसीकी शक्ति से है२४

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि । न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥ २५ ॥

शिंशुमाराः । अजगराः । पुरीकयाः । जषाः । मत्स्याः । रजसाः । येभ्यः । अस्यसि ॥ न । ते । दूरम् । न । परिऽस्था । अस्ति । ते । भव । सद्यः । सर्वान् । परि । पश्यसि । भूमिम् । पूर्वस्मात् । हंसि । उत्तरस्मिन् । समुद्रे ॥ २५ ॥

भषार्थ—(अजगराः) अजगर [सर्प विशेष], (शिंशुमाराः) शिशुमार [सूंसमार, जलजन्तु], (पुरीकयाः) पुरीकय [जलचर विशेष], (जषाः) जष [झष, मछली विशेष] और (रजसाः) जलमें रहनेवाले (मत्स्याः) मच्छ हैं, (येभ्यः) जिन से (अस्यसि=असिस) तू प्रकाशमान है । (भव) हे भव ! [सुखोत्पादक परमेश्वर] (ते) तेरे लिये (दूरम्) कुछ दूर (न) नहीं है और (न) न (ते) तेरे लिये (परिष्ठा) रोक टोक (अस्ति) है,

दयानन्दभाष्ये, यजु० २७ । २५ । तन्मात्रासु (तुभ्यम्) (क्षरन्ति) संचरन्ति (दिव्याः) अद्भुताः (आपः) तन्मात्राः (वृधे) वर्धनाय ॥

२५—(शिंशुमाराः) अनुनासिकश्छान्दसः । शिशुमाराः । जलजन्तुविशेषाः (अजगराः) अज + गॄ निगरणे-अच् ।अजेन अजनेन श्वासबलेन गिरन्ति ये ते । बृहत्सर्पाः (पुरीकयाः)कषिदूषीभ्यामीकन् । उ०४ । १६ । पॄ पालनपूरणयोः-ईकन् + या प्रापणे-ड । शॄ पॄभ्यां किच्च । उ० ४ । २७ । पुरीषमुदकनाम-निघ० १ । १२ । पुरीकं पुरीषं जलं यान्ति गच्छन्ति ये ते । जलचरविशेषाः (जषाः) जष झष हिंसायाम्-घ प्रत्ययः । झषाः । मीनभेदाः (मत्स्याः) जनिदाच्युसृवृमदि० । उ० ४ । १०४ । मदी हर्षे-स्यप्रत्ययः । जलजन्तुभेदाः ।

और (सर्वान्) सबों को (सद्यः) तुरन्त ही (परि पश्यासि) तू देख भाल लेता है, और (पूर्वस्मात्) पूर्वी [समुद्र] से (उत्तरस्मिन् समुद्रे) उत्तरी समुद्र में (भूमिम्) भूमि को (हंसि) तू पहुंचाता है ॥ २५ ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! इन सब बड़े बड़े थलचर और जलचर जन्तुओं के देखने से तेरी अनन्त महिमा जान पड़ती है । तू सब स्थानों में विद्यमान रहकर क्षण भर में इधर के जगत् को उधर करदेता है ॥२५॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयैताम् ॥ २६ ॥

मा । नः । रुद्र । तक्मना । मा । विषेण । मा । नः । सम् । स्राः । दिव्येन । अग्निना ॥ अन्यत्र । अस्मत् । वि-द्युतम् । पातय । एताम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [दुःख नाशक परमेश्वर] (मा) न तो (नः) हमें (तक्मना) दुःखी जीवन करने वाले [ज्वर आदि] से, (मा) न (विषेण) विष से, और (मा) न (नः) हमें (दिव्येन) सूर्य के (अग्निना) अग्नि से (सं स्राः) संयुक्त कर । (अस्मत्) हम से (अन्यत्र) दूसरों [अर्थात्

मीनाः (रजसाः) उदकं रज उच्यते-निरु० ४ । १६ । रजस्-अर्श आद्यच् । उदके भवाः । जलचराः । (येभ्यः) येषां सकाशात् (अस्यसि) अस दीप्तौ दिवादित्वं छान्दसम् । असिसि दीप्यसे (न) निषेधे (ते) तव (दूरम्) विप्रकृष्टम् (परिष्टा) परिवर्जनम् (अस्ति) (ते) (भव) हे सुखोत्पादक परमेश्वर (सद्यः) तत्क्षणम् (सर्वान्) पूर्वोक्तान् , समस्तान् (परि) सर्वतः (पश्यसि) अवलोकयसि (भूमिम्) भूलोकम् (पूर्वस्मात्) पूर्ववर्तिनः समुद्रात् (हंसि) हन हिंसागत्योः अन्तर्गतण्यर्थः । घातयसि । गमयसि (उत्तरस्मिन्) उत्तर-दिग्वर्तिनि (समुद्रे) जलधौ ॥

२६—(मा) निषेधे (नः) अस्मान् (तक्मना) अ० १ । २५ । १ । कृच्छ्र-जीवनकारिणा ज्वरादिना (मा) (विषेण) (मा) (नः) (संस्राः) म० १६ । संसृज ।।संयोजय (दिव्येन) दिवि सूर्ये भवेन (अग्निना) तापेन (अन्यत्र)

दुराचारियों] पर (एताम्) इस (विद्युतम्) लपलपाती [बिजुली] को (पातय) गिरा ॥ २६ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न पूर्वक परमेश्वर का ध्यान रखकर कुपथ छोड़ कर रोगों और उत्पातों से सुरक्षित रहें ॥ २६ ॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्मै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ २७ ॥

भवः । दिवः । भवः । ईशे । पृथिव्याः । भवः । आ । पप्रे । उरु । अन्तरिक्षम् ॥ तस्मै । नमः । यतमस्याम् । दिशि । इतः ॥२७॥

भाषार्थ—(भवः) भव [सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर] (दिवः) सूर्य का, (भवः) भव (पृथिव्याः) पृथिवी का (ईशे) राजा है, (भवः) भव ने (उरु) विस्तृत (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ पप्रे) सब ओर से पूरण किया है। (इतः) यहां से (यतमस्याम् दिशि) चाहे जौनसी दिशा हो उसमें (तस्मै) उस [भव] को (नमः) नमस्कार है ॥ २७ ॥

भावार्थ—जो परमात्मा सब सूर्य आदि लोकों का स्वामी है, उसको हम सब स्थानों में नमस्कार करके अपना ऐश्वर्य बढ़ावें ॥ २७ ॥

भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूर्थ । यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥

भव । राजन् । यजमानाय । मृड । पशूनाम् । हि । पशु-पतिः । बभूर्थ ॥ यः । श्रत्-दधाति । सन्ति । देवाः । इति । चतुः-पदे । द्वि-पदे । अस्य । मृड ॥ २८ ॥

अन्येषु । दुष्टेषु (अस्मत्) अस्मत्तः (विद्युतम्) विद्योतमानां तडितम् (पातय) प्रक्षिप (एताम्) दृश्यमानाम् ॥

२७—(भवः) म० ३ । सुखोत्पादकःपरमेश्वरः (दिवः) सूर्यस्य (ईशे) तलोपः । ईष्टे । राजति (पृथिव्याः) भूमेः (आ) समन्तात् (पप्रे) प्रा पूरणे-लिट्, आत्मने पदं छान्दसम् । पप्रौ । पूरितवान् (उरु) विस्तृतम् (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (तस्मै) (भवाय) परमेश्वराय। अन्यद् गतं पूर्वचच्च-म० १२ । १४ ॥

भाषार्थ—(भव) हे भव ! [सुखोत्पादक] (राजन्) राजन् ! [परमेश्वर] (यजमानाय) यजमान [श्रेष्ठ कर्म करने वाले] को (मृड) सुख दे, (हि) क्योंकि (पशूनाम्) दृष्टि वाले जीवों की [रक्षा के लिये] (पशुपतिः) दृष्टि वाले [जीवों] का रक्षक (बभूध) तू हुआ है। (यः) जो [पुरुष] (श्रद्दधाति) श्रद्धा रखता है कि "(देवाः सन्ति इति) [परमेश्वर के] उत्तम गुण हैं," (अस्य) उसके (द्विपदे) दोपाये और (चतुष्पदे) चौपाये को (मृड) तू सुख दे ॥ २८॥

भावार्थ—सर्वरक्षक परमेश्वर श्रद्धालु सत्पुरुष को उत्तम मनुष्य आदि दोपायों और गौ आदि चौपायों की बहुतायत से सुखी रखता है ॥ २८॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा नो॒ वह॑न्तमु॒त मा नो॑ वक्ष्य॒तः। मा नो॑ हिंसीः पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च॒ स्वां त॒न्वं॑ रुद्र॒ मा री॑रिषो नः ॥ २९ ॥

मा । नः॒ । म॒हान्त॑म् । उ॒त । मा । नः॒ । अ॒र्भ॒कम् । मा । नः॒ । वह॑न्तम् । उ॒त । मा । नः॒ । व॒क्ष्य॒तः ॥ मा । नः॒ । हिं॒सीः॒ । पि॒तर॑म् । मा॒तर॑म् । च॒ । स्वाम् । त॒न्व॑म् । रु॒द्र॒ । मा । रि॒रि॒षः॒ । नः॒ ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(रुद्र) हे रुद्र ! [ज्ञान दाता परमेश्वर] (मा) न तो (नः) हमारे (महान्तम्) पूजनीय [वयोवृद्ध वा विद्यावृद्ध] को (उत)और

२८—(भव) म० ३। हे सुखोत्पादक (राजन्) हे सर्वशासक (यजमानाय) देवपूजादिकर्त्रे (मृड) सुखं देहि (पशूनाम्) दृष्टिमतां जीवानां रक्षणायेति शेषः (हि) यस्मात् कारणात् (पशुपतिः) दृष्टिमतां पालकः (बभूथ) इडभावः। बभूविथ (यः) पुरुषः (श्रद्दधाति) श्रद्धां धारयति । विश्वसिति (सन्ति)भवन्ति (देवाः) दिव्यगुणाः परमेश्वरस्य (इति) वाक्यसमाप्तौ (चतुष्पदे) पादचतुष्टयोपेताय गवाश्वादिप्राणिने (द्विपदे) पादद्वयोपेताय मनुष्यादये (अस्य) श्रद्धाधारकस्य पुरुषस्य (मृड) ॥

२९—(मा) निषेधे (नः) अस्माकम् (महान्तम्) पूजनीयम् । वयोवृद्धं विद्यावृद्धं वा (अर्भकम्) अ० १। २७। ३ । अर्भकपृथुकपाका वयसि । उ०

(मा) न (नः) हमारे (अर्भकम्) बालक को, (मा) न (नः) हमारे (वहन्तत्) ले चलते हुये [युवा] को (उत) और (मा) न (नः) हमारे (वदयतः) भावी ले चलने वालों [होनहार सन्तानों] को (मा) न (नः) हमारे (पितरम्) पालने वाले पिता को (च) और (मातरम्) मान करने वाली माता को (हिंसीः) मार, और (मा) न (नः) हमारे (स्वाम्) अपने ही (तन्वम्) शरीर को (रिरिषः) नाशकर ॥ २९ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा की प्रार्थना करते हुये शुभ कर्मों का अनुष्ठान करके अपने सब सम्बन्धियों की और अपनी रक्षा करें ॥ २९ ॥

यह मन्त्र कुछ भेद से ऋग्वेद में है-१ । ११४ । ७ तथा यजुर्वेद—अ० १६ । म० १५ ॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।

इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥

रुद्रस्य । ऐलब-कारेभ्यः । असंसूक्त-गिलेभ्यः ॥

इदम् । महा-आस्येभ्यः । श्व-भ्यः । अकरम् । नमः ॥ ३० ॥

भाषार्थ—(ऐलबकारेभ्यः) लगातार भौं भौं ध्वनि करने वाले (असंसूक्तगिलेभ्यः) अमङ्गल शब्द बोलने वाले, (महास्येभ्यः) बड़े बड़े मुंह वाले

---

५ । ५३ । ऋधु वृद्धौ—वुन्, धस्य भः । बालकम् (वहन्तम्) वह प्रापणे-शतृ । वहनशीलं युवानम् (उत) अपि च (वदयतः) लृटः सद्वा । पा० ३ । ३ । ११४ । वह प्रापणे-लृटःस्य —शतृ । भविष्य तिकाले वहनशीलान् (हिंसीः) माङि लुङि रूपम् । हिन्धि (पितरम्) पालकं जनकम् (मातरम्) मानप्रदां जननीम् (स्वाम्) स्वकीयाम् (तन्वम्) शरीरम् (रुद्र) म० ३ । हे ज्ञानप्रद (रिरिषः) अ० ५ । ३ । ८ । जहि (नः) अस्माकम् । अन्यद्गतम् ॥

३०-(रुद्रस्य) चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । पा० २ । ३ । ६२ । इति षष्ठी । रुद्राय । दुःखनाशकाय (ऐलबकारेभ्यः) आङ्+इल स्वप्नक्षेपणयोः-घञ्+बण, बण शब्दे-ड+करोतेः-अण् । आक्षेपध्वनिकारकेभ्यः (असंसूक्तगिलेभ्यः) सलिकल्यनिमहि० । उ० १ । ५४ । अ+सम्+सूक्त+गॄ शब्दे-इलच् । असंसूक्तस्य अशुभवचनस्य भाषणशीलेभ्यः (इदम्) (महास्येभ्यः) विशालमुखेभ्यः (श्वभ्यः) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । पा० २ । ३ । १४ । इति चतुर्थी । शुनः कुक्कुरान्

(श्वभ्यः) कुत्तों के रोकने के लिये (रुद्रस्य) रुद्र [दुःखनाशक परमेश्वर] को (इदम्) यह (नमः) नमस्कार (अकरम्) मैं ने किया है ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करें कि चोर आदि दुर्जन इधर उधर न घूमें, जिनके न होने से चौकसी के कुत्ते भयानक शब्द न करें ॥ ३० ॥

नम॑स्ते घो॒षिणी॑भ्यो॒ नम॑स्ते के॒शिनी॑भ्यः ।
नमो॒ नम॑स्कृताभ्यो॒ नम॑: संभु॒ञ्जती॑भ्यः ।
नम॑स्ते देव॒ सेना॑भ्यः स्व॒स्ति नो॒ अभ॑यं च नः ॥ ३१ ॥ (७)

नम॑: । ते॒ । घो॒षिणी॑भ्यः । नम॑: । ते॒ । के॒शिनी॑भ्यः ॥
नम॑: । नम॑:-कृताभ्यः । नम॑: । स॒म्-भु॒ञ्जती॑भ्यः ॥ नम॑: । ते॒ । दे॒व॒ । सेना॑भ्यः । स्व॒स्ति । नः॒ । अभ॑यम् । च॒ । नः॒ ॥३१॥ (७)

भाषार्थ—[हे परमेश्वर !] (घोषिणीभ्यः) बड़े कोलाहल करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (केशिनीभ्यः) प्रकाश करने वाली [सेनाओं] के पाने को (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (नमस्कृताभ्यः) नमस्कार की हुई [सेनाओं] के पाने को (नमः) नमस्कार, (संभुञ्जतीभ्यः) मिल कर भोग [आनन्द] करने वाली (सेनाभ्यः) सेनाओं के पाने को (नमः) नमस्कार है। (देव) हे विजयी ! [परमेश्वर] (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है, (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) स्वस्ति [कल्याण] (च) और (नः) हमारे लिये (अभयम्) अभय हो ॥ ३१ ॥

निवारयितुम् (अकरम्) करोतेर्लुङ्। कृमृदृरुहिभ्यश्छन्दसि। पा० ३। १। ५६।। च्लेरङ्। अहं कृतवानस्मि ॥

३१—(नमः) प्रणामः (ते) तुभ्यम् (घोषिणीभ्यः) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः। पा० २। ३। १४। इति चतुर्थी। प्रभूतघोषयुक्ताः सेनाः प्राप्तुम् (केशिनीभ्यः) केशी केशा रश्मयस्तैस्तद्वान् भवति काशनाद्वा प्रकाशनाद्वा–निरु० १२। २५। प्रकाशयुक्ताः सेनाः प्राप्तुम् (नमस्कृताभ्यः) सत्कृताः सेनाः प्राप्तुम् (संभुञ्जतीभ्यः) सह भोगं कुर्वतीः सेनाः प्राप्तुम् (देव) हे विजयिन् परमात्मन् (सेनाभ्यः) सेनाः प्राप्तुम् (स्वस्ति) शोभनां सत्ताम्। कल्याणम् (नः) अस्मभ्यम् (अभयम्) भयराहित्यम् (च) (नः) अस्मभ्यम् ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा की उपासना करके अपना सामर्थ्य बढ़ाते हैं, वे उत्तम, बलवती, सुशिक्षित थलचर, जलचर, नभचर आदि सेनायें रख कर प्रजाकी रक्षा कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ३ (पर्यायः १) ॥

१—३१ ॥ ओदनो देवता ॥ १, १४ आसुरी गायत्री; २, ११ भुरिगार्षी गायत्री; ३, ६, ६, १० आसुरी पङ्क्तिः; ४, ८ साम्न्यनुष्टुप्; ५, १३, १५, २५ साम्न्युष्णिक्; ७, १६-२२ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; १२, २७ याजुषी जगती; १६,२३ आसुरी बृहती; १७, १८ आसुर्यनुष्टुप्; २४ प्राजापत्या बृहती; २६ आर्च्युष्णिक्; २८, २६ साम्नी बृहती; ३० याजुषी त्रिष्टुप्; ३१ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः ॥

सृष्टिपदार्थज्ञानोपदेशः-सृष्टि के पदार्थों के ज्ञान का उपदेश ॥

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥ १ ॥

तस्य । ओदनस्य । बृहस्पतिः । शिरः । ब्रह्म । मुखम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(तस्य) उस [प्रसिद्ध] (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] का (शिरः) शिर (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े जगत् का रक्षक वायु वा मेघ] और (मुखम्) मुख (ब्रह्म) अन्न है ॥ १ ॥

भावार्थ—जैसे शरीर के लिये शिर और मुख आदि उपकारी हैं, वैसे ही परमात्मा ने अपनी सत्ता से वायु, मेघ और अन्न आदि रचकर सब संसार के साथ उपकार किया है ॥ १ ॥

१—(तस्य) प्रसिद्धस्य (ओदनस्य) अ० ११ । १ । १७ । सुखवर्षकस्य परमेश्वरस्य (बृहस्पतिः) अ० १ । ८ । २ । बृहत्-पति, सुडागमः, तलोपश्च । बृहस्पतिर्बृहतः पाता वा पालयिता वा-निरु० १० । ११ । इति मध्यस्थानदेवतासु पाठः । बृहतो महतो जगतो रक्षिता वायुर्मेघो वा (शिरः) मस्तकम् (ब्रह्म) अन्नम्-निघ० २ । ७ (मुखम्) ॥

द्यावा॑पृथि॒वी श्रोत्रे॑ सू॒र्या॒चन्द्र॒मसा॒वक्षि॑णी स॒प्तऋ॒षयः॑ प्रा॒णा-पा॒नाः ॥ २ ॥

द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । श्रोत्रे॒ इति॑ । सू॒र्या॒च॒न्द्र॒मसौ॑ । अक्षि॑णी॒ इति॑ । स॒प्त-ऋ॒षयः॑ । प्रा॒णा॒पा॒नाः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी, (श्रोत्रे) [परमेश्वर के] दो कान, (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा (अक्षिणी) [उसकी] दो आखें, और (प्राणापानाः) प्राण और अपान [वायुसंचार, उसके] (सप्त-ऋषयः) सात ऋषि [पांच ज्ञानेन्द्रिय त्वचा, नेत्र, श्रवण, जिह्वा, नासिका, मन और बुद्धि] हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने संसार में आकाश, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा को शरीर की स्थूल इन्द्रियों के समान और वायु संचार को सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रियों मन बुद्धि के समान रचा है ॥ २ ॥

चक्षु॑र्मु॒स॑लं॒ काम॑ उ॒लूख॑लम् ॥ ३ ॥

चक्षुः॑ । मु॒स॑लम् । कामः॑ । उ॒लूख॑लम् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(चक्षुः) [उसकी] दर्शन शक्ति (मुसलम्) मूसल [समान], [उसकी] (कामः) कामना (उलूखलम्) ओखली [समान] है ॥ ३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर संसार में दृष्टि मात्र से कूटने आदि व्यवहार करता और इच्छा मात्र से सूक्ष्म बनाकर यथावत् रखने की क्रिया करता है, अर्थात् स्थूल भूतों से सूक्ष्म समीचीन रचना करना उसी के वश में है ॥ ३ ॥

२—(द्यावापृथिवी) भूमिवियतौ (श्रोत्रे) श्रवणेन्द्रिये (सूर्याचन्द्रमसौ) (अक्षिणी) चक्षुषी (सप्तऋषयः) अ० ४ । ११ । ९ । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी-निरु० १२ । ३७ । त्वक्चक्षुः श्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धयः ॥

३—(चक्षुः) दृष्टिसामर्थ्यम् (मुसलम्) अ० ६ । ६ (१) । १५ । मुस खण्डने-कल, चित् । कुट्टनसाधनम् (कामः) अभिलाषः (उलूखलम्) अ० ६ । ६ (१) । १५ । धान्यादिमर्दनसाधनम् ।

दितिः शूर्प॒मदि॑तिः शूर्पग्राही वातोऽपा॑विनक् ॥ ४ ॥

दितिः। शूर्पम्। अदितिः। शूर्प॒-ग्राही। वातः। अप॑। अविनक् ॥४॥

भाषार्थ—(दितिः) [परमेश्वर की] खण्डन शक्ति (शूर्पम्) सूप [समान] है, (अदितिः) [उसकी] अखण्डन शक्ति ने (शूर्पग्राही) सूप पकड़ने वाले [के समान] (वातः-वातेन) पवन से (अप अविनक्) [शुद्ध और अशुद्ध पदार्थ को] अलग अलग किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैसे लोग सूप से वायु द्वारा अशुद्ध वस्तु को निकालकर शुद्ध वस्तु को ले लेते हैं, वैसे ही परमेश्वर अपने सामर्थ्य से प्रकृति द्वारा परमाणुओं का संयोग वियोग करके जगत् को रचता है और वैसे ही विवेकी पुरुष विद्या द्वारा अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करता है ॥ ४ ॥

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥ ५ ॥

अश्वाः। कणाः। गावः। तण्डुलाः। मशकाः। तुषाः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(अश्वाः) घोड़े (कणाः) कण [समान], (गावः) गौवें (तण्डुलाः) चावल [समान] और (मशकाः) माछड़ (तुषाः) भुसी [समान] हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—घोड़े आदि जीव परमेश्वर की महिमा के बहुत छोटे अंश हैं ५

कब्रु॑ फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥ ६ ॥

कब्रु॑। फली-करणाः। शरः। अभ्रम् ॥ ६ ॥

४—(दितिः) दो अवखण्डने-क्तिन्। खण्डनशक्तिः परमेश्वरस्य (शूर्पम्) सुशृभ्यां निच्च । उ० ३। २६। शॄ हिंसायाम्—पप्रत्ययः। यद्वा, शूर्प माने-घञ्। धान्यस्फोटकपात्रम् (अदितिः) अ० २। २८। ४। नञ्+दो अवखण्डने-क्तिन्। अखण्डनशक्तिः (शूर्पग्राही) ग्रह उपादाने-णिनि। शूर्पग्राहकः पुरुषः (वातः) सुपां सुलुक्० । पा० ७। १। ३९। विभक्तेः सु। वातेन, वायुना (अप अविनक्) विचिर् पृथग्भावे—लङ्। पृथक् पृथक् कृतवान् शुद्धाशुद्धवस्तूनि

५—(अश्वाः) मार्गव्यपिनो घोटकाः (कणाः) क्षुद्रांशाः (गावः) गवादिजन्तवः (तण्डुलाः) अ० १०। ९। २६। तुषरहिता व्रीहयः (मशकाः) अ० ४। ३६। ९। दंशकाः (तुषाः) धान्यत्वचाः ॥

भाषार्थ—(कब्रु) विचित्र रङ्ग वाला [जगत्] (फलीकरणाः) [उसका] फटकन [भुसी आदि] और (अभ्रम्) बादल (शरः) [उसका] घास फूंस [समान] है ॥ ६ ॥

भावार्थ—श्वेत पीत आदि वर्ण युक्त जगत् और मेघ आदि परमेश्वर की अति छोटी वस्तु हैं ॥ ६ ॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥ ७ ॥

श्यामम् । अयः । अस्य । मांसानि । लोहितम् । अस्य । लोहितम् ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(श्यामम्) श्याम वर्ण (अयः) लोहा (अस्य) इसके (मांसानि) मांस के अवयव [तुल्य] हैं और (लोहितम्) रक्त वर्ण वाला [लोहा अर्थात् तांबा] (अस्य) इसके (लोहितम्) रुधिर [समान] है ॥ ७ ॥

भावार्थ-लोहा तांबा आदि धातु परमेश्वर की सत्ता से उत्पन्न हुये हैं।७।

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥ ८ ॥

त्रपु । भस्म । हरितम् । वर्णः । पुष्करम् । अस्य । गन्धः ॥८॥

भाषार्थ—(त्रपु) सीसा वा रांगा (भस्म) भस्म [उसकी राख समान], (हरितम्) सुवर्ण (वर्णः) [उसका] रङ्ग [समान] और (पुष्क-

६—(कब्रु) मीपीभ्यां रुः । उ० ४ । १०१ । कबृ स्तुतौ वर्णे च । रुप्रत्ययः । वर्णितम् । विचित्रीकृतं जगत् (फलीकरणाः) ञि फला विदारणे-अच्+डु कृञ् करणे-ल्यु, च्वि च । स्फोटनेन विदारिततुषादयः (शरः) शॄ हिंसायाम्-अप् । तृणम् (अभ्रम्) अभ्रम् । मेघः ॥

७—(श्यामम्) इषियुधीन्धिदसिश्या० उ० १ । १४५ । श्यैङ् गतौ-मक् कृष्णवर्णम् (अयः) इण् गतो-असुन् । लौहः । धातुभेदः (अस्य) पूर्वोक्तस्य परमेश्वरस्य (मांसानि) मांसावयवाः (लोहितम्) रक्तवर्णम् । अयः । ताम्र-मित्यर्थः (अस्य) (लोहितम्) रुधिरम् ॥

८—(त्रपु) शॄस्वृस्निहित्रप्यसि० । उ० १ । १० । त्रप लज्जायाम्-उ । अग्निं प्राप्य यत् त्रपते लज्जितमिव भवतीति तत् त्रपु सीसकं रंगं वा (भस्म)

रम्) कमल का फूल (अस्य) इसका (गन्धः) गन्ध [समान] है ॥ ८ ॥

भावार्थ—सीसा सुवर्ण और कमल आदि वस्तु परमेश्वर से उत्पन्न हैं ॥ ८ ॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥ ९ ॥

खलः । पात्रम् । स्फ्यौ । अंसौ । ईषे इति । अनूक्ये३ इति । ९ ।

भाषार्थ—(खलः) खलियान [धान्यमर्दन स्थान] (पात्रम्) [उसका] पात्र [बासन समान], (स्फ्यौ) दो फाने [लकड़ी की खपच] (अंसौ) [उसके] दो कन्धे, (ईषे) दोनों सूठ और हरस [हलके अवयव] (अनूक्ये) [उसकी] रीढ़ की दो हड्डियां हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—खलियान आदि स्थान और हल के अवयव आदि परमेश्वर के उपदेश से बनाये जाते हैं ॥ ९ ॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥ १० ॥

आन्त्राणि । जत्रवः । गुदाः । वरत्राः ॥ १० ॥

भाषार्थ—(जत्रवः) जोते [बैलों की ग्रीवा के रस्से] (आन्त्राणि) [उसकी] आंते और (वरत्राः) वरत्र [बरत, हल के बैलों के बड़े रस्से] (गुदाः) [उसकी] गुदायें [उदर की नाड़ी विशेष] हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—बैल आदि का बाधना और उपयोग ईश्वर से सिखाया गया है ॥ १० ॥

भस दीप्तौ—मनिन् । दग्धगोमयादिविकारः (हरितम्) सुवर्णम् (वर्णः) शुक्लादिरूपम् (पुष्करम्) कमलपुष्पम् (अस्य) ईश्वरस्य (गन्धः) घ्राणग्राह्यो गुणः ॥

९—(खलः) धान्यमर्दनस्थानम् (पात्रम्) अमत्रम् (स्फ्यौ) माछासस्भ्यो यः । उ० ४ । १०९ । स्फायी वृद्धौ-य, स च डित् । प्रवृद्धौ काष्टकीलकौ (अंसौ) स्कन्धौ (ईषे) अ० २ । ८ । ४ । ईष गतौ-क, टाप् । लाङ्गलदण्डौ (अनूक्ये) अ० २ । ३३ । २ । अनु + उच समवाये-ण्यत्, टाप् । पृष्ठास्थिनी ॥

१०—(आन्त्राणि) अ० १ । ३ । ६ । उदरनाडिविशेषाः (जत्रवः) जत्र्वादयश्च । उ० ४ । १०२ । जनी प्रादुर्भावे-रु नस्य तः । स्कन्धबन्धनानि (गुदाः) अ० २ । ३३ । ४ । गुद खेलने-क, टाप् । अशितपीतान्नरससंचारणार्था उदरनाडिविशेषाः (वरत्राः) अ० ३ । १७ । ६ । वृञ् संवरणे-अत्रन्, टाप् । हले वृषभबन्धनबृहद्रज्जवः ॥

इ॒यमे॒व पृ॑थि॒वी कु॒म्भी भ॑वति॒ राध्य॑मानस्यौद॒नस्य॒ द्यौर॑पि॒धान॑म् ॥ ११ ॥

इ॒यम् । ए॒व । पृ॒थि॒वी । कु॒म्भी । भ॒व॒ति॒ । राध्य॑मानस्य । ओ॒द॒नस्य॑ । द्यौः । अ॒पि॒-धान॑म् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(इयम् एव) यही (पृथिवी) फैली हुई भूमि (राध्यमानस्य) पकते हुये (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (कुम्भी) बटलोही और (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य (अपिधानम्) ढकनी [समान] (भवति) है ॥ ११ ॥

भावार्थ—परमेश्वर इतना बड़ा है कि वह इन पृथिवी सूर्य आदि लोकों में निरन्तर व्यापक है ॥ ११ ॥

सीता॑: पर्श॑वः सिक॑ता ऊब॑ध्यम् ॥ १२ ॥

सीता॑: । पर्श॑वः । सिक॑ताः । ऊब॑ध्यम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(सीताः) जोतने की रेखायें (पर्शवः) [उसकी पसलियां और (सिकताः) बालू (ऊबध्यम्) [उसके] कुपचे अन्न [समान] है ॥ १२ ॥

भावार्थ—ईश्वर प्रत्येक परमाणु में व्यापक है ॥ १२ ॥

ऋ॒तं ह॑स्ताव॒नेज॑नं कु॒ल्योप॒सेच॑नम् ॥ १३ ॥

ऋ॒तम् । ह॒स्त॒-अ॒व॒नेज॑नम् । कु॒ल्या । उ॒प॒-सेच॑नम् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(ऋतम्) सत्यज्ञान (हस्तावनेजनम्) [उसके] हाथ

११—(इयम्) दृश्यमाना (एव) अवश्यम् (पृथिवी) प्रथिता भूमिः (कुम्भी) पाकस्थाली (भवति) वर्तते (राध्यमानस्य) पच्यमानस्य (ओदनस्य) सुखवर्षकस्यान्नरूपस्य परमेश्वरस्य (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यः (अपिधानम्) कुम्भीमुखच्छादनपात्रम् ॥

१२—(सीताः) कर्षणोपत्ना लाङ्गलपद्धतयः (पर्शवः) पार्श्वास्थीनि (सिकताः) बालुकाः (ऊबध्यम्) अ० ६ । ४ । १६ । दुर्+बध बन्धने-यत्, दकारलोपे, ऊत्वम् । अजीर्णमन्नम् ॥

१३—(ऋतम) सत्यज्ञानम् (हस्तावनेजनम्) णिजिर् शौचपोषणयोः-

धोने का जल, और (कुल्या) सब कुलों के लिये हितकारी [नीति] (उपसेचनम्) [उसका] उपसेचन [छिड़काव] है ॥ १३ ॥

भावार्थ--जैसे जल द्वारा प्राणियों में शुद्धि और वृद्धि होती है, वैसे ही परमेश्वर ने वेद रूप सत्यज्ञान और सत्यनीति द्वारा संसार का उपकार किया है ॥ १३ ॥

श्री सायणाचार्य ने (ऋतम्) का अर्थ "जल अर्थात् संसार में विद्यमान सब जल" और (कुल्या) का अर्थ "छोटी नदी" किया है ॥

ऋ॒चा कु॒म्भ्यधि॑हि॒तार्त्वि॑ज्येन॒ प्रेषि॑ता ॥ १४ ॥

ऋ॒चा । कु॒म्भी । अधि॑-हि॒ता । आर्त्वि॑ज्येन । प्र-इ॑षिता ॥१४॥

भाषार्थ--(कुम्भी) कुम्भी [छोटा पात्र] (ऋचा) वेद वाणी के साथ (अधिहिता) ऊपर चढ़ाई गई और (आर्त्विज्येन) ऋत्विजों [सब ऋतुओं में यज्ञ करनेवालों] के कर्म से (प्रेषिता) भेजी गई है ॥ १४ ॥

भावार्थ--जैसे जल आदि के लिये कुम्भी उपकारी होती है, वेसेही वेदवाणी विद्वानों द्वारा प्रचरित होकर हित करती है ॥ १४ ॥

ब्रह्म॑णा॒ परि॑गृहीता॒ साम्ना॒ पर्यू॑ढा ॥ १५ ॥

ब्रह्म॑णा । परि॑-गृहीता । साम्ना॑ । परि॑-ऊढा ॥ १५ ॥

भाषार्थ--(ब्रह्मणा) ब्रह्मा [वेदज्ञाता] करके (परिगृहीता) ग्रहण की गई वह [कुम्भी] (साम्ना) दुःखनाशक [मोक्ष ज्ञान] द्वारा (पर्यूढा) सब ओर ले जायी गयी है ॥ १५ ॥

भावार्थ--ब्रह्मज्ञानी लोग वेद वाणी को ग्रहण करके मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥ १५ ॥

बृ॒हदा॒यव॑नं रथन्त॒रं दर्विः॑ ॥ १६ ॥

बृ॒हत् । आ॒-यव॑नम् । र॒थम्-त॒रम् । दर्विः॑ ॥ १६ ॥

ल्युट् । हस्तप्रक्षालनजलम् (कुल्या) कुल-यत्, टाप् । कुलेभ्यो जगत्समूहेभ्यो हिता नीतिः (उपसेचनम्) जलेनार्द्रीकरणं वर्धनम् ॥

१४--(ऋचा) ऋग् वाङ्नाम-निघ० १ । ११ । स्तुत्या वेदवाण्या सह (कुम्भी) जलादिलघुपात्रम् । उखा (अधिहिता) उपरि स्थापिता (आर्त्विज्येन) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । पा० ५ । १ । १२४ । ऋत्विज्-ष्यञ् । ऋत्विजां कर्मणा (प्रेषिता) प्रेरिता ॥

१५--(ब्रह्मणा) ब्रह्मवादिना ब्राह्मणेन (परिगृहीता) स्वीकृता (साम्ना) षो अन्तकर्मणि-मनिन् । दुःखनाशकेन मोक्षज्ञानेन (पर्यूढा) वह प्रापणे-क्त । सर्वतो नीता ॥

भाषार्थ—(बृहत्) बृहत् [बड़ा आकाश] (आयवनम्) [उस परमेश्वर का] सब ओर से मिलाने का चमचा, और (रथन्तरम्) रथन्तर [रमणीय पदार्थों द्वारा पार लगाने वाला जगत्] (दर्विः) [उसकी] डोयी [परोसने की करछी है] ॥ १६ ॥

भावार्थ—यह सब आकाश और सब जगत् परमेश्वर के लिये ऐसे छोटे पदार्थ हैं जैसे गृहस्थ के चमचे आदि पात्र होते हैं ॥ १६ ॥

ऋ॒तवः॑ प॒क्तार॑ आर्त॒वाः समि॑न्धते ॥ १७ ॥

ऋ॒तवः॑ । प॒क्तारः॑ । आ॒र्त॒वाः । सम् । इ॒न्ध॒ते॒ ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(ऋतवः) ऋतुयें और (आर्तवाः) ऋतुओं के अवयव [महीने दिन राति आदि] (पक्तारः) पाक कर्ता होकर [अग्नि को] (सम्) यथा नियम (इन्धते) जलाते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—ऋतुयें और महीने आदि ईश्वर नियम से संसार में पचन क्रिया करते हैं ॥ १७ ॥

च॒रुं पञ्च॑बिलमु॒खं घ॒र्मो॒३॒॑भीन्धे ॥ १८ ॥

च॒रुम् । पञ्च॑-बिलम् । उ॒खम् । घ॒र्मः । अ॒भि । इ॒न्धे॒ ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(घर्मः) तपने वाला सूर्य (पञ्चबिलम्) पांच [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश रूप] बिल [छिद्र] वाले (चरुम्) पकाने के बर्तन, (उखम् अभि) हांडी के आस पास (इन्धे) जलता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से सूर्य अन्य लोकों को तपाकर आनन्द देता है ॥ १८ ॥

१६—(बृहत्) प्रवृद्धमाकाशम् (आयवनम्) आङ्+यु मिश्रणामिश्रणयोः-ल्युट् । समन्ताद् मिश्रणसाधनं चमसः (रथन्तरम्) अ० ८ । १० (२) । ६ । रमु क्रीडायाम्-क्थन्+तॄ प्लवनतरणयोः-खच् मुम् च । रथै रमणीयैः पदार्थैस्तरति येन तज् जगत् (दर्विः) अ० ४ । १४ । ७ । दृ विदारणे-विन् । पाकोद्धारणसाधनम् ॥

१७—(ऋतवः) वसन्तादयः (पक्तारः) पाचकाः (आर्तवाः) ऋतूनामवयवाः (सम्) सम्यक् (इन्धते) दीपयन्ति, अग्निं ज्वलयन्ति ॥

१८—(चरुम्) पाकपात्रम् (पञ्चबिलम्) पञ्च पृथिवीजलतेजोवाय्वाकाशरूपाणि बिलानि छिद्राणि यस्मिन् तम् (उखम्) पुंस्त्वं छान्दसम् । उखां स्थालीम् (घर्मः) घर्मग्रीष्मौ । उ० १ । १४९ । घृ दीप्तौ-मक्, गुणो निपातितः । आतपः । ग्रीष्मः । सूर्यः (अभि) प्रति (इन्धे) दीप्यते ॥

ओदनेन यज्ञवचः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥ १९ ॥

ओदनेन । यज्ञ-वचः । सर्वे । लोकाः । सम्-आप्याः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(ओदनेन) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] द्वारा (यज्ञवचः) यज्ञों [श्रेष्ठकर्मों] से बताये गये (सर्वे) सब (लोकाः) स्थान (समाप्याः) यथावत् पाने योग्य हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की आराधना से मनुष्य सब उत्तम उत्तम अधिकार पा सकता है ॥ १९ ॥

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥ २० ॥

यस्मिन् । समुद्रः । द्यौः । भूमिः । त्रयः । अवर-परम् । श्रिताः २०

भाषार्थ—(यस्मिन्) जिस [ओदन, परमेश्वर] में (द्यौः) सूर्य, (समुद्रः) अन्तरिक्ष और (भूमिः) भूमि, (त्रयः) तीनों [लोक] (अवरपरम्) नीचे ऊपर (श्रिताः) ठहरे हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—मन्त्र २२ के साथ ॥ २० ॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥ २१ ॥

यस्य । देवाः । अकल्पन्त । उत्-शिष्टे । षट् । अशीतयः ॥२१

भषार्थ—(यस्य) जिस [परमेश्वर] के (उच्छिष्टे) सब से बड़े श्रेष्ठ [वा प्रलय में भी बचे] सामार्थ्य में (देवाः) [सूर्य आदि] दिव्य लोक

१९—(ओदनेन) अ० ९ । ५ १९ । सुखवर्षकेण, अन्नरूपेण परमेश्वरेण (यज्ञवचः) वचेः कर्मणि—विच् । यज्ञैः श्रेष्ठकर्मभिः कथ्यमानाः (सर्वे) (लोकाः) भुवनानि (समाप्याः) सम्यक् प्रापणीयाः ॥

२०—(यस्मिन्) ओदने, परमेश्वरे (समुद्रः) अ० १ । १३ । ३ । अन्तरिक्षम्-निघ० १ । ३ (द्यौः) प्रकाशमानः सूर्यः (भूमिः) (त्रयः) लोकाः (अवरपरम्) अधरोत्तरम् (श्रिताः) स्थिताः ॥

२१—(यस्य) परमेश्वरस्य (देवाः) सूर्यादयो दिव्यलोकाः (अकल्पन्त) कृपू सामर्थ्ये-लङ् । रचिता अभवन् (उच्छिष्टे) शासु अनुशिष्टौ—क्त । शास इदङ्हलोः । पा० ६ । ४ । ३ । ४ । उपधाया इकारः । शासिवसिघसीनां च । पा० ८ ।

और (षट्) छह [पूर्व आदि चार और नीचे ऊपर की] (अशीतयः) व्यापक दिशायें (अकल्पन्त) रची हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—मन्त्र २२ के साथ॥ २१ ॥

तं त्वौदनस्य पृच्छामि यो अस्य महिमा महान् ॥ २२ ॥

तम् । त्वा । ओदनस्य । पृच्छामि । यः । अस्य । महिमा । महान् ॥ २२ ॥

भाषार्थ—[हे आचार्य !] (त्वा) तुझसे (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (तम्) उस [महिमा] को (पृच्छामि) मैं पूछता हूं, (यः) जो (अस्य) उस की (महान्) बड़ी (महिमा) महिमा है २२

भावार्थ—जिस परमेश्वर के सामर्थ्य में सब लोक और सब दिशायें वर्तमान हैं, मनुष्य उसकी महिमा को खोज कर अपना सामर्थ्य बढ़ावे, म० २०—२२ ॥

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात् ॥ २३ ॥

सः । यः । ओदनस्य । महिमानम् । विद्यात् ॥ २३ ॥

नाल्प इति ब्रूयान्नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥२४॥

न । अल्पः । इति । ब्रूयात् । न । अनुप-सेचनः । इति । न । इदम् । च । किम् । च । इति ॥ २४ ॥

---

३ । ६० । इति षत्वम् । यद्वा शिष असर्वोपयोगे-क्त । उच्छिष्टात् सर्वस्मादूर्ध्वं शिष्टात् परमेश्वरात् तत्सामर्थ्याच्च-इति दयानन्दकृतायाम् ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिकायां पृष्ठे १३६ । सर्वोत्कृष्टे सामर्थ्ये । यद्वा प्रलयेऽप्यवशिष्टे । परिशिष्टे सामर्थ्ये (षट्) प्राच्यादिनीचोच्चषट्संख्याकाः (अशीतयः) अ० २ । १२ । ४ । वसेस्तिः उ० ४ । १८० । अशू व्याप्तौ-ति, छान्दस इडागमो दीर्घश्च । व्यापिका दिशाः ॥

२२—(तम्) महिमानम् (त्वा) त्वामाचार्यम् (ओदनस्य)सुखवर्षक-स्यान्नरूपस्य परमेश्वरस्य (पृच्छामि) अहं जिज्ञासे (यः) (अस्य) परमेश्वरस्य (महिमा) महत्त्वम् (महान्) अधिकः ॥

भाषार्थ—(यः) जो [योगी जन] (ओदनस्य) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] की (महिमानम्) महिमा को (विद्यात्) जानता हो, (सः) वह (ब्रूयात्) कहे "(न अल्पः इति) वह [परमेश्वर] थोड़ा नहीं है [अर्थात् बड़ा है], (न अनुपसेचनः इति) वह उपसेचन रहित नहीं है [अर्थात् सेचन वा वृद्धि करने वाला है], (च) और (न इदम् किम् च इति) न वह यह कुछ वस्तु है [अर्थात् ब्रह्म में अङ्गुली का निर्देश नहीं हो सकता]" ॥ २३, २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे जैसे परमेश्वर को खोजता है, उसका सामर्थ्य बढ़ता जाता है, तौ भी उसका परिमाण, आदि सीमा नहीं जानता और न उसका यथावत् वर्णन कर सकता है ॥ २३, २४ ॥

यावद् दाताभिमनस्येत् तन्नाति वदेत् ॥ २५ ॥

यावत् । दाता । अभि-मनस्येत् । तत् । न । अति । वदेत् २५

भावार्थ—(यावत्) जितना [ब्रह्मज्ञान] (दाता) दाता [ज्ञान दाता] (अभिमनस्येत) मन से विचारै, (तत्) उस को (अति) अधिक करके वह [ज्ञान दाता] (न वदेत) न बोले ॥ २५ ॥

भावार्थ—उपदेशक गुरु विचार पूर्वक ब्रह्मज्ञान का सत्य सत्य उपदेश करे, कदापि मिथ्या न बोले ॥ २५ ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ः प्रत्यञ्चा३मिति ।२६।

ब्रह्म-वादिनः । वदन्ति । पराञ्चम् । ओदनम् । प्र । आशी३ः । प्रत्यञ्चा३म् । इति ॥ २६ ॥

२३, २४—(सः) योगिजनः (यः) (ओनदस्य) सुखवर्षकस्यान्नरूपस्य परमात्मनः (महिमानम्) महत्त्वम् (विद्यात्) जानीयात् (न) निषेधे (अल्पः) न्यूनः (इति) वाक्यसमाप्तौ (ब्रूयात्) वदेत् (न) न ब्रूयात् (अनुपसेचनः) षिच् सेके-ल्युट्। उपसेचनेन वर्धनेन रहितः (इति) (न) निषेधे (इदम्) निर्दिष्टम् ब्रह्म (च च) (किम् च) किंचन (इति) ॥

२५–(यावत्) यत्प्रमाणं ब्रह्मज्ञानम् (दाता) ज्ञानदाता गुरुः (अभिमनस्येत) भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हलः। पा० ३।१।१२। अभिमनस्-क्यङ्; न सलोपः। मनसा विचारयेत् (तत्) ब्रह्मज्ञानम् (न) निषेधे (अति) अधिकम् (वदेत्) ब्रूयात् ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मवादी [ईश्वर वा वेद को विचारनेवाले] (वदन्ति) कहते हैं—"[हे मनुष्य ! क्या] (पराञ्चम्) दूरवर्ती (ओदनम्) ओदन [सुख बरसानेवाले अन्न रूप परमेश्वर] को (प्र आशी३ः) तू ने खाया है, [अथवा] (प्रत्यञ्चा३म् इति) प्रत्यक्ष वर्ती को ?" ॥ २६ ॥

भावार्थ—प्रश्न है कि क्या परमेश्वर किसी दूर वा प्रत्यक्ष स्थान विशेष में मिलता है ? इसका उत्तर आगे मन्त्र २८ तथा २९ में है ॥ २६ ॥

त्वमो॑द॒नं प्राशी३स्त्वामो॑द॒ना३ इति॑ ॥ २७ ॥

त्वम् । ओ॒द॒नम् । प्र । आशी३ः । त्वाम् । ओ॒द॒ना ३ः । इति॑ ।२७।

भाषार्थ—[क्या (त्वम्) तू ने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को (प्र आशीः ३) खाया है, [अथवा] (त्वा) तुझ को (ओदना३ः इति) ओदन [सुखवर्षक अन्न रूप परमेश्वर] ने ? ॥२७॥

भावार्थ—प्रश्न है कि क्या मनुष्य परमेश्वर को अन्न समान खाता है, वा परमेश्वर मनुष्य को अन्न तुल्य खाता है। इस का उत्तर मन्त्र ३० तथा ३१ में है ॥ २७ ॥

परा॑ञ्चं चैनं॒ प्राशीः॑ प्रा॒णास्त्वा॑ हास्य॒न्तीत्ये॑नमाह ॥२८॥

परा॑ञ्चम् । च॒ । ए॒न॒म् । प्र॒-आशीः॑ । प्रा॒णाः । त्वा॒ । हा॒स्य॒न्ति॒ । इति॑ । ए॒न॒म् । आ॒ह॒ ॥ २८ ॥

२६—(ब्रह्मवादिनः) ब्रह्मणः परमेश्वरस्य वेदस्य वा विचारका महर्षयः (वदन्तिः) भाषन्ते (पराञ्चम्) परा+ अञ्चु गतिपूजनयोः—क्विन् । दूरे गच्छन्तम् (ओदनम्) सुखवर्षकमन्नरूपं परमेश्वरम् (प्र) प्रकर्षेण (आशी३ः) अश भोजने-लुङ् । विचार्यमाणानाम् । पा० ८ । २ । ९७ । इति टेः प्लुतः । भक्षितवानसि (प्रत्यञ्चा३म्) प्रति+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन्, पूर्ववत् प्लुतः । प्रत्यञ्चम् प्रत्यक्षवर्तिनम् (इति) वाक्यसमाप्तौ ॥

२७—(त्वम्) (ओदनम्) सुखवर्षकमन्नरूपं परमात्मानम् (प्र) (आशी ३ः) म० २६ । भक्षितवानसि (ओदना ३ः) विचार्यमाणानाम् । पा० ८ । २ । ९७ । इति प्लुतः । सुखवर्षकोऽन्नतुल्यः परमेश्वरः (इति) वाक्यसमाप्तौ ॥

भाषार्थ—"(च) यदि (पराञ्चम्) दूरवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को (प्राशीः) तूने खाया है, (प्राणाः) श्वास के बल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥ २८ ॥

भवार्थ—मन्त्र २९ के साथ ॥ २८ ॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥ २९ ॥

प्रत्यञ्चम् । च । एनम् । प्र-आशीः । अपानाः । त्वा । हास्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ २९ ॥

भाषार्थ—"(च) यदि (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्षवर्ती (एनम्) इस [ओदन] को (प्राशीः) तूने खाया है। (अपानाः) प्रश्वासबल (त्वा) तुझे (हास्यन्ति) त्यागेंगे" (इति) ऐसा वह [आचार्य] (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) कहता है ॥ २९ ॥

भावार्थ—मन्त्र २६ का उत्तर है। आचार्य उपदेश करता है जो मनुष्य परमेश्वर को दूरवर्ती वा समीप वर्ती अर्थात् एक स्थानी मानता है, वह श्वास और प्रश्वास से हीन होकर निर्बल होजाता है ॥ २८, २९ ॥

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥ ३० ॥

न । एव । अहम् । ओदनम् । न । माम् । ओदनः ॥ ३० ॥

भाषार्थ—(न एव) न तो (अहम्) मैंने (ओदनम्) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप परमेश्वर] को [खाया है] और (न) न (माम्)

२८—(पराञ्चम्) म० २६। दूरे गच्छन्तम् (च) चेत् (एनम्) ओदनम् (प्राशीः) म० २६। प्रकर्षेण भक्षितवानसि (प्राणाः) श्वासबलानि (त्वा) (हास्यन्ति) ओहाक् त्यागे। त्यक्ष्यन्ति (इति) एवम् (एनम्) जिज्ञासुम् (आह) ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि लट्। ब्रवीति ॥

२९—(प्रत्यञ्चम्) म० २६। प्रत्यक्षवर्तिनम् (अपानाः) प्रश्वासबलानि। अन्यत् पूर्ववत् म० ॥ २८ ॥

३०—(न) निषेधे (एव) निश्चयेन (अहम्) प्राणी प्राशिषमिति शेषः म० २७ (ओदनम्) सुखवर्षकमन्नरूपं परमात्मानम् (न) निषेधे (माम्)

मुझको (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाले परमेश्वर] ने [खाया] है ॥३०॥

भावार्थ—यह मन्त्र मन्त्र २७ का उत्तर है। जीवात्मा और परमात्मा दोनों अनादि, अन्त रहित और अविनाशी हैं ॥ ३० ॥

ओदन एवौदनं प्राशीत् ॥ ३१ ॥ (८)

ओदनः । एव । ओदनम् । प्र । आशीत् ॥ ३१ ॥ (८)

भाषार्थ—(ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाले अन्नरूप परमेश्वर] ने (एव) हि (ओदनम्) ओदन [सुख वर्षक स्थूल जगत्] को (प्र आशीत्) खाया है ॥ ३१ ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपने सामर्थ से सृष्टि के समय स्थूल जगत को को उत्पन्न करता और प्रलय के समय सबको सूक्ष्म कारणमें लीन करदेता है। जीवात्मा के लिये स्थूल जगत् में स्थूल शरीर मुक्ति का साधन है ॥ ३१ ॥

सूक्तम् ३ ॥ (पर्यायः २)

३२—४६ ॥ ओदनो देवता ॥ ततश्चैनं० ३२, सर्वाङ्ग एव० ३२–४६ साम्नी त्रिष्टुप्; ज्येष्ठतस्ते ३२, तं वा अहं० ३२, ४६; ताभ्यामेनं० ३३, ३४, ४४–४८ आसुरी गायत्री; बृहस्पतिना ३२, समुद्रेण ४३, सवितुः ४७ दैवी जगती ; मुखतस्ते ३५, राजयक्ष्मः ३६, उदरदारः ४२, ऊरूते ४४ ब्रह्मचारी ४६, आसुर्युष्णिक् ; एष वा ओदनः ३२–४६, अप्रतिष्ठा नः ४६ भुरिक् साम्न्यनुष्टुप्; ततश्चैनम० ३३–३६, ३८–४६ आर्च्यनुष्टुप्; ततश्चैनम० ३७ आर्च्युष्णिक; बधिरो भवि० ३३, अन्धोभवि० ३४, जिह्वाते० ३६, दन्तास्ते० ३७, विद्युत् त्वा० ४०, कृष्या न ४१, अप्सुमरि० ४३, स्रामो भवि० ४५, सर्पस्त्वा० ४७, ब्राह्मणं० ४८ आसुरी पङ्क्तिः; द्यावापृथिवी० ३५, सूर्याचन्द्रम० ३४ याजुषी त्रिष्टुप्; ब्राह्मणं० ३५, सत्येनो० ४२, त्वष्टुर० ४५, अश्विनो० ४६, ऋतस्य० ४८, सत्ये० ४६ याजुषी गायत्री; अग्ने ३६, ऋतुभिः० ३७, दिवा ४०, पृथिव्यो० ४१ दैवी पंक्ति; सप्तऋषिभि० ३८, अन्त-

जीवात्मानम् (ओदनः) अन्नरूपःपरमेश्वरः प्राशीदिति शेषः म० ॥ २७ ॥

३१—(ओदनः) सुखवर्षकोऽन्नरूपः परमात्मा (एव) (ओदनम्) सुखवर्षकमन्नरूपं स्थूलं जगत् (प्राशीत्) भक्षितवान् ॥

रितेण० ३९ प्राजापत्या गायत्री; मित्रावरुणयोः० ४४ आसरी जगती; तेनैनं० ३२, ३५, तयैनं० ३६, ३७, ३८ तेनैनम्० ३९-४३, तयैनं० ४९ आसुर्यनुष्टुप् छन्दः ॥

ब्रह्मविद्योपदेशः-ब्रह्मविद्या का उपदेश ॥

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । बृहस्पतिना शीर्ष्णा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३२ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । शीर्ष्णा । प्र-आशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ ज्येष्ठतः । ते । प्र-जा । मरिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ बृहस्पतिना । शीर्ष्णा ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन, अन्न रूप परमेश्वर] को (ततः) उससे (अन्येन) भिन्न (शीर्ष्णा) शिर से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [शिर] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ

३२—(ततः) तस्माद् मस्तकात् (च) चेत् (एनम्) ओदनम् (अन्येन) भिन्नेन (शीर्ष्णा) शिरसा । शिरोविचारेण (प्राशीः०) म० २६ । भक्षितवानसि । अनुभूतवानसि (येन) शिरसा (च) एव (एतम्) ओदनम् (पूर्वे) पूर्वजाः (ऋषयः) वेदार्थज्ञातारः (प्राश्नन्) भक्षितवन्तः । अनुभूतवन्तः (ज्ये-

जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (ज्येष्ठतः) अति बड़े से लेकर (ते) तेरे (प्रजा) [राज्य की] प्रजा (मरिष्यति) मरेगी, (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया है]। (तेन) उसी [ऋषियों के समान] (बृहस्पतिना) बड़े ज्ञानों के रक्षक (शीर्ष्णा) शिर से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उसी से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः) यह (वै) ही (ओदनः) ओदन [सुख वर्षक अन्न समान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और सर्वतनूः) सब उपकारों वाला है। वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥ ३२ ॥

ष्ठतः) ज्येष्ठमारभ्य (ते) तव (प्रजा) राज्यजनता (मरिष्यति) मरणं प्राप्स्यति (इति) अनेन प्रकारेण (एनम्) जिज्ञासुम् (आह) ब्रवीति योगिजनः (तम्) ओदनम् (वै) निश्चयेन (अहम्) जिज्ञासुः (न) सम्प्रति-निरु० ७। ३१ (अर्वाञ्चम्) अवरे पश्चात् काले प्रलये वर्तमानम् (न) सम्प्रति (पराञ्चम) दूरे गतम् (न) सम्प्रति (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्षं प्राप्तम् (बृहस्पतिना) बृहतां ज्ञानानां रक्षकेण (शीर्ष्णा) शिरसा (तेन) (एनम्) ओदनम् (प्राशिषम्) भक्षितवानस्मि। अनुभूतवानस्मि (तेन) (एनम्) (अजीगमम्) गमेः स्वार्थण्यन्ताल्लुङि चङि रूपम्। अगमम्। प्राप्तवानस्मि (एषः) (वै) (ओदनः) सुखवर्षकोऽन्नरूपः परमेश्वरः (सर्वाङ्गः) अङ्ग पदे लक्षणे च—अच्। सर्वोपायुक्तः (सर्वपरुः) अर्तिपृवपियजितनि० । उ० २। ११७। पॄ पालनपूरणयोः उसि। सर्वपालनयुक्तः (सर्वतनूः) कृषिचमितनिधनि०। उ० १। ८०। तनु विस्तारे श्रद्धोपकरणयोश्च-ऊ। सर्वोपकारयुक्तः (सर्वाङ्गः) सर्वोपायः (एव) (सर्वपरुः) सर्वपालनः (सर्वतनूः) सर्वोपकारः (सम्) सम्यक् (भवति) (यः) पुरुषः (एवम्) (वेद) वेत्ति परमात्मनम् ॥ ३२ ॥

भावार्थ—आचार्य उपदेश करे-हे शिष्य तू वेदानुगामी ऋषियों के समान परमेश्वर में प्रीति कर, यदि उस से विरुद्ध चलेगा तो शरीर और आत्मा से गिरकर संसार का अपकार करेगा। तब शिष्य परमात्मा में पूर्ण भक्ति से प्रतिज्ञा करके आत्मिक, शरीरिक और सामाजिक बल बढ़ावे ॥ ३२ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। बधिरो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३३ ॥

ततः। च। एनम्। अन्याभ्याम्। श्रोत्राभ्याम्। प्र-आशीः। याभ्याम्। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन् ॥ बधिरः। भविष्यसि। इति। एनम्। आह ॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम् ॥ द्यावापृथिवी-भ्याम्। श्रोत्राभ्याम् ॥ ताभ्याम्। एनम्। प्र। आशिषम्। ताभ्याम्। एनम्। अजीगमम् ॥ एषः। वै। ओदनः। सर्व-अङ्गः। सर्व-परुः। सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः। एव। सर्व-परुः। सर्व-तनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [कानों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (श्रोत्राभ्याम्) दो कानों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से

३३—(ततः) ताभ्यां श्रोत्राभ्याम् (अन्याभ्याम्) भिन्नाभ्याम् (श्रोत्राभ्याम्) श्रवणाभ्याम् (बधिरः) इषिमदिमुदिखिदि०। उ० १। ५१। बन्ध

(च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। तू (बधिरः) बहिरा (भविष्यसि) हो जावेगा-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (ताभ्याम्) उन (द्यावापृथिवीभ्याम्) आकाश और पृथिवी रूप (श्रोत्राभ्याम्) दोनों कानों से [अर्थात् पदार्थ ज्ञान के श्रवण मनन से] (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यह ही······म० ३२ ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३३ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अन्धो भविष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम्। ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्व-परुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३४ ॥

ततः। च। एनम्। अन्याभ्याम्। अक्षीभ्याम्। प्र-आशीः। याभ्याम्। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन्॥ अन्धः। भविष्यसि। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न।

बन्धने-किरच्। श्रुतिशक्तिशून्यः (भविष्यसि) (द्यावापृथिवीभ्याम्) आकाशभूमिरूपाभ्याम्। अन्यत् पूर्ववत्-म० ३२ ॥

अ॒र्वाञ्च॑म् । न । परा॑ञ्चम् । न । प्र॒त्यञ्च॑म् ॥ सू॒र्या॒च॒न्द्र॒म॒साभ्या॑म् । अ॒क्षीभ्या॑म् ॥ ताभ्या॑म् । ए॒न॒म् । प्र । आ॒शि॒ष॒म् । ताभ्या॑म् । ए॒न॒म् । अ॒जी॒ग॒म॒म् ॥ ए॒षः । वै । ओ॒द॒नः । सर्व॑-अ॒ङ्गः । सर्व॑-परुः । सर्व॑-तनूः ॥ सर्व॑-अ॒ङ्गः । ए॒व । सर्व॑-परुः । सर्व॑-तनूः । सम् । भ॒व॒ति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [नेत्रों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (अक्षीभ्याम्) दो नेत्रों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। तू (अन्धः) अन्धा (भविष्यसि) हो जावेगा-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (ताभ्याम्) उन दोनों (सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा रूप [उन के समान नियम में चलकर] (अक्षीभ्याम्) दो नेत्रों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यह ही ...... म० ३२ । ३४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३४ ॥

३४—(ततः) ताभ्याम् (अक्षीभ्याम्) अ० २ । ३३ । १ । नेत्राभ्याम् (अन्धः) अन्ध दृष्टिनाशे—अच् । दृष्टिशक्तिरहितः (सूर्याचन्द्रमसाभ्याम्) अच् प्रत्यन्वपूर्वात्सामलोम्नः । पा० ५ । ४ । ७५ । अजिति योगविभागात्—अच् प्रत्ययः । सूर्यचन्द्ररूपाभ्याम् । अन्यत् पूर्ववत्—म० ३२ ॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ब्रह्मणा मुखेन । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३५ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । मुखेन । प्र-आशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ मुखतः । ते । प्र-जा । मरिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ ब्रह्मणा । मुखेन ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [मुख] से (अन्येन) भिन्न (मुखेन) मुख से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है ,(येन) जिस [मुख] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । (मुखतः) मुख के बल (ते) तेरे (प्रजा) [राज्य की] प्रजा (मरिष्यति) मरेगी – (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्)

३५—(ततः) तस्माद् मुखात् (मुखेन) (मुखतः) मुखबलात् (ते) तव (प्रजा) राज्यजनता (मरिष्यति) विनङ्क्ष्यति (ब्रह्मणा) वेदरूपेण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

दूर वर्तमान, और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है], (तेन) उस (ब्रह्मणा) वेद रूप (मुखेन) मुख से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उस [मुख] से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ३५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३५ ॥

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। अग्नेर्जिह्वया। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३६ ॥

ततः। च। एनम्। अन्यया। जिह्वया। प्र-आशीः। यया। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन् ॥ जिह्वा। ते। मरिष्यति। इति। एनम्। आह ॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम् ॥ अग्नेः। जिह्वया ॥ तया। एनम्। प्र। आशिषम्। तया। एनम्। अजीगमम् ॥ एषः। वै। ओदनः। सर्व-अङ्गः। सर्व-परुः। सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः। एव। सर्व-परुः। सर्व-तनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [जीभ] से (अन्यया) भिन्न (जिह्वया) जीभ

३६—(ततः) तस्या जिह्वायाः सकाशात् (जिह्वया) रसनया (जिह्वा) रसना (ते) तव (मरिष्यति) मृङ् प्राणत्यागे। प्राणांस्त्य क्ष्यति। असमर्था भवि-

से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (यया) जिस [जीभ] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों]ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। (ते) तेरी (जिह्वा) जीभ (मरिष्यति) मर जावेगी [असमर्थ हो जावेगी]—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले,(न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्त्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रयत्त वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (अग्नेः) अग्नि की [अग्नि समान लहराती हुयी] (तया) उस (जिह्वया) जीभ से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तया) उस [जीभ] से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ । ३६ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३६ ॥

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। ऋतुभिर्दन्तैः। तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३७ ॥

ततः। च। एनम्। अन्यैः। दन्तैः। प्र-आशीः। यैः। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन् ॥ दन्ताः। ते। शत्स्यन्ति। इति। एनम्। आह ॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम् ॥ ऋतु-भिः। दन्तैः। तैः। एनम्। प्र। आशिषम्। तैः। एनम्। अजीगमम् ॥

ष्यति (अग्नेः) पावकस्य। पावकवच् चञ्चलशिखया (जिह्वया), अन्यत् पूर्ववत् ॥

एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दांतों] से (अन्यैः) भिन्न (दन्तैः) दांतों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (यैः) जिन [दांतों] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जाननेवालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । (ते) तेरे (दन्ताः) दांत (शत्स्यन्ति) गिर पड़ेंगे—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]–(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (ऋतुभिः) ऋतुओं के तुल्य [आपस में मिले हुये] (तैः) उन (दन्तैः) दांतों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तैः) उन से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३७ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्राणापानाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । प्राणापानौ त्वा हास्यत इत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सप्तर्षिभिः प्राणापानैः । तैरेनं प्राशिषं

३७—(ततः) तेभ्यो दन्तेभ्यः (अन्यैः) भिन्नैः (दन्तैः) अ० ४ । ३ । ६ । दमु उपशमे-तन् । दशनैः (दन्ताः) दशनाः (शत्स्यन्ति) शद्लृ शातने= विशीर्णतायाम् । विशीर्णा भविष्यन्ति (ऋतुभिः) वसन्तादिभिः । ऋतुवत् पर- स्परसम्मिलितैः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

तैरेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ३८ ॥

ततः । च । एनम् । अन्यैः । प्राणापानैः । प्र-आशीः । यैः । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः। प्र-आश्नन् ॥ प्राणापानाः। त्वा । हास्यन्ति । इति । एनम् । आह ॥ तम्। वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सप्तर्षि-भिः । प्राणापानैः ॥ तैः । एनम् । प्र । आशिषम् । तैः । एनम् । अजीग-मम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः। सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३८ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [प्राण और अपानों] से (अन्यैः) भिन्न (प्राणापानैः) प्राण और अपानों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (यैः) जिनसे (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । (प्राणापानाः) प्राण और अपान (त्वा) तुझको (हास्यन्ति) छोड़ देंगे- (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]-(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (सप्तऋषिभिः) सात ऋषियों [त्वचा,

३८—(ततः) तेभ्यः प्राणापानेभ्यः (प्राणापानैः) श्वासप्रश्वासैः (प्राणापानाः) (हास्यन्ति) म० २८ । त्यक्ष्यन्ति (सप्तऋषिभिः) अ० ४ । ११ । ९ । सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तमी—निरु १२ । ३७ । त्वक्चक्षुः श्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धिरूपैः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, मन और बुद्धि] रूप (तैः) उन (प्राणापानैः) प्राण और अपानों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तैः) उन से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही .....म० ३२ ॥ ३८ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ३८ ॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अन्तरिक्षेण व्यचसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥३९

ततः । च । एनम् । अन्येन । व्यचसा । प्र-आशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ राज-यक्ष्मः । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ अन्तरिक्षेण । व्यचसा ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ३९ ॥

भावार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [व्यापकपन] से (अन्येन) भिन्न (व्यचसा) व्यापकपन से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिससे

३९—(ततः) तस्माद् व्यचसः (व्यचसा) अ० ४ । १९ । ६ । सम्बन्धेन व्यापकत्वेन (राजयक्ष्मः) अ० ३ । ११ । १ । यक्ष्माणां राजा । क्षयरोगः (हनिष्यति) मारयिष्यति (अन्तरिक्षेण) आकाशरूपेण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

(च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (राजयक्ष्मः) राजरोग [व्यापक क्षयरोग] (त्वा) तुझे (हनिष्यति) मारेगा- (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (अन्तरिक्षेण) आकाश रूप (तेन) उस (व्यचसा) व्यापकपन से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उससे (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है॥

(एषः वै) यही········म० ३२॥ ३९॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान॥ ३९॥

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। विद्युत् त्वा हनिष्यतीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। दिवा पृष्ठेन। तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद॥ ४०॥

ततः। च। एनम्। अन्येन। पृष्ठेन। प्र-आशीः। येन। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन्॥ वि-द्युत्। त्वा। हनिष्यति। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ दिवा। पृष्ठेन॥ तेन। एनम्। प्र। आशिषम्। तेन। एनम्। अजीगमम्॥ एषः। वै। ओदनः। सर्व-अङ्गः। सर्व-परुः। सर्व-तनूः॥ सर्व-अङ्गः। एव। सर्व-परुः। सर्व-तनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद॥ ४०॥

भावार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [पीठ से] (अन्येन) भिन्न (पृष्ठेन) पीठ से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [पीठ] से (च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । (तब) (विद्युत्) बिजुली (त्वा) तुझे (हनिष्यति) मारेगी—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (दिवा) आकाशरूप (तेन) उस (पृष्ठेन) पीठ से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उस से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ४० ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४० ॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । कुष्ठा न रात्स्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । पृथिव्योरसा । तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४१ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । उरसा । प्र-आशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ कुष्ठा । न । रात्स्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न ।

४०—(ततः) तस्मात् पृष्ठात् (पृष्ठेन) शरीरपश्चाद्भागेन (विद्युत्) विद्योतमाना तडित् (दिवा) आकाशरूपेण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ पृथिव्या । उरसा ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥४१॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [छाती] से (अन्येन) भिन्न (उरसा) छाती से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [छाती] से (च) ही (एनम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (कृष्या) खेती से (न रात्स्यसि) तू न बढ़ेगा-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]-(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (पृथिव्या) पृथिवी रूप [पृथिवी समान सहन शील] (तेन) उस (उरसा) छाती से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उससे (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ४१ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४१ ॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सत्येनोदरेण । तेनैनं प्राशिषं

४१—(ततः) तस्मादुरसः (उरसा) वक्षःस्थलेन (कृष्या) कर्षणविद्यया (न) निषेधे (रात्स्यसि) राध संसिद्धौ—लृट् । समृद्धो भविष्यसि (पृथिव्या) पृथिवीरूपेण सहनशीलेन । अन्यत् पूर्ववत् ॥

तेन नमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४२ ॥

ततः । च । एनम् । अन्येन । उदरेण । प्र-आशीः । येन । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ उदर-दारः । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सत्येन । उदरेण ॥ तेन । एनम् । प्र । आशिषम् । तेन । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [पेट] से (अन्येन) भिन्न (उदरेण) पेट से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [पेट] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था । [तब] (उदरदारः) उदर रोग [अतीसार आदि] (त्वा) तुझे (हनिष्यति) मारेगा-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूरवर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (सत्येन) सत्य [यथार्थ कथनरूप] (तेन) उस (उदरेण) पेट से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तेन) उस से (एनम्) इसको

४२—(ततः) तस्मादुदरात् (उदरेण) उद्+ऋ गतौ-अप् । जठरेण (उदरदारः) उदर+दॄ विदारणे-णिच्, अच् । उदरविदारकः । अतीसारादि-

(अजोगमम् मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ४२ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४२ ॥

ततश्चैनमन्येन॑ वस्तिना प्राशीर्येन॑ चै॒तं पूर्व॒ ऋष॑यः प्राश्न॑न्। अप॒सु म॑रिष्यसीत्ये॑नमाह। तं वा अ॒हं नार्वाञ्चं॒ न परा॑ञ्चं॒ न प्र॒त्यञ्च॑म्। समु॒द्रेण॑ वस्तिना॑। तेनै॑नं॒ प्राशि॑षं॒ तेनै॑नमजीगमम्। ए॒ष वा ओ॑द॒नः सर्वा॑ङ्गः सर्व॑परुः सर्व॑तनूः। सर्वा॑ङ्ग ए॒व सर्व॑परुः सर्व॑तनूः सं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ४३ ॥

ततः॑। च॒। ए॒नम्। अ॒न्येन॑। व॒स्तिना॑। प्र-आशीः॑। येन॑। च॒। ए॒तम्। पूर्वे॑। ऋष॑यः। प्र-आश्न॑न् ॥ अ॒प्-सु। म॒रि॒ष्य॒सि॒। इति॑। ए॒नम्। आ॒ह॒ ॥ तम्। वै। अ॒हम्। न। अ॒र्वाञ्च॑म्। न। परा॑ञ्चम्। न। प्र॒त्यञ्च॑म् ॥ स॒मु॒द्रेण॑। व॒स्तिना॑ ॥ तेन॑। ए॒नम्। प्र। आ॒शि॒ष॒म्। तेन॑। ए॒नम्। अ॒जी॒ग॒म॒म् ॥ ए॒षः। वै। ओ॒द॒नः। सर्व॑-अ॒ङ्गः। सर्व॑-परुः। सर्व॑-तनूः ॥ सर्व॑-अ॒ङ्गः। ए॒व। सर्व॑-परुः। सर्व॑-तनूः। सम्। भ॒व॒ति॒। यः। ए॒वम्। वेद॑ ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उस [वस्ति] से (अन्येन) भिन्न (वस्तिना) वस्ति [पेड़ू , नाभि से नीचे भाग] से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (येन) जिस [वस्ति] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव]

रोगः (हनिष्यति) मारयिष्यति (सत्येन) यथार्थकथनरूपेण। अन्यत् पूर्ववत् ॥

४३—(ततः) तस्माद् वस्तेः प्रकाशात् (वस्तिना) वसेस्तिः। उ० ४।

किया] था। [तब] (अप्सु) जलके भीतर (मरिष्यसि) तू मरेगा-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]-(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहनेवाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (समुद्रेण) समुद्ररूप (तेन) उस (वस्तिना) वस्ति [पेडू] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है। (तेन) उस से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही ......म० ३२ ॥ ४३ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४३ ॥

तत॑श्चैनम॒न्याभ्या॑मू॒रुभ्यां॒ प्राशी॒र्याभ्यां॑ चै॒तं पूर्व॒ ऋष॑यः॒ प्राश्न॑न् । ऊ॒रू ते॑ मरिष्यत॒ इत्ये॑नमाह । तं वा अ॒हं नार्वाञ्चं॒ न परा॑ञ्चं॒ न प्र॒त्यञ्च॑म् । मि॒त्रावरु॑णयोरू॒रुभ्या॑म् । ताभ्या॑मेनं॒ प्राशि॑षं॒ ताभ्या॑मेनमजीगमम् । ए॒ष वा ओ॑द॒नः सर्वा॑ङ्गः॒ सर्व॑परुः॒ सर्व॑तनूः । सर्वा॑ङ्ग ए॒व सर्व॑परुः॒ सर्व॑तनूः॒ सं भ॑वति॒ य ए॒वं वेद॑ ४४

तत॑ः । च॒ । ए॒नम् । अ॒न्याभ्या॑म् । ऊ॒रु-भ्या॑म् । प्र॒-आशी॑ः । याभ्या॑म् । च॒ । ए॒तम् । पूर्वे॑ । ऋष॑यः । प्र॒-आश्न॑न् ॥ ऊ॒रू इति॑ । ते॒ । म॒रि॒ष्य॒तः॒ । इति॑ । ए॒न॒म् । आ॒ह॒ ॥ तम् । वै । अ॒हम् । न । अ॒र्वाञ्च॑म् । न । परा॑ञ्चम् । न । प्र॒त्यञ्च॑म् ॥ मि॒त्रावरु॑णयोः । ऊ॒रु-भ्या॑म् ॥ ताभ्या॑म् । ए॒न॒म् । प्र । आ॒शि॒षम् । ताभ्या॑म् । ए॒न॒म् । अ॒जी॒ग॒म॒म् ॥ ए॒षः । वै । ओ॒द॒नः ।

१८० । वस आच्छादने-ति । नाभेरधोभागेन । मूत्राधारेण (अप्सु) जलेषु (मरिष्यसि) प्राणांस्त्यदयसि (समुद्रेण) जलधिरूपेण । अन्यत् पूर्ववत् ॥

सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ४४ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो जांघों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (ऊरुभ्याम्) दो जंघाओं से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है । [तव] (ते) तेरे (ऊरू) दोनों जंघायें (मरिष्यतः) मरेंगी-(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]-(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (मित्रावरुणयोः) दोनों प्रेरणा करने वाले, और श्रेष्ठ गुण वाले [आचार्य और शिष्य] के (ताभ्याम्) उन (ऊरुभ्याम्) दोनों जंघाओं से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उनदोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैंने पाया है॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥ ४४ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४४ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । खामो भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः

४४—(ततः) ताभ्यामूरुभ्याम् (ऊरुभ्याम्) जङ्घाभ्याम् (ऊरू) जानूपरिभागौ (मरिष्यतः) त्यक्तप्राणौ भविष्यतः (मित्रावरुणयोः) अ० १ । ३ । २, ३ । डु मिञ् प्रक्षेपणे-क्त । मित्रः प्रेरकः । वृञ् वरणे-उनन् । वरुणो वरो वरणीयः । प्रेरकश्रेष्ठगुणयोः । आचार्यशिष्ययोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥४५॥

ततः। च। एनम्। अन्याभ्याम्। अष्ठीवत्-भ्याम्। प्र-आशीः। याभ्याम्। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन्॥ स्रामः। भविष्यसि। इति। एनम्। आह॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम्॥ त्वष्टुः। अष्ठीवत्-भ्याम्॥ ताभ्याम्। एनम्। प्र। आशिषम्। ताभ्याम् एनम्। अजीगमम्॥ एषः। वै। ओदनः। सर्व-अङ्गः। सर्व-परुः। सर्वतनूः॥ सर्व-अङ्गः। एव। सर्व-परुः। सर्व-तनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद॥ ४५॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों घुटनों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (अष्ठीवद्भ्याम्) दोनों घुटनों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों [घुटनों] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] था। [तब] (स्रामः) फोड़े का रोगी (भविष्यसि) तू होगा- (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (त्वष्टुः) विश्वकर्मा [सब कामों में चतुर मनुष्य] के (ताभ्याम्) उन दोनों (अष्ठीवद्भ्याम्) घुटनों से (एनम्) इस

४५—(ततः) ताभ्यां जानुभ्याम् (अष्ठीवद्भ्याम्) अ० २। ३३। ५। जानुभ्याम् (स्रामः) इषियुधीन्धिदसिश्या०। उ० १। १४५। स्रै, श्रै पाके-मक्। आदेच उपदेशेऽशिति। पा० ६। १। ४५। ऐकारस्य आकारः। ततोऽर्श— आद्यच्। स्रामेण पाकेन व्रणादिना युक्तः (त्वष्टुः) अ० २। ५। ६। विश्वकर्मणः सर्वकर्मसु प्रवीणस्य मनुष्यस्य। अन्यत् पूर्ववत्॥

[परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही······म० ३२ ॥ ४५ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४५ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । अश्विनोः पादाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४६ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । पादाभ्याम् । प्र-आशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ बहु-चारी । भविष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ अश्विनोः । पादाभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ४६ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दो पैरों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से (प्राशीः) तूने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषि-

४६—(ततः) ताभ्यां पदाभ्याम् (पादाभ्याम्) (बहुचारी) बहु+चर गतौ-णिनि । बहुभ्रमणशीलः (भविष्यसि) (अश्विनोः) अ० २ । २९ । ६ ।
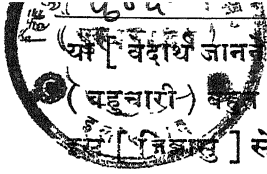
यों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है । [तब] (ब्रह्मचारी) बहुत घूमने वाला (भविष्यति) तू होगा—(इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर)-(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (अश्विनोः) दोनों चतुर माता पिता के (ताभ्याम्) उन (पादाभ्याम्) दोनों पैरों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

(एषः वै) यही म० ३२ । ४६ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४६ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । सवितुः प्रपदाभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४७ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । प्र-पदाभ्याम् । प्र-आशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ सर्पः । त्वा । हनिष्यति । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ सवितुः । प्र-पदाभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशि-

---

अशू व्याप्तौ—क्वन्, इनि । कार्येषु अश्वो व्याप्तिर्ययोस्तयोः । जननी जनकयोः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

षम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद । ॥ ४७ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों पैर के पञ्जों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पञ्जों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है । [तब] (सर्पः) सर्प (त्वा) तुझको (हनिष्यति) मारेगा— (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]–(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्च) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (सवितुः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (ताभ्याम्) उन (प्रपदाभ्याम्) दोनों पैरों के पंजों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैंने खाया [अनुभव किया] है, (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इसको (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः वै) यही......मं० ३२ ॥ ४७ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४७ ॥

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् । ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह । तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् । ऋतस्य हस्ताभ्याम् । ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् । एष वा ओदनः सर्वाङ्गःसर्व-

४७—(ततः) ताभ्याम् (प्रपदाभ्याम्) पादाग्राभ्याम् (सर्पः) उरगः (हनिष्यति) मारयिष्यति (सवितुः) षु प्रसवैश्वर्ययोः—तृच् । ऐश्वर्यवतः पुरुषस्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

परुः सर्वतनूः । सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४८ ॥

ततः । च । एनम् । अन्याभ्याम् । हस्ताभ्याम् । प्र-आशीः । याभ्याम् । च । एतम् । पूर्वे । ऋषयः । प्र-आश्नन् ॥ ब्राह्मणम् । हनिष्यसि । इति । एनम् । आह ॥ तम् । वै । अहम् । न । अर्वाञ्चम् । न । पराञ्चम् । न । प्रत्यञ्चम् ॥ ऋतस्य । हस्ताभ्याम् ॥ ताभ्याम् । एनम् । प्र । आशिषम् । ताभ्याम् । एनम् । अजीगमम् ॥ एषः । वै । ओदनः । सर्व-अङ्गः । सर्व-परुः । सर्वतनूः ॥ सर्व-अङ्गः । एव । सर्व-परुः । सर्व-तनूः । सम् । भवति । यः । एवम् । वेद ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम परमेश्वर] को (ततः) उन [दोनों हाथों] से (अन्याभ्याम्) भिन्न (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (याभ्याम्) जिन दोनों से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने (प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तब] (ब्राह्मणम्) ब्राह्मण [वेद ज्ञाता पुरुष] को (हनिष्यसि) तू मारेगा- (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैंने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है]। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (ताभ्याम्) उन (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है (ताभ्याम्) उन दोनों से (एनम्) इस को (अजीगमम्) मैं ने पाया है ॥

४८—(ततः) ताभ्याम् (हस्ताभ्याम्) कराभ्याम् (ब्राह्मणम्) अ० २। ६। ३। वेदविदम् (हनिष्यसि) (ऋतस्य) सत्यज्ञानस्य। अन्यत् पूर्ववत् ॥

(एषः वै) यही......म० ३२ ॥ ४८ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४८ ॥

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन्। अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह। तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम्। सत्ये प्रतिष्ठाय। तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम्। एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः। सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥ ४९ ॥ (६)

ततः। च। एनम्। अन्यया। प्रति-स्थया। प्र-आशीः। यया। च। एतम्। पूर्वे। ऋषयः। प्र-आश्नन् ॥ अप्रति-स्थानः। अनायतनः। मरिष्यसि। इति। एनम्। आह ॥ तम्। वै। अहम्। न। अर्वाञ्चम्। न। पराञ्चम्। न। प्रत्यञ्चम् ॥ सत्ये। प्रति-स्थाय ॥ तया। एनम्। प्र। आशिषम्। तया। एनम्। अजीगमम्। एषः। वै। ओदनः। सर्व-अङ्गः। सर्व-परुः। सर्व-तनूः ॥ सर्व-अङ्गः। एव। सर्व-परुः। सर्व-तनूः। सम्। भवति। यः। एवम्। वेद ॥४९॥

भाषार्थ-[हे जिज्ञासु !] (च) यदि (एनम्) इस [ओदन नाम] परमेश्वर को (ततः) उस [प्रतिष्ठा] से (अन्यया) भिन्न (प्रतिष्ठया) प्रतिष्ठा [कीर्ति] से (प्राशीः) तू ने खाया [अनुभव किया] है, (यया) जिस [प्रतिष्ठा] से (च) ही (एतम्) इस [परमेश्वर] को (पूर्वे) पहिले (ऋषयः) ऋषियों [वेदार्थ जानने वालों] ने(प्राश्नन्) खाया [अनुभव किया] है। [तव] (अप्रतिष्ठानः)

४९—(ततः) तया (प्रतिष्ठया) कीर्त्या। गौरवेण (अप्रतिष्ठानः) कीर्तिरहितः (अनायतनः) यती प्रयत्ने-आधारे ल्युट्। गृहरहितः (मरिष्यसि)

कीर्ति रहित और (अनायतनः) और बिना घर होकर (मरिष्यसि) तू मरेगा- (इति) ऐसा (एनम्) इस [जिज्ञासु] से (आह) वह [आचार्य] कहे ॥

[जिज्ञासु का उत्तर]—(अहम्) मैं ने (वै) निश्चय करके (न) अब (तम्) उस (अर्वाञ्चम्) पीछे वर्तमान रहने वाले, (न) अब (पराञ्चम्) दूर वर्तमान और (न) अब (प्रत्यञ्चम्) प्रत्यक्ष वर्तमान [परमेश्वर] को [खाया अर्थात् अनुभव किया है] । (सत्ये) सत्य [सत्य स्वरूप परमात्मा] में (प्रतिष्ठाय) प्रतिष्ठा [आदर] पाकर (तया) उसी [ऋषियों के समान प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस [परमेश्वर] को (प्र आशिषम्) मैं ने खाया [अनुभव किया] है, (तया) उसी [प्रतिष्ठा] से (एनम्) इस परमेश्वर को (अजीगमम्) मैंने पाया है ॥

(एषः) यह (वै) ही (ओदनः) ओदन [सुख वर्षक अन्न समान परमेश्वर] (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला है । वह [मनुष्य] (एव) ही (सर्वाङ्गः) सब उपायों वाला, (सर्वपरुः) सब पालनों वाला और (सर्वतनूः) सब उपकारों वाला (सम् भवति) हो जाता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥ ४६ ॥

भावार्थ—मन्त्र ३२ के समान ॥ ४६ ॥

सूक्तम् ३ (पर्यायः ३ ॥)

५०—५६ ॥ ओदनो देवता ॥ ५० आसुर्यनुष्टुप्; ५१ आर्च्युष्णिक्; ५२ भुरिक् साम्नी त्रिष्टुप्; ५३ आसुरी बृहती; ५४ भुरिक् साम्नी बृहती; ५५ साम्न्युष्णिक्; ५६ प्राजापत्या बृहती छन्दः ॥

ब्रह्मज्ञानेन मोक्षोपदेशः—ब्रह्मज्ञान से मोक्ष का उपदेश ॥

ए॒तद्वै ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपं॒ यदो॑द॒नः ॥ ५० ॥

ए॒तत् । वै । ब्र॒ध्नस्य॑ । वि॒ष्टप॑म् । यत् । ओ॒द॒नः ॥ ५० ॥

भाषार्थ—(एतत्) यह (वै) ही (ब्रध्नस्य) महान् [पृथिवी आदि

(सत्ये) अविनाशिस्वरूपे परमात्मनि (प्रतिष्ठाय) प्रतिष्ठितः सगौरवो भूत्वा । अन्यत् पूर्ववत् ॥

५०—(एतत्) सर्वत्र दृश्यमानम् (वै) एव (ब्रध्नस्य) अ० ७ । २२ । २ ।

के आकर्षक सूर्य] का (विष्टपम्) आश्रय (यत्) यजनीय [पूजनीय ब्रह्म], (ओदनः) ओदन [सुख बरसाने वाला अन्नरूप परमेश्वर] है ॥ ५० ॥

भावार्थ—परमात्मा के ही आश्रय अर्थात् धारण आकर्षण सामर्थ्य से सूर्य आदि लोक स्थित हैं ॥ ५० ॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥ ५१

ब्रध्न-लोकः । भवति । ब्रध्नस्य । विष्टपि । श्रयते । यः । एवम् । वेद ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—वह [मनुष्य] (ब्रध्नलोकः) महान् [सब के नियामक परमेश्वर] में निवास वाला (भवति) होता है और [उसी] (ब्रध्नस्य) महान् [सर्व नियामक परमेश्वर] के (विष्टपि) सहारे में (श्रयते) आश्रय लेता है, (यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसा (वेद) जानता है ॥ ५१ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी पुरुष परमात्मा का आश्रय लेता है, वह पुरुषार्थी आनन्द पाता है ॥ ५१ ॥

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥ ५२ ॥

एतस्मात् । वै । ओदनात् । त्रयः-त्रिंशतम् । लोकान् । निः । अमिमीत । प्रजा-पतिः ॥ ५२ ॥

बन्ध बन्धने-नक् ब्रधादेशश्च। ब्रध्नो महन्नाम्-निघ० । ३ । ३ । महतो बन्धकस्य पृथिव्यादिलोकानामाकर्षकस्य सूर्यस्य (विष्टपम्) अ० १० । १० । ३१ । वि+ष्टभि प्रतिबन्धे-क्विप्, भस्य पः । यद्वा, विश प्रवेशने-कप तुडागमश्च । आश्रयः (यत्) त्यजितनियजिभ्यो डित् । उ० १ । १३२ । यजेः—अदि, डित् । यजनीयं पूजनीयं ब्रह्म (ओदनः) अ० ६ । ५ । १६ । सुखवर्षकोऽन्नरूपः परमेश्वरः ॥

५१—(ब्रध्नलोकः) ब्रध्ने सर्वनियामके परमेश्वरे लोको निवासो यस्य सः (भवति) (ब्रध्नस्य) म० ५० । महतः सर्वनियामकस्य परमेश्वरस्य (विष्टपि) म० ५० । आश्रये (श्रयते) तिष्ठति (यः) मनुष्यः (एवम्) उक्तप्रकारेण (वेद) जानाति परमात्मानम् ॥

भाषार्थ—(एतस्मात्) इस (वै) ही (ओदनात्) [अपने] ओदन [सुख बरसाने वाले अन्न रूप सामर्थ्य] से (त्रयस्त्रिंशतम्) तेतीस (लोकान्) लोकों [दर्शनीय देवताओं] को (प्रजापतिः) प्रजापति [सृष्टिपालक परमेश्वर] ने (निः अमिमीत) निर्माण किया है ॥ ५२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने अपने सर्वपोषक सामर्थ्य से जगदुपकारक तेतीस देवताओं को रचा है। वे तेतीस देवता ये हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ महीने, १ बिजुली, १ यज्ञ—देखो अथर्व० ६। १३९। १॥ ५२॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥

तेषाम् । प्र-ज्ञानाय । यज्ञम् । असृजत ॥ ५३ ॥

भाषार्थ—उस [परमेश्वर] ने (तेषाम्) उन [तेतीस देवताओं के सामर्थ्य] के (प्रज्ञानाय) प्रकृष्ट ज्ञान के लिये (यज्ञम्) यज्ञ [परस्पर संगत संसार] को (असृजत) सृजा ॥ ५३ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने उन वसु आदि देवताओं से यह संसार इसलिये रचा है कि मनुष्य परमात्मा के संगठन सामर्थ्य को जानकर परस्पर बल बढ़ावें ॥ ५३ ॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥ ५४ ॥

सः । यः । एवम् । विदुषः । उप-द्रष्टा । भवति । प्राणम् । रुणद्धि ॥ ५४

भाषार्थ—(यः) जो [मनुष्य] (एवम्) ऐसे [बड़े] (विदुषः) विद्वान् [सर्वज्ञ परमेश्वर] का (उपद्रष्टा) उपद्रष्टा [सूक्ष्मदर्शी वा साक्षात् कर्ता]

५२—(एतस्मात्) (वै) एव (ओदनात्) स्वस्मात् सुखवर्षकात् सामर्थ्यात् (त्रयस्त्रिंशतम्) वसुरुद्रादीन्—अ० ६ । १३९ । १ (लोकान्) दर्शनीयान् देवान् (निरमिमीत्) अ० ५ । १२ । ११ । निर्मितवान् (प्रजापतिः) सृष्टिपालकः परमेश्वरः ॥

५३—(तेषाम्) त्रयस्त्रिंशतो लोकानाम् (प्रज्ञानाय) प्रकृष्टबोधाय (यज्ञम्) परस्परसंगतसंसारम् (असृजत) सृष्टवान् ॥

५४—(सः) पुरुषः (यः) (एवम्) अनेन प्रकारेण (विदुषः) जानतः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य (उपद्रष्टा) उपेत्य दर्शकः सूक्ष्मदर्शी । साक्षात्कर्ता

(भवति) होता है, (सः) वह (प्राणम्) [अपने] प्राण [जीवन] को (रुणद्धि) रोकता है ॥ ५४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव को सूक्ष्म बुद्धि से साक्षात् करता है, वह जितेन्द्रिय होकर अपना जीवन और यश बढ़ाता है ॥५४॥

न च॑ प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥ ५५ ॥

न । च । प्राणम् । रुणद्धि । सर्व-ज्यानिम् । जीयते ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—(च) यदि वह (प्राणम्) [अपने] प्राण को (न) नहीं (रुणद्धि) रोकता है, वह (सर्वज्यानिम्) सब हानि से (जीयते) निर्बल हो जाता है ॥ ५५ ॥

भावार्थ-जो मनुष्य परमेश्वर के सामर्थ्य को देखते हुये भी जितेन्द्रिय नहीं होता, वह मनुष्यपन से गिरकर बलहीन होजाता है ॥ ५५ ॥

न च॑ सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥५६॥(१०)

न । च । सर्व-ज्यानिम् । जीयते । पुरा । एनम् । जरसः । प्राणः । जहाति ॥ ५६ ॥ (१०)

भाषार्थ—वह (सर्वज्यानिम्) सब हानि से (च) ही (न) नहीं (जीयते) हीन होता है, [किन्तु] (एनम्) इस [मनुष्य] को (जरसः) जरा [स्तुति वा बुढ़ापा पाने] से (पुरा) पहिले (प्राणः) [जीवन व्यापार] (जहाति) छोड़ देता है ॥ ५६ ॥

(भवति) (प्राणम्) जीवनम् (रुणद्धि) आवृणोति । वर्धयतीत्यर्थः ॥

५५—(न) निषेधे (च) यदि) (प्राणम्) श्वासप्रश्वासव्यापारम् (रुणद्धि) वशं करोति (सर्वज्यानिम्) ज्या वयोहानौ—क्तिन्, सुपां सुपो भवन्ति । वा०पा० ७ । १ । ३६ । तृतीयास्थाने द्वितीया । सर्वज्यान्या । सर्वहान्या (जीयते) ज्या वयोहानौ कर्मणि-लट् । हीयते ॥

५६—(न) निषेधे (च) अवधारणे (सर्वज्यानिम्) म० ५५ । सर्वहान्या (जीयते) हीयते (पुरा) पुरस्तात् (एनम्) पुरुषम् (जरसः) अ० १ । ३० । २ । जॄ स्तुतौ, यद्वा जॄष् वयोहानौ-असुन् । जरायाः स्तुतेर्वयोहानेर्वा सकाशात् (प्राणः) श्वासप्रश्वासव्यापारः (जहाति) त्यजति ॥

भावार्थ—परमेश्वर का विरोधी मनुष्य निर्बल, अपकीर्ति वाला, अल्प-जीवी और दुर्बलेन्द्रिय होता है ॥ ५६ ॥

सूक्तम् ४ ॥

१—२६ ॥ प्राणो देवता ॥ १ शङ्कुमती; २—७, १०-१३, १६—१६, २३, २५ अनुष्टुप्; ८ पथ्या पङ्क्तिः; ६, १४, २४ निचृदनुष्टुप्; १५, २६ भुरिगनुष्टुप्; २० निचृत् त्रिष्टुप्; २१ मध्ये ज्योतिर्जगती; २२ त्रिष्टुप् ॥

प्राणमहिमोपदेशः—प्राण की महिमा का उपदेश ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥

प्राणाय । नमः । यस्य । सर्वम् । इदम् । वशे ॥ यः । भूतः । सर्वस्य । ईश्वरः । यस्मिन् । सर्वम् । प्रति-स्थितम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(प्राणाय) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर) को (नमः) नमस्कार है, (यस्य) जिसके (वशे) वश में (सर्वम्) सब (इदम्) यह [जगत्] है। (भूतः) सदा वर्तमान (यः) जो (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) ईश्वर है और (यस्मिन्) जिसके भीतर (सर्वम्) सब (प्रतिष्ठितम्) अटल ठहरा है ॥ १ ॥

भावार्थ—सर्वपोषक, सर्वशक्तिमान् प्राण नाम जगदीश्वर की उपासना करके मनुष्य अपने प्राणों के बल को सदा बढ़ाते रहें ॥ १ ॥

परमेश्वर का प्राण नाम है देखो प्रश्नोपनिषद् खण्ड २ श्लोक ६ ॥

१—(प्राणाय) प्र + अन प्राणने-घञ् । प्राणित्यनेनेति प्राणस्तस्मै जीवन-दात्रे परमेश्वराय (नमः) सत्कारः (यस्य) (सर्वम्) समस्तम् (इदम्) दृश्यमानं जगत् (वशे) प्रभुत्वे (यः) (भूतः) सर्वदा लब्धसत्ताकः (सर्वस्य) (ईश्वरः) अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च । उ० ५ । ५७ । अशू व्याप्तौ—वरट्, उपधाया ईत्वम् । शीघ्रकारी । यद्वा, स्थेशभासपिसकसो वरच् । पा० ३ । २ । १७५ । ईश ऐश्वर्ये—वरच् । ईशिता स्वामी (यस्मिन्) (सर्वम्) (प्रतिष्ठितम्) दृढं स्थितम् ॥

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ १ ॥

अरों के समान रथ की नाभि में, प्राण के बीच सब जड़ा हुआ है—ऋचायें [स्तुति विद्यायें], यजुर्मन्त्र [ईश्वर पूजा के मन्त्र] और साम मन्त्र [मोक्ष विद्यायें—अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञान], यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] राज्य और धन ॥

और देखो मनु अध्याय १२ श्लोक १२३ ।

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥ १ ॥

इस [परमेश्वर] को कोई अग्नि, कोई मनु और प्रजापति, कोई इन्द्र, कोई प्राण और कोई नित्य ब्रह्म कहते हैं॥ १ ॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥

नमः । ते । प्राण । क्रन्दाय । नमः । ते । स्तनयित्नवे ॥
नमः । ते । प्राण । वि-द्युते । नमः । ते । प्राण । वर्षते ॥२॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (क्रन्दाय) दहाड़ने के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (स्तनयित्नवे) बादल की गर्जन के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है। (प्राण) हे प्राण! [परमेश्वर](विद्युते) बिजुली के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (प्राण)हे प्राण ! [परमेश्वर] (वर्षते) वर्षा के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार है॥ २ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की दया को विचारकर ऐसा प्रयत्न करें कि वर्षा सम्बन्धी सब क्रियायें सर्वथा उपकारी होवें ॥ २ ॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व०का० १ सू० १३ म० १ से करो ॥

२—(नमः) (ते) तुभ्यम् (प्राण) म० १। हे जीवनप्रद (क्रन्दाय) क्रदि आह्वाने रोदने च-पचाद्यच् । ध्वनिहिताय (स्तनयित्नवे) अ० १ । १३ । १। मेघगर्जनहिताय (विद्युते) अ० १ । १३ । १ । विद्युद्धिताय (वर्षते) वृष्टिहिताय । अन्यत् पूर्ववत् ॥

यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः । प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥ ३ ॥

यत् । प्राणः । स्तनयित्नुना । अभि-क्रन्दति । ओषधीः ॥ प्र । वीयन्ते । गर्भान् । दधते । अथो इति । बह्वीः । वि । जायन्ते ३

भाषार्थ—(यत्) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (स्तनयित्नुना] बादल की गर्जन द्वारा (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है । [तब] वे (प्र) अच्छे प्रकार (वीयन्ते) गर्भवती होती हैं और (गर्भान्) गर्भों को (दधते) पुष्ट करती हैं; (अथो) फिर ही (बह्वीः) बहुत सी होकर (वि जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के सामर्थ्य से सूर्य द्वारा मेघ से वर्षा और गर्जन होकर ग्रामों और बनों में अनेक ओषधें उगती हैं ॥ ३ ॥

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत् किं च भूम्यामधि ॥ ४ ॥

यत् । प्राणः । ऋतौ । आ-गते । अभि-क्रन्दति । ओषधीः ॥ सर्वम् । तदा । प्र । मोदते । यत् । किम् । च । भूम्याम् । अधि ४

भाषार्थ—(यत्) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ऋतौ-आगते) ऋतु काल आने पर (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदि] को (अभिक्रन्दति) बल से पुकारता है । (तदा) तब (सर्वम्) सब [जगत्]

३—(यत्) यदा (प्राणः) म० १ । जीवनदाता परमेश्वरः (स्तनयित्नुना) मेघध्वनिना (अभिक्रन्दति) सर्वत आह्वयति (ओषधीः) व्रीहियवाद्या वीरुधः (प्र) प्रकर्षेण (वीयन्ते) वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु । गर्भं गृह्णन्ति (गर्भान्) उदरस्थपदार्थान् (दधते) पोषयन्ति (अथो) अनन्तरमेव (बह्वीः) बह्व्यो बहुप्रकाराः (वि जायन्ते) विविधमुत्पद्यन्ते ॥

४—(यत्) यदा (प्राणः) म० १ (ऋतौ) ऋतुकाले वर्षतौ (आगते) प्राप्ते (अभिक्रन्दति) (ओषधीः) म० ३ (सर्वम्) चराचरं जगत् (तदा)

(प्र मोदते) बड़ा आनन्द मानता है, (यत् किम् च) जो कुछ भी (भूम्याम् अधि) पर है ॥ ४ ॥

भावार्थ—उचित समय पर वर्षा होने से सब चर और अचर जगत् बल प्राप्त करके प्रसन्न होता है ॥ ४ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥ ५ ॥

यदा । प्राणः । अभि-अवर्षीत् । वर्षेण । पृथिवीम् । महीम् ॥
पशवः । तत् । प्र । मोदन्ते । महः । वै । नः । भविष्यति ।५

भाषार्थ—(यदा) जब (प्राणः) [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया । (तत्) तब (पशवः) जीव जन्तु (प्र मोदन्ते) बड़ा हर्ष मनाते हैं- "(नः) हमारी (महः) बढ़ती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी" ॥ ५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की शक्ति से वृष्टि होने पर सब प्राणी बलवृद्धि कर के उत्सव मनाते हैं ॥ ५ ॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥ ६ ॥

अभि-वृष्टाः । ओषधयः । प्राणेन । सम् । अवादिरन् ॥ आयुः । वै । नः । प्र । अतीतरः । सर्वाः । नः । सुरभीः । अकः ॥६॥

भाषार्थ—(अभिवृष्टाः) सींची हुई (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि]

(प्र मोदते) अत्यतं हृष्यति (यत्) (किम् च) किमपि (भूम्याम्) (अधि) उपरि ॥

५—(यदा) यस्मिन् काले (प्राणः) म० १ । जीवनदाता परमेश्वरः (अभ्यवर्षीत्) अभिषिक्तवान् (पृथिवीम्) भूमिम् । (महीम्) विशालाम् (पशवः) सर्वे जीवजन्तवः (तत्) तदा (प्रमादन्ते) (प्रहृष्यन्ति (महः) वर्धनम् (वै) खलु (नः) अस्माकम् (भविष्यति) ॥

६—(अभिवृष्टाः) अभिषिक्ताः (ओषधयः) अन्नादि पदार्थाः (प्राणेन)

(प्राणेन) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] से (सम्) मिलकर (अवादिरन्) बोलीं–"(नः) हमारी (आयुः) आयु को (वै) निश्चय करके (प्र अतीतरः) तू ने बढ़ाया है, (नः सर्वाः) हम सबको (सुरभीः) सुगन्धित (अकः) तू ने बनाया है" ॥ ६ ॥

भावार्थ—वृष्टि से सब अन्न वृक्ष आदि पदार्थ उत्पन्न और पुष्ट होकर संसार का उपकार करते हुये परमेश्वर को धन्यवाद देते हैं ॥ ६ ॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥ ७ ॥

नमः । ते । अस्तु । आ-यते । नमः । अस्तु । परा-यते ॥ नमः । ते । प्राण । तिष्ठते । आसीनाय । उत । ते । नमः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(आयते) आते हुये [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, (परायते) जाते हुये के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो। (प्राण) हे प्राण! [जीवनदाता परमेश्वर] (तिष्ठते) खड़े होते हुये के हित के लिये (नमः) नमस्कार, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुये के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपनी चेष्टाओं से उपकार लेता हुआ परमेश्वर का धन्यवाद करे ॥ ७ ॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते । पराचीनाय ते

म० १। जीवनप्रदेन परमेश्वरेण (सम्) मिलित्वा (अवादिरन्) भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः। पा० १। ३। ४७। आत्मनेपदम्। भाषणं कृतवत्यः (आयुः) जीवनम् (वै) अवश्यम् (नः) अस्माकम् (प्रातीतरः) त्वं वर्धितवानसि (सर्वाः) (नः) अस्मान् (सुरभीः) सु+रभ-राभस्येइन्। सुगन्धयुक्ताः (अकः) कृतवानसि ॥

७—(नमः) नमस्कारः (ते) तुभ्यम् (अस्तु) भवतु (आयते) आगच्छते पुरुषाय (परायते) बहिर्गच्छते (प्राण) हे जीवनप्रद परमेश्वर (तिष्ठते) स्थितिं कुर्वते (आसीनाय) उपविष्टपुरुषहिताय (उत) अपिच। अन्यद् गतम् ॥

नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥ ८ ॥

नमः । ते । प्राण । प्राणते । नमः । अस्तु । अपानते ॥ पराचीनाय । ते । नमः । प्रतीचीनाय । ते । नमः । सर्वस्मै । ते । इदम् । नमः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] (प्राणते) श्वास लेते हुये [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (अपानते) प्रश्वास लेते हुये के हित के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (पराचीनाय) बाहिर जाते हुये [पुरुष] के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार,(प्रतीचीनाय) सन्मुख जाते हुये के हित के लिये (ते) तुझे (नमः) नमस्कार, (सर्वस्मै) सब के हितके लिये (ते) तुझ (इदम्) यह (नमः) नमस्कार हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रत्येक श्वास प्रश्वास आदि चेष्टा करते हुये संसार का हित करके परमेश्वर को धन्यवाद देवे ॥ ८ ॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥ ९ ॥

या । ते । प्राण । प्रिया । तनूः । यो इति । ते । प्राण । प्रेयसी ॥ अथो इति । यत् । भेषजम् । तव । तस्य । नः । धेहि । जीवसे ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (ते) तेरी

८—(नमः) (ते) तुभ्यम् (प्राण) म०१ । हे परमेश्वर (प्राणते) श्वसते पुरुषाय (अपानते) प्रश्वासं कुर्वते (पराचीनाय) विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम् । पा०५ । ४ । ८ । इति स्वार्थिकः खः । पराञ्चनाय । बहिर्गच्छते पुरुषाय (प्रतीचीनाय) प्रतिमुखं सम्मुखं गच्छते पुरुषाय (सर्वस्मै) सर्वहिताय (इदम्) क्रियमाणम् (नमः) नमस्कारः । अन्यद् गतम् ॥

९—(या) (ते) तव (प्राण) (प्रिया) प्रीतिकरी (तनूः) तन उपकारे-

(या) जो (प्रिया) प्रीति करने वाली (यो) और जो, (प्राण) हे प्राण ! (ते) तेरी (प्रेयसी) अधिक प्रीति करने वाली (तनूः) उपकार क्रिया है। (अथो) और भी (यत्) जो (तव) तेरा (भेषजम्) भय निवारक कर्म है, (तस्य) उसका (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (धेहि) दान कर ॥९॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के उपकारों को ध्यान में रखकर कार्य करते हैं, वह अपना जीवन बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥ १० ॥ (११)

प्राणः । प्र-जाः । अनु । वस्ते । पिता । पुत्रम्-इव । प्रियम् ॥
प्राणः । ह । सर्वस्य । ईश्वरः । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न ॥ १० ॥ (११)

भाषार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (प्रजाः) सब उत्पन्न प्राणियों को (अनु) निरन्तर (वस्ते) ढक लेता है, (इव) जैसे (पिता) पिता (प्रियम्) प्रिय (पुत्रम्) पुत्र को [वस्त्र आदि से] । (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सर्वस्य) सब का (ईश्वरः) ईश्वर है, (यत् च) जो कुछ भी (प्राणति) श्वास लेता है, (यत् च) और जो (न) नहीं श्वास लेता है ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य जगत् स्वामी परमेश्वर को सब चर और अचर सृष्टि में व्यापक जानकर अपना ऐश्वर्य बढ़ावे ॥ १० ॥

ऊ । उपकारक्रिया (यो) या-उ । या च (प्रेयसी) प्रिय-ईयसुन्, प्रादेशः । प्रियतरा (अथो) अपिच (भेषजम्) भयनिवारकं कर्म (तस्य) (नः) अस्माकम् (धेहि) डु धाञ् दाने । दानं कुरु (जीवसे) जीवनवर्धनाय । अन्यद् गतम् ॥

१०—(प्राणः) जीवनप्रदः परमेश्वरः (प्रजाः) उत्पद्यमाना मनुष्याद्याः (अनु) अनुक्रमेण (वस्ते) आच्छादयति (पिता) जनकः (पुत्रम्) दुःखात् त्रातारं सुतम् (इव) यथा (प्रियम्) स्निग्धम् (ह) एव (सर्वस्य) चराचरस्य (ईश्वरः) म० १ । स्वामी (यत्) यत् किंचिज् जङ्गमात्मकं वस्तु (प्राणति) प्राणिति । प्राणव्यापारं करोति (यत् च) स्थावरात्मकम् (न) निषेधे ॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ ११ ॥

प्राणः । मृत्युः । प्राणः । तक्मा । प्राणम् । देवाः । उप । आसते ॥ प्राणः । ह । सत्य-वादिनम् । उत्-तमे । लोके । आ । दधत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (मृत्युः) मृत्यु और (प्राणः) प्राण (तक्मा) जीवन को कष्ट देने वाला [ज्वर आदि रोग] है, (प्राणम्) प्राण की (देवाः) विद्वान् लोग (उप आसते) उपासना करते हैं। (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ह) ही (सत्यवादिनम्) सत्यवादी को (उत्तमे लोके) उत्तम लोक पर (आ दधत्) स्थापित कर सकता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—ईश्वरीय नियम से विरुद्ध चलने पर मनुष्य मृत्यु और रोग को पाते हैं। विद्वान् लोग इस लिये परमात्मा की उपासना करते और जितेन्द्रिय होकर अपने श्वास प्रश्वास को वश में करते हैं कि वे सत्यवादी होकर श्रेष्ठ पद पावें ॥ ११ ॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥

प्राणः । वि-राट् । प्राणः । देष्ट्री । प्राणम् । सर्वे । उप । आसते ॥ प्राणः । ह । सूर्यः । चन्द्रमाः । प्राणम् । आहुः । प्रजा-पतिम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(प्राणः) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (विराट्) विराट्

११—(प्राणः) जीवनप्रदः परमेश्वरः (मृत्युः) मरणस्य कर्त्ता (तक्मा) अ० १ । २५ । १ । कृच्छ्रजीवनकरो ज्वरादिरोगः (देवाः) विद्वांसः (उपासते) सेवन्ते (ह) एव (सत्यवादिनम्) यथार्थवक्तारम् (उत्तमे) उत्कृष्टे (लोके) दर्शनीये स्थाने (आ दधत्) लेटि रूपम् । स्थापयेत् ॥

१२—(प्राणः) म० १ (विराट्) विविधेश्वरः (देष्ट्री) दिश दाने आज्ञा-

[विविध प्रकार ईश्वर] और (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (देष्ट्री) मार्ग दर्शिका शक्ति है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] की (सर्वे) सब (उप आसते) उपासना करते हैं (प्राणः) प्राण [परमेश्वर] (ह) ही (सूर्यः) प्रेरणा करने वाला और (चन्द्रमाः) आनन्द दाता है, (प्राणम्) प्राण [परमेश्वर] को (प्रजापतिम्) प्रजापति [सृष्टि पालक] (आहुः) वे [विद्वान्] कहते हैं ॥१२॥

भावार्थ—सब मनुष्य परमात्मा की उपासना करके विविध प्रकार समर्थ होकर आनन्द पाते हैं ॥ १२ ॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥ १३ ॥

प्राणापानौ । व्रीहि-यवौ । अनड्वान् । प्राणः । उच्यते ॥ यवे । ह । प्राणः । आ-हितः । अपानः । व्रीहिः । उच्यते ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास और प्रश्वास] (व्रीहियवौ) चावल और जौ [के समान पुष्टिकारक] हैं, (प्राणः) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] (अनड्वान्) जीवन का चलाने वाला (उच्यते) कहा जाता है। (यवे) जौ में (ह) भी (प्राणः) प्राण [श्वासवायु] (आहितः) रक्खा हुआ है, (अपानः) अपान [प्रश्वास वायु] (व्रीहि) चावल (उच्यते) कहा जाता है ॥ १३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने प्राणियों के भीतर श्वास प्रश्वास को चावल जौ अन्न आदि के समान पुष्टिकारक बनाया है ॥ १३ ॥

पने च—तृच्, ङीप्, । मार्गदर्शिका शक्तिः (प्राणम्) परमात्मानम् (सर्वे) जनाः (उपासते) सेवन्ते (ह) एव (सूर्यः) सर्वप्रेरकः परमेश्वरः (चन्द्रमाः) आह्लादकरः (प्राणम्) (आहुः) कथयन्ति विद्वांसः (प्रजापतिम्) सृष्टिपालकम् ॥

१३—(प्राणापानौ) प्राणस्य वृत्तिविशेषौ । श्वासप्रश्वासौ (व्रीहियवौ) अ० ६ । १४० । २ । अन्नविशेषौ (अनड्वान्) अ० ४ । ११ । १ । अनः+वह प्रापणे—क्विप् । अनसो जीवनस्य वाहकः संचालकः (प्राणः) (उच्यते) (यवे) (ह) एव (आहितः) स्थापितः (अपानः) प्रश्वासः (व्रीहिः) (उच्यते) ॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥ १४ ॥

अप । अनति । प्र । अनति । पुरुषः। गर्भे। अन्तरा ॥ यदा । त्वम् । प्राण । जिन्वसि । अथ । सः । जायते। पुनः ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(पुरुषः) पुरुष (गर्भे अन्तरा) गर्भ के भीतर (प्र अनति) श्वास लेता है और (अप अनति) प्रश्वास [बाहिर को श्वास] लेता है। (यदा) जब (त्वम्) तू, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (जिन्वसि) तृप्त करता है, (अथ) तब (सः) वह [पुरुष] (पुनः) फिर (जायते) उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के सामर्थ्य से प्राणी गर्भ के भीतर श्वास प्रश्वास लेता और पूरे दिन होने पर उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

प्राणम् । आहुः । मातरिश्वानम् । वातः । ह । प्राणः । उच्यते ॥ प्राणे । ह । भूतम् । भव्यम् । च । प्राणे । सर्वम् । प्रति स्थितम् । ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(प्राणम्) प्राण [जीवन दाता परमेश्वर] को (मातरिश्वानम्) आकाश में व्यापक [सूत्रात्मा वायु के समान] (आहुः) वे बताते हैं, (वातः) वायु (ह) भी (प्राणः) [जीवन दाता परमेश्वर] (उच्यते)

१४—(अपानति) प्रश्वसिति (प्राणति) प्राणनव्यापारं करोति (पुरुषः) प्राणी (गर्भे) गर्भाशये (अन्तरा) मध्ये (यदा) यस्मिन् काले (त्वम्) (प्राण) हे जीवनप्रद परमेश्वर (जिन्वसि) जिवि प्रीणने । प्रीणयसि । सन्तोषयसि । तर्पयसि (अथ) तदा (सः) पुरुषः (जायते) उत्पद्यते (पुनः) पश्चात् ॥

१५—(प्राणम्) जीवनप्रदं परमेश्वरम् (आहुः) कथयन्ति (मातरिश्वानम्) अ० ५ । १० । ८ । मातरि मानकर्तरि अन्तरिक्षे व्यापकं सूत्रात्मरूपम् (वातः) गमनशीलो वायुः (ह) अपि (प्राणः) सुपां सुलुक्० । पा० ७ । १ । ३९ ।

कहा जाता है। (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (ह) ही (भूतम्) बीता हुआ (च) और (भव्यम्) होनहार [वस्तु] और (प्राणे) प्राण [परमेश्वर] में (सर्वम्) सब [जगत्] (प्रतिष्ठितम्) टिका हुआ है ॥ १५ ॥

भावार्थ—महात्मा लोग अनुभव करते हैं कि परमात्मा ही सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर और सर्वव्यापक है ॥ १५ ॥

आ॒थ॒र्व॒णीरा॑ङ्गिर॒सीर्दैवी॑र्मनु॒ष्य॒जा उ॒त ।
ओष॑धयः॒ प्र जा॑यन्ते॒ य॒दा त्वं प्रा॑ण॒ जिन्व॑सि ॥ १६ ॥

आ॒थ॒र्व॒णीः । आ॒ङ्गि॒र॒सीः । दैवीः॑ । म॒नु॒ष्य॒-जाः । उ॒त ॥
ओष॑धयः । प्र । जा॒य॒न्ते॒ । य॒दा । त्वम् । प्रा॒ण॒ । जिन्व॑सि । १६

भाषार्थ—(आथर्वणीः) निश्चल स्वभाव वाले महर्षियों की प्रकाशित की हुई और (आङ्गिरसीः) विज्ञानियों की बताई हुई (दैवीः) देव [मेघ] से उत्पन्न (उत) और (मनुष्यजाः) मनुष्यों से उत्पन्न (ओषधयः) ओषधें (प्र जायन्ते) उत्पन्न हो जाती हैं, (यदा) जब (त्वम्) तू, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] [उन को] (जिन्वसि) तृप्त करता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—मेघ द्वारा स्वयं उत्पन्न और मनुष्य द्वारा खेती आदि से उत्पन्न अन्न और ओषधें परमेश्वर के सामर्थ्य से वृष्टि होने पर उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रचार अनुभवी महात्मा लोग संसार में करते हैं ॥ १६ ॥

विभक्तेः सुः। प्राणे। जीवनप्रदे परमेश्वरे (उच्यते) कथ्यते (प्राणे) परमात्मनि (ह) एव (भूतम्) व्यतीतं पदार्थजातम् (भव्यम्) भविष्यत्। उत्पत्स्यमानं वस्तु (च) (प्राणे) (सर्वम्) समस्तं जगत् (प्रतिष्ठितम्) आश्रितम् ॥

१६—(आथर्वणीः) अथर्वा व्याख्यातः—अ० ४। १। ७। तेन प्रोक्तम्। पा०४। ३।१०१। इत्यण्, ङीप्,जसि पूर्वसवर्णदीर्घः। अथर्वभिर्निश्चलबुद्धिभिः प्रकाशिताः (आङ्गिरसीः) अङ्गिरा व्याख्यातः—अ० २। १२। ४। पुनः पूर्ववत् सिद्धिः। अङ्गिरोभिर्विज्ञानिभिः प्रोक्ताः (दैवीः) अ० १। १६। २। देव-अञ्, अन्यत् पूर्ववत् साधु। देवाद् मेघादागता व्युत्पन्नाः (मनुष्यजाः) क्षेत्राद् मनुष्येभ्य उत्पन्नाः (ओषधयः) नाना विधा अन्नाद्याः (प्रजायन्ते) प्रकर्षेणोत्पद्यन्ते। अन्यद् गतम्-म० १४ ॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥ १७ ॥

यदा । प्राणः । अभि-अवर्षीत् । वर्षेण । पृथिवीम् । महीम् ॥
ओषधयः । प्र । जायन्ते । अथो इति । याः । काः । च । वीरुधः ॥ १७

भाषार्थ—(यदा) जब (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) विशाल (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया ! (अथो) तब ही (ओषधयः) अन्न आदिपदार्थ (च) और (याः काः) जो कोई (वीरुधः) जड़ी बूटी हैं, वे भी (प्र जायन्ते) बहुत उत्पन्न होतीं हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से वृष्टि होने पर ग्राम्य और आरण्य पदार्थ उत्पन्न होकर संसार का उपकार करते हैं ॥ १७ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध ऊपर मन्त्र ५ में आया है ॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥ १८ ॥

यः । ते । प्राण । इदम् । वेद । यस्मिन् । च । असि । प्रति-स्थितः ॥ सर्वे । तस्मै । बलिम् । हरान् । अमुष्मिन् । लोके । उत्-तमे ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवन दाता परमेश्वर] (यः) जो [पुरुष] (ते) तेरे (इदम्) इस [महत्त्व] को (वेद) जानता है, (च) और (यस्मिन्) जिस [पुरुष] में तू (प्रतिष्ठितः) दृढ़ ठहरा हुआ (असि) है।

१७—पूर्वार्धर्चो व्याख्यातः—म० ५ (ओषधयः) अन्नादिपदार्थाः (प्र जायन्ते) (अथो) अनन्तरमेव (याः) (काः) (च) (वीरुधः) अ० १ । ३२ । १ । विरोहणशीला लतादयः ॥

१८—(यः) पुरुषः (ते) तव (प्राण) (इदम्) महत्त्वम् (वेद) जानाति (यस्मिन्) पुरुषे (च) (असि) (प्रतिष्ठितः) दृढं स्थितः (सर्वे) प्राणिनः (तस्मै) पुरुषाय (बलिम्) उपहारम् (हरान्) हरतेर्लेटि आडागमः ।

(सर्वे) सब [प्राणी] (अमुष्मिन्) उस (उत्तमे) उत्तम (लोके) लोक [स्थान] पर [वर्तमान] (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) लावें ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के महत्त्व को साक्षात् करके उसे अपने हृदय में दृढ़ करता है, वह पुरुष संसार में सब से उच्च स्थान पाता है ॥१८॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः ॥ १९ ॥

यथा । प्राण । बलि-हृतः । तुभ्यम् । सर्वाः । प्र-जाः । इमाः ॥ एव । तस्मै । बलिम् । हरान् । यः । त्वा । शृणवत् । सु-श्रवः ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [परमेश्वर] (यथा) जैसे (तुभ्यम्) तेरे लिये (इमाः) यह (सर्वाः) सब (प्रजाः) प्रजायें (बलिहृतः) भक्ति रूप उपहार देने वाली हैं। (एव) वैसे ही (तस्मै) उस [पुरुष] के लिये (बलिम्) बलि [उपहार] (हरान्) वे लावें, (यः) जो पुरुष, (सुश्रवः) हे बड़ी कीर्ति वाले [परमेश्वर] (त्वा) तुझ को (शृणवत्) सुने ॥ १९ ॥

भावार्थ—परमेश्वर की आज्ञा मानने वाला पुरुष सब प्राणियों को अपने वश में कर लेता है ॥ १९ ॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः । स

इतश्चलोपः परस्मैपदेषु । पा० ३ । ४ । ९७ । इकारलोपः, संयोगान्तलोपः । हरन्तु प्रापयन्तु (अमुष्मिन्) तस्मिन् प्रसिद्धे (लोके) स्थाने वर्तमानाय (उत्तमे) श्रेष्ठे ॥

१९—(यथा) येन प्रकारेण (प्राण) (बलिहृतः) बलेर्भक्तिरूपस्योपहारस्य हर्त्र्यः प्रापिकाः (तुभ्यम) (सर्वाः) (प्रजाः) उत्पन्नाः प्राणिनः (इमाः) दृश्यमानाः (एव) तथैव (तस्मै) पुरुषाय (बलिम्) उपहारम् (हरान्) म० १८ (यः) पुरुषः (त्वा) त्वाम् (शृणवत्) लेटि, अडागमः । शृणुयात् (सुश्रवः) श्रु श्रवणे—असुन् । हे बहुकीर्त्ते ॥

भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥२०॥(१२)

अन्तः । गर्भः । चरति । देवतासु । आ-भूतः । भूतः । सः । ऊं इति । जायते । पुनः ॥ सः । भूतः । भव्यम् । भविष्यत् । पिता । पुत्रम् । प्र । विवेश । शचीभिः ॥ २० ॥ (१२)

भाषार्थ—(सः उ) वही [परमेश्वर] (आभूतः) सब ओर से व्याप्त और (भूतः) वर्तमान होकर (देवतासु अन्तः) सब दिव्य पदार्थों के भीतर (गर्भः)गर्भ [के समान] (चरति) विचरता है और (पुनः) फिर (जायते) प्रकट होता है । (सः) उस (भूतः) वर्तमान [परमेश्वर] ने (भव्यम्) होनहार (भविष्यत्) आगामी जगत् में (शचीभिः) अपने कर्मों से (प्र वि-वेश) प्रवेश किया है, [जैसे] (पिता) पिता (पुत्रम्) पुत्र में [उत्तम शिक्षा दान से प्रवेश करता है] ॥ २० ॥

भावार्थ—नित्य अनादि परमेश्वर सब पदार्थों के भीतर और बाहिर परिपूर्ण होकर भूत भविष्यत् और वर्तमान में सब का उपकार करता है, जैसे पिता पुत्र को शिक्षा दान करता है ॥ २० ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् । यदङ्ग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत् कदा चन ॥ २१ ॥

एकम् । पादम् । न । उत् । खिदति । सलिलात् । हंसः । उत्-चरन् ॥ यत् । अङ्ग । सः । तम् । उत्-खिदेत् । न । एव ।

२०—(अन्तः) मध्ये (गर्भः) गर्भो यथा (चरति) गच्छति । व्याप्नोति (देवतासु) देवेषु । दिव्यपदार्थेषु (आभूतः) समन्ताद् व्याप्तः (भूतः) वर्तमानः । नित्यः (सः) प्राणः परमेश्वरः (उ) एव) (जायते) प्रादुर्भवति (पुनः) पश्चात् (सः) प्राणः (भूतः) नित्यः (भव्यम्) भावि (भविष्यत्) उत्पत्स्यमानं जगत् (पिता) रक्षको जनकः (पुत्रम्) (प्र विवेश) प्रविष्टवान् (शचीभिः) कर्मभिः-निघ० २ । १ । प्रज्ञाभिः—निघ० ३ । ९ ॥

अद्य । न । श्वः । स्यात् । न । रात्री । न । अहः । स्यात् । न । वि । उच्छेत् । कदा । चन ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(हंसः) हंस [सर्वव्यापक वा सर्वज्ञानी परमात्मा] (सलिलात्) समुद्र [समुद्र समान अपने अगम्य सामर्थ्य] से (उच्चरन्) उदय होता हुआ (एकम्) एक [सत्य वा मुख्य] (पादम्) पाद [स्थिति नियम] को (न) नहीं (उत् खिदति) उखाड़ता है। (अङ्ग) हे विद्वान् ! (यत्) जो (सः) वह [परमात्मा] (तम्) उस [नियम] को (उत्खिदेत्) उखाड़ देवे, (न एव) न तौ (अद्य) आज, (न) न (श्वः) कल्य (स्यात्) होवे, (न) न (रात्री) रात्री, (न) न (अहः) दिन (स्यात्) होवे, (न) न (कदा चन) कभी भी (वि उच्छेत्) प्रभात होवे ॥ २१ ॥

भावार्थ—जैसे हंस परमात्मा अपने अचल नियम से विचल न होकर सूर्य आदि को अपने केन्द्र पर ठहरा कर सब संसार का उपकार करता है, वैसे ही परमहंस, जितेन्द्रिय, विज्ञानी पुरुष सब प्राणियों का हित करता है ॥ २१ ॥

(हंस) शब्द का मिलान—अथर्व० १० । ८ । १७ तथा १८ में करो ॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा । अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥ २२ ॥

अष्टा-चक्रम् । वर्तते । एक-नेमि । सहस्र-अक्षरम् । प्र । पुरः ।

२१—(एकम्) इणभीकापा० । उ० ३ । ४३ । इण् गतौ—कन् । व्यापकम् । सत्यम् । मुख्यम् (पादम्) पद गतौ स्थैर्ये च—घञ् । स्थितिनियमम् (न) निषेधे (उत् खिदति) उद्धरति । उत्क्षिपति (सलिलात्) अ० ६ । १० । ६ । समुद्रादिवाऽगम्यसामर्थ्यात् (हंसः) अ० १० । ८ । १७ । वृतृवदि० । उ० ३ । ६२ । हन हिंसागत्योः—स । पक्षिविशेषः । सूर्यः । परमात्मा । योगिभेदः । शरीरस्थवायुविशेषः । एवमादयः—शब्दकल्पद्रुमे (उच्चरन्) उद्गच्छन् (अङ्ग) संबोधने (सः) हंसः । परमात्मा (तम्) पादम् । स्थितिनियमम् (उत्खिदेत्) उत्क्षिपेत् (नैव) न कदापि (अद्य) वर्तमानं दिनम् (न) (श्वः) आगामिदिनम् (स्यात्) (न) (न) (रात्री) (न) (अहः) दिनम् (न) (वि उच्छेत्) व्युच्छनम्, उषसः प्रादुर्भावो भवेत् (कदाचन) कदापि ॥

नि । पुश्चा ॥ अर्धेन । विश्वम् । भुवनम् । जुजान । यत् । अस्य । अर्धम् । कृतमः । सः । केतुः ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(अष्टाचक्रम्) आठ [दिशाओं] में चक्र वाला, (एकनेमि) एक नेमि [नियम वाला] और (सहस्राक्षरम्) सहस्र प्रकार से व्याप्ति वाला [ब्रह्म] (प्र) भली भांति (पुरः) आगे और (नि) निश्चय करके (पश्चा) पीछे (वर्तते) वर्तमान है, । उसने (अर्धेन) आधे खण्ड से (विश्वम्) सब (भुवनम्) अस्तित्व [जगत्] को (जजान) उत्पन्न किया, और (यत्) जो (अस्य) इस [ब्रह्म] का (अर्धम्) [दूसरा कारण रूप] आधा है, (सः) वह (कतमः) कौन सा (केतुः) चिन्ह है ॥ २२ ॥

भावार्थ—वह परब्रह्म अपने अटूट नियम से सब जगत् में व्यापकर सबसे पहिले और पीछे निरन्तर वर्तमान है, उसी की सामर्थ्य से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है और उसी की शक्तिमें अनन्त कारण रूप पदार्थ वर्तमान है ॥२२॥

यह मन्त्र कुछ भेद से आ चुका है, देखो—अथर्व० १० । ८ । ७ तथा १३ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥ २३ ॥

यः । अस्य । विश्व-जन्मनः । ईशे । विश्वस्य । चेष्टतः ॥ अन्येषु । क्षिप्र-धन्वने । तस्मै । प्राण । नमः । अस्तु । ते ।२३

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (विश्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (विश्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले [कार्यरूप] जगत् का (ईशे) ईश्वर है । [इनसे] (अन्येषु) भिन्न [परमाणुरूप

२२—(अष्टाचक्रम्) अष्टसु दिक्षु चक्रं यस्य तद् ब्रह्म । अन्यद्व्याख्यातम्-अथर्व० १० । ८ । ७ तथा १३ ॥

२३—(यः) प्राणः परमेश्वरः (अस्य) दृश्यमानस्य (विश्वजन्मनः) विविधजन्मोपेतस्य (ईशे) तलोपः । ईष्टे । ईश्वरो भवति (विश्वस्य) सर्वस्य (चेष्टतः) व्याप्रियमाणस्य (अन्येषु) भिन्नेषु । कारणरूपेषु (क्षिप्रधन्वने) कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्वि० । उ० १ । १५६ । धवि गतौ-कनिन्, इदित्वान्नुम् ।

पदार्थों] पर (क्षिप्रधन्वने) शीघ्र व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते) तुझ को, (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (नमः अस्तु) नमस्कार हो ॥ २३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर सब कार्यरूप और कारण रूप जगत् का स्वामी है उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है ॥ २३ ॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।

अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥ २४ ॥

यः । अस्य । सर्व-जन्मनः । ईशे । सर्वस्य । चेष्टतः ॥

अतन्द्रः । ब्रह्मणा । धीरः । प्राणः । मा । अनु । तिष्ठतु ।२४।

भाषार्थ—(यः) जो [परमेश्वर] (अस्य) इस (सर्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (सर्वस्य) सब (चेष्टतः) चेष्टा करने वाले [कार्यरूप जगत्] का (ईशे) ईश्वर है । [वह] (अतन्द्रः) आलस रहित, (धीरः) धीर [बुद्धिमान्] (प्राणः) प्राण [जीवनदाता परमेश्वर] (ब्रह्मणा) वेदज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ साथ (तिष्ठतु) ठहरा रहे ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता परमेश्वर की महिमा जानकर निरालसी, धीर, वीर होकर पुरुषार्थ करे ॥ २४ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्ध कुछ भेद से ऊपर मन्त्र २३ में आया है ॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् नि पद्यते ।

न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वः । सुप्तेषु । जागार । ननु । तिर्यङ् । नि । पद्यते ॥

न । सुप्तम् । अस्य । सुप्तेषु । अनु । शुश्राव । कः । चन ।२५।

शीघ्रं गच्छते व्याप्नुवते (तस्मै) तथाविधाय (प्राण) (नमः) (अस्तु) (ते) तुभ्यम् ॥

२४—पूर्वार्धर्चो व्याख्यातः, म० २३ । विश्वशब्दस्य स्थाने सर्वशब्दो विशेषः । (अतन्द्रः) निरलसः (ब्रह्मणा) वेदज्ञानेन (धीरः) धीमान् । बुद्धिमान् (प्राणः) जीवनदाता परमेश्वरः (मा) माम् (अनु) अनुलक्ष्य (तिष्ठतु) वर्तताम् ॥

भाषार्थ—(सुप्तेषु) सोते हुये [प्राणियों]पर वह [प्राण, परमात्मा] (ऊर्ध्वः) ऊपर रहकर (जागार) जागता है, और (ननु) कभी नहीं (तिर्यङ्) तिरछा [होकर] (नि पद्यते) गिरता है। (कःचन) किसी ने भी (सुप्तेषु) सोते हुओं में (अस्य) इस [प्राण परमात्मा] का (सुप्तम्) सोना (न अनु शुश्राव) कभी [परम्परा से] नहीं सुना ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे परमात्मा चैतन्य रह कर सर्वदा सब प्राणियों की सुधि रखता है, वैसे ही मनुष्यों को निरालस होकर पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ २५ ॥

प्राण मा मत् पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥ २६ ॥ (१३)

प्राण । मा । मत् । परि-आवृतः । न । मत् । अन्यः । भविष्यसि ॥ अपाम् । गर्भम्-इव । जीवसे । प्राण । बध्नामि । त्वा । मयि ॥ २६ ॥ (१३)

भाषार्थ—(प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (मत्) मुझ से (पर्यावृतः) पृथक् वर्तमान (मा) मत [हो] तू , (मत्) मुझ से (अन्यः) अन्य (न भविष्यसि) न होगा। (प्राण) हे प्राण ! [जीवनदाता परमेश्वर] (अपाम्) प्राणियों [वा जल] के (गर्भम् इव) गर्भ के समान (त्वा) तुझको (जीवसे) [अपने] जीवन के लिये (मयि) अपने में (बध्नामि) बांधता हूं ॥ २६ ॥

२५—(ऊर्ध्वः) उपरिस्थितः सन् (सुप्तेषु) निद्रागतेषु (जागार) लडर्थे लिट्। जागर्ति (ननु) नैव (तिर्यङ्) तिर्यगवस्थितः सन् (निपद्यते) नि पतति (न) निषेधे (सुप्तम्) सुप्तिः(अस्य) प्राणस्य परमेश्वरस्य (सुप्तेषु) (अनु) अनुक्रमेण। परम्परया (शुश्राव) श्रुतवान् (कश्चन) कोऽपि पुरुषः॥

२६—(प्राण) हे प्राणप्रद परमेश्वर (मा) निषेधे (मत्) मत्तः (पर्यावृतः) वृञ् वरणे-क्त। पृथग् वेष्टितः (न) निषेधे (मत्) (अन्यः) पृथग्भूतः (भविष्यसि) (अपाम्) प्राणिनाम्। जलानां वा (गर्भम्) उदरस्थं सन्तानम्, गर्भवद् वर्तमानं जलं वा (इव) यथा (जीवसे) जीवनाय (प्राण) (बध्नामि) धरामि (त्वा) त्वाम् (मयि) आत्मीये ॥

भावार्थ—जैसे गर्भ प्राणियों में और अग्नि, जल के भीतर चेष्टा करता है, वैसे ही मनुष्य परमात्मा को हृदय में धारण करके उन्नति करे ॥ २६ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ५ ॥

१—२६ ॥ ब्रह्मचारी देवता ॥ १, ६, २३ आर्षीत्रिष्टुप् ; २ भुरिगतिजगती; ३ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् ; ४, ५, २४ त्रिष्टुप् ; ६ स्वराड् जगती ; ७ विराड् जगती; ८ स्वराट् त्रिष्टुप् ; १० भुरिक् त्रिष्टुप् ; ११, १३ जगती ; १२ भुरिगार्षी जगती; १४, १६—२२ अनुष्टुप् ; १५ पुरस्ताज् ज्योतिस्त्रिष्टुप् ; २५ आर्च्युष्णिक् ; २६ भुरिक् पथ्या पङ्क्तिः ॥

ब्रह्मचर्यमाहात्म्योपदेशः—ब्रह्मचर्य के महत्त्व का उपदेश ॥

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति । स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ।१।

ब्रह्म-चारी । इष्णन् । चरति । रोदसी इति । उभे इति । तस्मिन् । देवाः । सम्-मनसः । भवन्ति ॥ सः । दाधार । पृथिवीम् । दिवम् । च । सः । आ-चार्यम् । तपसा । पिपर्ति १

भावार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और वीर्यनिग्राहक पुरुष] (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य और पृथिवी को (इष्णन्) लगातार खोजता हुआ (चरति) विचरता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (संमनसः) एक मन (भवन्ति) होते हैं। (सः) उस ने

१-(ब्रह्मचारी) अ० ५ । १७ । ५ । ब्रह्म+चर गतिभक्षणयोः- आवश्यके णिनि । ब्रह्मणे वेदाय वीर्यनिग्रहाय च चरणशीलः पुरुषः (इष्णन्) इष आभीक्ष्ण्ये-शतृ । पुनः पुनरन्विच्छन् (चरति) विचरति । प्रवर्त्तते (रोदसी) अ० ४ । १ । ४ । द्यावापृथिव्यौ (उभे) (तस्मिन्) ब्रह्मचारिणि (देवाः)

(पृथिवीम्) पृथिवी (च) और (दिवम्) सूर्य लोक को (दाधार) धारण किया है [उपयोगी बनाया है], (सः) वह (आचार्यम्) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेदों के पढ़ाने वाले पुरुष] को (तपसा) अपने तप से (पिपर्ति) परिपूर्ण करता है ॥ १ ॥

भावार्थ–ब्रह्मचारी वेदाध्ययन और इन्द्रिय दमन रूप तपोबल से सब सूर्य, पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान पाकर और सब से उपकार लेकर विद्वानों को प्रसन्न करता हुआ वेद विद्या के प्रचार से आचार्य का इष्ट सिद्ध करता है ॥ १ ॥

१—भगवान् पतञ्जलि मुनि ने इस सूक्त का सारांश लेकर कहा है–[ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः–योगदर्शन, पाद २ सूत्र ३८] (ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायाम्) ब्रह्मचर्य [वेदों के विचार और जितेन्द्रियता] के अभ्यास में (वीर्यलाभः) वीर्य [वीरता अर्थात् धैर्य, शरीर, इन्द्रिय और मनके निरतिशय सामर्थ्य] का लाभ होता है ॥

२—भगवान् मनु ने आचार्य का लक्षण इस प्रकार किया है। [उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः। सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते–मनुस्मृति, अध्याय २ श्लोक १४०] ॥

जो द्विज [ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य] शिष्य का उपनयन करके कल्प [यज्ञ आदि संस्कार विधि] और रहस्य [उपनिषद् आदि ब्रह्मविद्या] के साथ वेद पढ़ावे, उसको "आचार्य" कहते हैं ॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे। गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

विजिगीषवः (संमनसः) समानमनस्काः (भवन्ति) (सः) ब्रह्मचारी (दाधार) धृतवान् (पृथिवीम्) (दिवम्) सूर्यलोकम् (च) (सः) (आचार्यम्) चरेराङि चागुरौ। वा० पा० ३। १। १००। इति प्राप्ते। ऋहलोर्ण्यत्। पा० ३। १। १२४। आङ्+चर गतिभक्षणयोः–ण्यत्। आचार्यः कस्मादाचार्य आचारं ग्राहयत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा०–निरु १। ४। साङ्गोपाङ्गवेदाध्यापकं द्विजम् (तपसा) इन्द्रियनिग्रहेण (पिपर्ति) पॄ पालनपूरणयोः। पूरयति ॥

ब्रह्म-चारिणम् । पितरः । देव-जनाः । पृथक् । देवाः । अनु-संयन्ति । सर्वे ॥ गन्धर्वाः । एनम् । अनु । आयन् । त्रयः-त्रिंशत् । त्रि-शताः । षट्-सहस्राः । सर्वान् । सः । देवान् । तपसा । पिपर्ति ॥ २ ॥

भाषार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहार कुशल, (पितरः) पालन करने वाले, (देवजनाः) विजय चाहने वाले पुरुष (पृथक्) नाना प्रकार से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] के (अनुसंयन्ति) पीछे पीछे चलते हैं। (त्रयस्त्रिंशत्) तेतीस, (त्रिशताः) तीन सौ और (षट्सहस्राः) छह सहस्र [६, ३३३ अर्थात् बहुत से] (गन्धर्वाः) पृथिवी के धारण करने वाले [पुरुषार्थी पुरुष] (एनम् अनु) इस [ब्रह्मचारी] के साथ साथ (आयन्) चले हैं, (सः) वह (सर्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वालों को (तपसा) [अपने] तप से (पिपर्ति) भर पूर करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् पुरुषार्थी जन पूर्वकाल से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के अनुशासन में चलकर आनन्द पाते आये हैं और पाते हैं ॥ २ ॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३ ॥

आ-चार्यः । उप-नयमानः । ब्रह्म-चारिणम् । कृणुते । गर्भम् । अन्तः ॥ तम् । रात्रीः । तिस्रः । उदरे । बिभर्ति । तम् ।

२—(ब्रह्मचारिणम्) म० १ । ब्रह्मचर्यं चरन्तं पुरुषम् (पितरः) पालकाः (देवजनाः) विजिगीषवः (पृथक्) नानाप्रकारेण (देवाः) व्यवहारकुशलाः (अनुसंयन्ति) अनुसृत्य गच्छन्ति (सर्वे) समस्ताः (गन्धर्वाः) अ० २ । १ । २ । गो + धृञ् धारणपोषणयोः—वप्रत्ययः, गोशब्दस्य गमादेशः । गां पृथिवीं धरन्तीति ये ते (एनम्) ब्रह्मचारिणम् (अनु) अनुगत्य (आयन्) इण गतौ—लङ् । अगच्छन् (त्रयस्त्रिंशत्) (त्रिशताः) त्रीणि शतानि येषु ते (षट्सहस्राः) षट्सहस्रसंख्याकाः । अपरिमिताः (सर्वान्) (सः) ब्रह्मचारी (देवान्) विजिगीषून् (तपसा) ब्रह्मचर्यरूपेण तपश्चरणेन (पिपर्ति) पूरयति ॥

जातम् । द्रष्टुम् । अभि-संयन्ति । देवाः ॥ ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और जितेन्द्रिय पुरुष] को (उपनयमानः) समीप लाता हुआ [उपनयन पूर्वक वेद पढ़ाता हुआ] (आचार्यः) आचार्य (अन्तः) भीतर [अपने आश्रम में उसको] (गर्भम्) गर्भ [के समान] (कृणुते) बनाता है। (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (तिस्रः रात्रीः) तीन राति (उदरे) उदर में [अपने शरण में] (विभर्ति) रखता है, (जातम्) प्रसिद्ध हुये (तम्) उस [ब्रह्मचारी] को (द्रष्टुम्) देखने के लिये (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंयन्ति) मिलकर जाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—उपनयन संस्कार कराता हुआ आचार्य ब्रह्मचारी को, उसके उत्तम गुणों की परीक्षा लेने और उत्तम शिक्षा देने के लिये, तीन दिन राति अपने समीप रखता है और ब्रह्मचर्य और विद्या पूर्ण होने पर विद्वान् लोग ब्रह्मचारी का आदर मान करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्र ३-७ महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, वर्णाश्रम विषय पृ० २३५-२३७ में, और मन्त्र ३, ४, ६, संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥

इयम् । सम्-इत् । पृथिवी । द्यौः । द्वितीया । उत । अन्तरिक्षम् । सम्-इधा । पृणाति ॥ ब्रह्म-चारी । सम्-इधा । मेखलया । श्रमेण । लोकान् । तपसा । पिपर्ति ॥ ४ ॥

३—(आचार्यः) म० १ । साङ्गोपाङ्गवेदाध्यापकः (उपनयमानः) संमाननोत्सञ्जनाचार्यकरण० । पा० १ । ३ । ३६ । इत्यात्मनेपदम् । स्वसमीपं गमयन् । उपनयनपूर्वकेण वेदाध्यापनेन प्रापयन् (ब्रह्मचारिणम्) म० १ । वेदपाठिनं वीर्यनिग्राहकम् (कृणुते) करोति (गर्भम्) गर्भरूपम् (अन्तः) मध्ये । स्वाश्रमे (तम्) ब्रह्मचारिणम् (तिस्रः रात्रीः) त्रिदिनपर्यन्तम् (उदरे) स्वशरणे (बिभर्ति) धारयति (तम्) (जातम्) प्रसिद्धम् (द्रष्टुम्) अवलोकयितुम् (अभिसंयन्ति) अभिमुखं संभूय गच्छन्ति (देवाः) विद्वांसः ॥

भाषार्थ—(इयम्) यह [पहिली] (समित्) समिधा (पृथिवी) पृथिवी, (द्वितीया) दूसरी [समिधा] (द्यौः) सूर्य [समान है], (उत) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को [तीसरी] (समिधा) समिधा से (पृणाति) वह पूर्ण करता है । (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) समिधा से [यज्ञानुष्ठान से], (मेखलया) मेखला से [कटिबद्ध होने के चिन्ह से] (श्रमेण) परिश्रम से और (तपसा) तप से [ब्रह्मचर्यानुष्ठान से] (लोकान्) सब लोकों को (पिपर्ति) पालता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी हवन में तीन समिधायें छोड़ कर और कटिबन्धन आदि से उद्योग का अभ्यास प्रकट करके व्रत करता है कि वह ब्रह्मचर्य के साथ पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष विद्या को जानकर संसार का उपकार करेगा ॥४॥

पूर्वो॑ जा॒तो ब्रह्म॑णो ब्रह्मचा॒री घ॒र्मं वसा॑न॒स्तप॒सोद॑तिष्ठत् । तस्मा॑ज्जा॒तं ब्राह्म॑णं॒ ब्रह्म॒ ज्ये॒ष्ठं दे॒वाश्च॒ सर्वे॑ अ॒मृते॑न सा॒कम् ॥ ५ ॥

पूर्वः॑ । जा॒तः । ब्रह्म॑णः । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । घ॒र्मम् । वसा॑नः । तप॑सा । उत् । अ॒ति॒ष्ठ॒त् ॥ तस्मा॑त् । जा॒तम् । ब्राह्म॑णम् । ब्रह्म॑ । ज्ये॒ष्ठम् । दे॒वाः । च॒ । सर्वे॑ । अ॒मृते॑न । सा॒कम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [मन्त्र १] (ब्रह्मणः) वेदाभ्यास [के कारण] से (पूर्वः) प्रथम [गणना में पहिला] (जातः) प्रसिद्ध होकर (घर्मम्) प्रताप (वसानः) धारण करता हुआ (तपसा) [अपने ब्रह्मचर्य

४—(इयम्) दृश्यमाना प्रथमा (समित्) होमीयकाष्ठम् (पृथिवी) भूमिविद्यारूपा (द्यौः) सूर्यविद्या (द्वितीया) समित् (उत) अपि च (अन्तरिक्षम्) समिधा (तृतीयेन) होमीयकाष्ठेन (पृणाति) पूरयति (ब्रह्मचारी) (समिधा) (मेखलया) अ० ६ । १३३ । १ । कटिबन्धनेन (श्रमेण) परिश्रमेण (लोकान्) जनान् (तपसा) तपश्चरणेन (पिपर्ति) पालयति ॥

५—(पूर्वः) प्रथमः । प्रधानः (जातः) प्रसिद्धः सन् (ब्रह्मणः) वेदाभ्यासात् (ब्रह्मचारी) म० १ । वेदपाठी वीर्यनिग्राहकश्च (घर्मम्) घृ दीप्तौ—मक् । प्रतापम् (वसानः) आच्छादयन् । धारयन् (तपसा) ब्रह्मचर्यरूपेण

रूप] तपस्या से (उत् अतिष्ठत्) ऊंचा ठहरा है। (तस्मात्) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता है], (च) और (सर्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्ष सुख] के साथ [होते हैं] ॥ ५ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी वेदों के अभ्यास और जितेन्द्रियता आदि तपोबल के कारण बड़ा सत्कार पाकर सब को धर्म और सम्पत्ति का मार्ग दिखाकर विद्वानों को परमानन्द पहुंचाता है ॥ ५ ॥

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ६ ॥

ब्रह्म-चारी। एति। सम्-इधा। सम्-इद्धः। कार्ष्णम्। वसानः। दीक्षितः। दीर्घ-श्मश्रुः॥ सः। सद्यः। एति। पूर्वस्मात्। उत्तरम्। समुद्रम्। लोकान्। सम्-गृभ्य। मुहुः। आ-चरिक्रत् ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (समिधा) [विद्याके] प्रकाश से (समिद्धः) प्रकाशित, (कार्ष्णम्) कृष्ण मृग का चर्म (वसानः) धारण किये हुये (दीक्षितः) दीक्षित होकर [व्रत धारण करके] (दीर्घश्मश्रुः) बड़े बड़े दाढ़ी मूछ रखाये हुये (एति) चलता है। (सः) वह (सद्यः) अभी (पूर्वस्मात्)

तपश्चरणेन (उत्) ऊर्ध्वः (अतिष्ठत्) स्थितवान् (तस्मात्) ब्रह्मचारिणः सकाशात् (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञानम् (ब्रह्म) ब्रह्म धननाम—निघ० २। १०. वृद्धिकरं धनम् (ज्येष्ठम्) प्रशस्यतमम् (देवाः) विद्वांसः (च) (सर्वे) समस्ताः (अमृतेन) मरणस्य दुःखस्य राहित्येन। मोक्षसुखेन (साकम्) सह ॥

६—(ब्रह्मचारी) म० १। ब्रह्मचर्येण युक्तः (एति) गच्छति (समिधा) ञि इन्धी दीप्तौ—क्विप्। विद्याप्रकाशेन (समिद्धः) प्रदीप्तः (कार्ष्णम्) कृष्णमृगचर्म (वसानः) धारयन् (दीक्षितः) प्राप्तदीक्षः। धृतनियमः (दीर्घश्मश्रुः) लम्बमानमुखस्थलोमा (सः) ब्रह्मचारी (सद्यः) तत्क्षणम् (एति) आप्नोति (पूर्वस्मात्) प्रथमसमुद्ररूपाद् ब्रह्मचर्याश्रमात् (उत्तरम्) अनन्तरम् (समुद्रम्) गृहाश्रमरूपं समुद्रम् (लोकान्)

पहिले [समुद्र] से [अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम से] (उत्तरम् समुद्रम्) पिछले समुद्र [गृहाश्रम] को (एति) प्राप्त होता है और (लोकान्) लोगों को (संगृभ्य) संग्रह करके (मुहुः) वारम्बार (आचरिकत्) अतिशय [करके] पुकारता रहे ॥ ६ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी वस्त्र और केश आदि शारीरिक बाहिरी बन व की उपेक्षा करके सत्य धर्म और ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण करके गृहाश्रम में प्रवेश करता हुआ लोगों में सत्य का प्रचार करे ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् । गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥७॥

ब्रह्म-चारी । जनयन् । ब्रह्म । अपः । लोकम् । प्रजा-पतिम् । परमे-स्थिनम् । वि-राजम् ॥ गर्भः । भूत्वा । अमृतस्य । योनौ । इन्द्रः । ह । भूत्वा । असुरान् । ततर्ह ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्म) वेद विद्या (अपः) प्राणों, (लोकम्) संसार और (प्रजापतिम्) प्रजापालक (परमेष्ठिनम्) सबसे ऊंचे मोक्ष पद में स्थिति वाले (विराजम्) विविध जगत् के प्रकाशक [परमात्मा] को (जनयन्) प्रकट करते हुये (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (अमृतस्य) अमरपन [अर्थात् मोक्ष] की (योनौ) योनि [उत्पत्ति स्थान अर्थात् ब्रह्मविद्या] में (गर्भः) गर्भ (भूत्वा) होकर [गर्भ के समान नियम से रहकर] और (ह) निस्सन्देह

जनान् (संगृभ्य) संगृह्य (मुहुः) वारम्वारम् (आचरिक्रत्) आङ्+करोते-र्यङ्लुगन्तात् लेटि रूपम् । लेटोऽडाटौ । पा० ३ । ४ । ९४ । इत्यट् । इतश्च लोपः परस्मैपदेषु । पा० ३ । ४ । ९७ । इकारलोपः । अतिशयेन आकारयेत् आह्वयेत् ॥

७—(ब्रह्मचारी) म० १ (जनयन्) प्रकटयन् (ब्रह्म) वेदविद्याम् (अपः) प्राणान् (लोकम्) संसारम् (प्रजापतिम्) प्रजापालकम् (परमेष्ठिनम्) अ० १ । ७ । २ । उत्तमपदे मोक्षे स्थितिमन्तम् (विराजम्) विविधजगतः प्रकाशकं परमेश्वरम् (गर्भो भूत्वा) गर्भवन्नियमेन स्थित्वा (अमृतस्य) अमरणस्य मोक्षस्य (योनौ) उत्पत्तिस्थाने । वेदज्ञाने (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् ।

(इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्य वाला [अथवा सूर्य समान प्रतापी] (भूत्वा) होकर (असुरान्) असुरों [दुष्ट पाखण्डियों] को (ततर्ह) नष्ट किया है ७॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी वेदविद्या, प्राणविद्या, लोकविद्या, और ईश्वर स्वरूप का प्रकाश करके मोक्ष मार्ग में दृढ़ होकर ऐश्वर्य प्राप्त करता और पाखण्डों को नष्ट करता है॥ ७॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च। ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ८

आ-चार्यः। ततक्ष। नभसी इति। उभे इति। इमे इति। उर्वी इति। गम्भीरे इति। पृथिवीम्। दिवम्। च॥ ते इति। रक्षति। तपसा। ब्रह्म-चारी। तस्मिन्। देवाः। सम्-मनसः। भवन्ति॥ ८॥

भाषार्थ—(आचार्यः) आचार्य [साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ाने वाले] ने (उभे) दोनों (इमे) इन (नभसी) परस्पर बंधी हुई, (उर्वी) चौड़ी, (गम्भीरे) गहरी (पृथिवीम्) पृथिवी) (च) और (दिवम्) सूर्य को (ततक्ष) सूक्ष्म बनाया है [उपयोगी किया है]। (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (ते) उन दोनों की (रक्षति) रक्षा करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (संमनसः) एकमन (भवन्ति) होते हैं॥८॥

सूर्यवत्तेजस्वी वा (ह) निश्चयेन (भूत्वा) (असुरान्) सुरविरोधिनो दुष्टान् पाखण्डिनः (ततर्ह) तृह हिंसायाम् लिट्। नाशितवान्॥

८—(आचार्यः) म० १। सङ्गोपाङ्गवेदाध्यापकः (ततक्ष) तक्षू तनूकरणे-लिट्। सूक्ष्मीकृतवान् (नभसी) अ० ५। १८। ५। णह बन्धने-असुन्, हस्य भः। परस्परबद्धे (उभे) (इमे) (उर्वी) विस्तीर्णे (गम्भीरे) अतलस्पर्शे (पृथिवीम्) भूमिम् (दिवम्) सूर्यम् (च) (ते) द्यावापृथिव्यौ (रक्षति) पालयति (तपसा) स्वब्रह्मचर्यनियमेन (ब्रह्मचारी) म० १। व्रती। अन्यद् व्याख्यातम् म० १॥

भावार्थ—आचार्य और ब्रह्मचारी श्रवण, मनन और निदिध्यासन से विद्या प्राप्त करके संसार के पृथिवी सूर्य आदि सब पदार्थों का तत्त्व जानकर उन्हें उपयोगी बनाते हैं ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद प्रथम मन्त्र के दूसरे पाद में आ चुका है ॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

इमाम् । भूमिम् । पृथिवीम् । ब्रह्म-चारी । भिक्षाम् । आ । जभार । प्रथमः । दिवम् । च ॥ ते इति । कृत्वा । सम्-इधौ । उप । आस्ते । तयोः । आर्पिता । भुवनानि । विश्वा ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इमाम्) इस (पृथिवीम्) चौड़ी (भूमिम्) भूमि (च) और (दिवम्) सूर्य को (प्रथमः) पहिले [प्रधान] (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (भिक्षाम्) भिक्षा (आ जभार) लिया था। (ते) उन दोनों को (समिधौ) दो समिधा [के समान] (कृत्वा) बनाकर (उप आस्ते) [ईश्वर की] उपासना करता है, (तयोः) उन दोनों में (विश्वा) सब (भुवनानि) भुवन (आर्पिता) स्थापित हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—महाविद्वान् पुरुष पृथिवी और सूर्य आदि के तत्त्वों को जानकर और उपयोगी बनाकर, होमीय अग्नि में दो काष्ठ छोड़कर उन [भूमि और सूर्य] को लक्ष्य में रखता है कि वह इस प्रकार सब संसार का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे ॥ ९ ॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ

९—(इमाम्) दृश्यमानाम् (भूमिम्) (पृथिवीम्) प्रथिताम्। विस्तृताम् (ब्रह्मचारी) म० १ (भिक्षाम्) याच्ञाम् (आ जभार) आजहार। समन्ताद् गृहीतवान् (प्रथमः) प्रधानः (दिवम्) सूर्यम् (च) (ते) द्यावापृथिव्यौ (कृत्वा) विधाय (समिधौ) समिद्रूपे (उपास्ते) परमात्मनं परिचरति (तयोः) द्यावापृथिव्योर्मध्ये (आर्पिता) समन्तात् स्थापितानि (भुवनानि) लोकाः (विश्वा) सर्वाणि ॥

ब्राह्मणस्य । तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १० ॥ (१४)

अर्वाक् । अन्यः । परः । अन्यः । दिवः । पृष्ठात् । गुहा । निधी इति नि-धी । नि-हितौ । ब्राह्मणस्य ॥ तौ । रक्षति । तपसा । ब्रह्म-चारी । तत् । केवलम् । । कृणुते । ब्रह्म । वि-द्वान् ॥ १० ॥ (१४)

भाषार्थ—(ब्राह्मणस्य) ब्रह्मज्ञान के (निधी) दो निधि [कोश] (गुहा) गुहा [गुप्त दशा] में (निहितौ) गढ़े हैं, (अन्यः) एक (अर्वाक्) समीपवर्ती और (अन्यः) दूसरा (दिवः) सूर्य की (पृष्ठात्) पीठ [उपरिभाग] से (परः) परे [दूर] है । (तौ) उन दोनों [निधियों] को (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) अपने तप से (रक्षति) रखता है, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] को (विद्वान्) जानता हुआ वह (तत्) उस [ब्रह्म] को (केवलम्) केवल [सेवनीय, निश्चित] (कृणुते) कर लेता है ॥ १० ॥

भावार्थ—परमेश्वर का ज्ञान निकट और दूर अवस्था में रहकर सब स्थानों में वर्तमान है, अनन्यवृत्ति, ब्रह्मचारी योगी तप की महिमा से ब्रह्म का साक्षात् करके और उसकी शरण में रहकर अपनी शक्तियां बढ़ाता है ॥१०

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे । तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ११

अर्वाक् । अन्यः । इतः । अन्यः । पृथिव्याः । अग्नी इति ।

१०—(अर्वाक्) समीपवर्त्ती (अन्यः) एको निधिः (परः) परस्तात् । दूरम् (अन्यः) अपरः (दिवः) सूर्यस्य (पृष्ठात्) उपरिभागात् (गुहा) गुहायाम् । गुप्तदशायाम् (निधी) धनकोशौ (निहितौ) निक्षिप्तौ (ब्राह्मणस्य) ब्रह्मसम्बन्धिज्ञानस्य (तौ) निधी (रक्षति) (तपसा) (ब्रह्मचारी) (तत्) ब्रह्म (केवलम) अ० ३ । १८ । २ । सेवनीयम् । निश्चितम (कृणुते) करोति (ब्रह्म) परमात्मानम् (विद्वान्) विदन् । जानन् ॥

सुम्-एतः । नभसी इति । अन्तरा । इमे इति ॥ तयोः । श्रयन्ते । रश्मयः । अधि । दृढाः । तान् । आ । तिष्ठति । तपसा । ब्रह्म-चारी ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(अग्नी) दो अग्नि (इमे) इन दोनों (नभसी अन्तरा) परस्पर बंधे हुये सूर्य और पृथिवी के बीच (समेतः) मिलती हैं, (अन्यः) एक [अग्नि] (अर्वाक्) समीपवर्ती, और (अन्यः) दूसरी (इतः पृथिव्याः) इस पृथिवी से [दूर] है। (तयोः) उन दोनों की (रश्मयः) किरणें (दृढाः) दृढ़ होकर (अधि) अधिकार पूर्वक [पदार्थों में] (श्रयन्ते) ठहरती हैं, (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तपसा) तप से (तान्) उन [किरणों] में (आतिष्ठति) ऊपर बैठता है ॥ ११ ॥

भावार्थ—पृथिवी और सूर्य की दोनों अग्नि मिलकर पदार्थों में बल प्रदान करती हैं। ब्रह्मचारी योगी सूक्ष्म दृष्टि [अथवा अणिमा लघिमा सिद्धियों] द्वारा उन किरणों में प्रवेश करता ॥११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

अभि-क्रन्दन् । स्तनयन् । अरुणः । शितिङ्गः । बृहत् । शेपः । अनु । भूमौ । जभार ॥ ब्रह्म-चारी । सिञ्चति । सानौ । रेतः । पृथिव्याम् । तेन । जीवन्ति । प्र-दिशः । चतस्रः ॥१२॥

११—(अर्वाक्) समीपवर्ती (अन्यः) एकोऽग्निः (इतः) अस्याः (अन्यः) अपरः (पृथिव्याः) पृथिवीलोकात् परस्तात् (अग्नी) तापौ (समेतः) मिलित्वा आगच्छतः (नभसी) म० ८। परस्परबद्धे द्यावापृथिव्यौ (अन्तरा) मध्ये (इमे) दृश्यमाने (तयोः) अग्न्योः (श्रयन्ते) तिष्ठन्ति (रश्मयः) किरणाः (अधि) अधिकारपूर्वकम् (दृढाः) स्थिराः (तान्) रश्मीन् (आ तिष्ठति) अधितिष्ठति (तपसा) तपोबलेन (ब्रह्मचारी) म० १ ॥

भाषार्थ—(अभिक्रन्दन्) सब ओर शब्द करता हुआ, (स्तनयन्) गरजता हुआ, (शितिङ्गः) प्रकाश और अन्धकार में चलनेवाला, (अरुणः) गतिमान् [वा सूर्य के समान् प्रतापी पुरुष] (भूमौ) भूमि पर (बृहत्) बड़ा (शेपः) उत्पादन सामर्थ्य (अनु) निरन्तर (जभार) लाया है। (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (सानौ) पहाड़ के सम स्थान पर (रेतः) बीज (सिञ्चति) सींचता है, (तेन) उस से (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशायें (जीवन्ति) जीवन करती हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ—विद्वान् पुरुषार्थी ब्रह्मचारी यन्त्र, कला, नौका, यान, विमान आदि वृद्धि के अनेक साधनों से पृथिवी के जल, थल और पहाड़ों को उपजाऊ बनाता है ॥ १२ ॥

इस मन्त्र का चौथा पाद-अथर्व० ९। १० । १९, के पाद ४, तथा ऋग्वेद १ । १६४ । ४२, पाद २ में है ॥

अ॒ग्नौ सूर्ये॑ च॒न्द्रम॑सि॒ मात॑रिश्वन् ब्रह्मचा॒र्यु॑१प्सु स॒मिध॒मा द॑धाति । तासा॑मु॒र्चीं॑षि॒ पृथ॑ग॒भ्रे च॑रन्ति॒ तासा॒माज्यं॒ पुरु॑षो व॒र्षमापः॑ ॥ १३ ॥

अ॒ग्नौ । सूर्ये॑ । च॒न्द्रम॑सि । मात॑रिश्वन् । ब्र॒ह्म॒ऽचा॒री । अ॒प्ऽसु । स॒म्ऽइध॑म् । आ । द॒धा॒ति॒ ॥ तासा॑म् । अ॒र्चींषि॑ । पृथ॑क् ।

१२—(अभिक्रन्दन्) अभितः शब्दं कुर्वन् (स्तनयन्) गर्जन् (अरुणः) अर्तेश्च । उ० ३ । ६० । ऋ गतौ-उनन्, स च चित् । गतिमान् । सूर्यः (शितिङ्गः) क्रमितमिशतिस्तम्भामत इच्च । उ० ४ । १२२ । शत हिंसायाम्-इन्, स च कित्, अत इकारः । खच्प्रकरणे गमेः सुप्युपसंख्यानम् । खच्च डिद्वा वक्तव्यः । वा० पा० ३ । २ । ३८ । शिति+गम-खच्, स च डित् । शितिः शुक्लः कृष्णश्च तयोर्मध्ये गच्छति यः सः । प्रकाशान्धकारयोर्मध्ये समानगमनः । शितिपात्— अ० ३ । २९ । १ । (बृहत्) महत् (शेपः) अ० ४ । ३७ । ७ । उत्पादनसामर्थ्यम् (अनु) निरन्तरम् (भूमौ) पृथिव्याम् (जभार) जहार । प्रापितवान् (सिञ्चति) वर्षति (सानौ) पर्वतस्थे समभूमिदेशे (रेतः) बीजम् (पृथिव्याम्) (तेन) कर्मणा (जीवन्ति) प्राणान् धारयन्ति (प्रदिशः) प्राच्याद्या महादिशः । तत्रस्थाः प्राणिनः (चतस्रः) चतुःसंख्याकाः ॥

अभ्रे । चरन्ति । तासाम् । आज्यम् । पुरुषः । वर्षम् । आपः ॥१३॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अग्नौ) अग्नि में, (सूर्ये) सूर्य में, (चन्द्रमसि) चन्द्रमा में, (मातरिश्वन्) आकाश में चलने वाले पवन में और (अप्सु) जल धाराओं में (समिधम्) समिधा [प्रकाशसाधन] को (आ दधाति) सब प्रकार से धरता है। (तासाम्) उन [जलधाराओं] की (अर्चींषि) ज्वालायें (पृथक्) नाना प्रकार से (अभ्रे) मेघ में (चरन्ति) चलती हैं, (तासाम्) उन [जल धाराओं] का (आज्यम्) घृत [सार पदार्थ] (पुरुषः) पुरुष, (वर्षम्) वृष्टि और (आपः) सब प्रजायें हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी अपने विद्याबल से अग्नि, सूर्य आदि के तत्त्वों को जान लेता है और उस जल का भी ज्ञान प्राप्त करता है जो बिजुली के संसर्ग से वृष्टि होकर मनुष्य, जल, और सब प्राणी आदि की सृष्टि का कारण होता है ॥ १३ ॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्व१राभृतम् ॥ १४ ॥

आ-चार्यः । मृत्युः । वरुणः । सोमः । ओषधयः । पयः ॥ जीमूताः । आसन् । सत्वानः । तैः । इदम् । स्वः । आ-भृतम् ॥१४॥

भाषार्थ—(आचार्यः) आचार्य (मृत्युः) मृत्यु [रूप] (वरुणः) जल [रूप], (सोमः) चन्द्र [रूप], (ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि रूप]

१३—(अग्नौ) पार्थिवतापे (सूर्ये) आदित्ये (चन्द्रमसि) चन्द्रलोके (मातरिश्वन्) अ० ५। १०। ८। विभक्तेर्लुक्। मातरि मानकर्तरि आकाशे गमनशीले वायौ (ब्रह्मचारी) म० १ (अप्सु) जलधारासु (समिधम्) प्रकाशसाधनम् (आ दधाति) सम्यग् धरति (तासाम्) अपाम् (अर्चींषि) तेजांसि (पृथक्) नानारूपेण (अभ्रे) जलधारके मेघे (चरन्ति) (तासाम्) (आज्यम्) घृतम्। सारपदार्थमः (पुरुषः) (वर्षम्) वृष्टिजलम् (आपः) आप्ताः प्रजाः—दयानन्दभाष्ये, यजु० ६। २७ ॥

१४—(आचार्यः) म० १। साङ्गोपाङ्गरहस्यवेदाध्यापकः (मृत्युः) मृत्युरूपः (वरुणः) जलरूपः (सोमः) चन्द्ररूपः (पयः) दुग्धरूपः (जी-

और (पयः) दूध [रूप] हुआ है। (जीमूताः) अनावृष्टि जीतने वाले, मेघ [उस के लिये] (सत्वानः) गतिशील वीर [रूप] (आसन्) हुये हैं, (तैः) उन के द्वारा (इदम्) यह (स्वः) मोक्षसुख (आभृतम्) लाया गया है ॥१४॥

भावार्थ—आचार्य, साङ्गोपाङ्ग और सरहस्य वेदों का पढ़ाने वाला पुरुष, दोषों के नाश करने को मृत्यु रूप और सद्गुणों के बढ़ाने को जल, चन्द्र आदि रूप होकर संसार में मेघों के समान सुख बढ़ाता है ॥ १४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ। तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः॥१५

अमा। घृतम्। कृणुते। केवलम्। आ-चार्यः। भूत्वा। वरुणः। यत्-यत्। ऐच्छत्। प्रजा-पतौ॥ तत्। ब्रह्म-चारी। प्र। अयच्छत्। स्वान्। मित्रः। अधि। आत्मनः॥ १५॥

भाषार्थ—(वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (आचार्यः) आचार्य (भूत्वा) होकर [उस वस्तु को] (अमा) घर में (घृतम्) प्रकाशित और (केवलम्) केवल [सेवनीय] (कृणुते) करता है, (यद्यत्) जो (प्रजापतौ) प्रजापति [प्रजापालक परमेश्वर] के विषय में (ऐच्छत्) उस ने चाहा है। और (तत्) उसको (मित्रः) स्नेही (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी ने (आत्मनः) अपने से (अधि) अधिकार पूर्वक (स्वान्) ज्ञाति के लोगों को (प्र अयच्छत्) दिया है॥ १५॥

मूताः) जेमूर्द् चोदात्तः। उ० ३। ६१। जि जये-क, मूडागमो धातोर्दीर्घश्च। जयन्त्यनावृष्टिं ये। मेघाः (आसन्) (सत्वानः) अ० ५। २०। ८। षद्लृ गतौ-क्वनिप्। गतिशीलाः। वीररूपाः (तैः) मेघैः (इदम्) उपस्थितम् (स्वः) सुखम् (आहृतम्) आहृतम्। प्राप्तम्॥

१५—(अमा) गृहनाम—निघ० ३। ४। गृहे (घृतम्) प्रकाशितम् (कृणुते) करोति (केवलम्) सेवनीयम् (आचार्यः) म० १ (भूत्वा) (वरुणः) श्रेष्ठः पुरुषः (यद्यत्) यत्किञ्चित् (ऐच्छत्) इष्टवान् (प्रजापतौ) प्रजापालके परमेश्वरे (तत्) (ब्रह्मचारी) म० १ (प्रायच्छत्) दत्तवान् (स्वान्) सुपां सुपो भवन्ति। वा० पा० ७। १। ३६। चतुर्थ्यां द्वितीया। स्वेभ्यः। ज्ञातिभ्यः (मित्रः) स्नेही (अधि) अधिकारपूर्वकम् (आत्मनः) स्वकीयात्॥

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी होकर ब्रह्म-विद्या का उपार्जन करे और उसको आत्मीय वर्गों में यथावत् फैलावे ॥ १५ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी ॥ १६ ॥
आ-चार्यः । ब्रह्म-चारी । ब्रह्म-चारी । प्रजा-पतिः ॥ प्रजा-पतिः । वि । राजति । वि-राट् । इन्द्रः । अभवत् । वशी ॥१६॥

भावार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (आचार्यः) आचार्य, और (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [ही] (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक मनुष्य, होता है]। और (प्रजापतिः) प्रजापति [प्रजापालक होकर] (वि) विविध प्रकार (राजति) राज्य करता है, (विराट्) विराट् [बड़ा राजा] (वशी) वश में करने वाला, [शासक] (इन्द्रः) इन्द्र, [बड़े ऐश्वर्य वाला] (अभवत्) हुआ है ॥ १६ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी सर्वशिक्षक, और प्रजापालन नीति में चतुर होकर प्रजा का पालन और शासन करके बड़ा प्रतापी होता है, यह नियम पहिले से चला आता है ॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७ ॥
ब्रह्म-चर्येण । तपसा । राजा । राष्ट्रम् । वि । रक्षति ॥
आ-चार्यः । ब्रह्म-चर्येण । ब्रह्म-चारिणम् । इच्छते ॥ १७ ॥

भावार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेद विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा) राजा (राष्ट्रम्) राज्य को (वि) विशेष करके (रक्षति)

१६—(आचार्यः) म० १ (ब्रह्मचारी) म० १ (प्रजापतिः) प्रजापालकः पुरुषः (वि) विविधम् (राजति) शासको भवति (विराट्) विविधं शासकः अधिराजः (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्तः (वशी) वशयिता । शासकः । अन्यद् गतम् ॥

१७—(ब्रह्मचर्येण) अ० ७ । १०६ । ७ । ब्रह्म + चर गतौ-यत् । आत्मनिग्रह-वेदाध्ययनादिना (तपसा) तपश्चरणेन (राजा) (राष्ट्रम्) राज्यम् (वि)

पालता है। (आचार्यः) आचार्य [अङ्गों, उपाङ्गों और रहस्य सहित वेदों का अध्यापक] (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेद विद्या और इन्द्रिय दमन] से (ब्रह्मचारिणम्) ब्रह्मचारी [वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष] को (इच्छते) चाहता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचर्य रूप तपस्या धारण करने वाला राजा प्रजापालन में निपुण होता है और ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य, विद्या वृद्धि के लिये ब्रह्मचारी से प्रीति करता है ॥ १७ ॥

मन्त्र १७, १८, १९ स्वामी दयानन्द कृत ऋगवेदादिभाष्यभूमिका वर्णाश्रम विषय पृष्ठ २३७ और मंत्र १७, १८ संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात हैं ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ १८ ॥

ब्रह्म-चर्येण । कन्या । युवानम् । विन्दते । पतिम् ॥
अनड्वान् । ब्रह्म-चर्येण । अश्वः । घासम् । जिगीर्षति ॥१८॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियनिग्रह] से (कन्या) कन्या [कामना योग्य पुत्री] (युवानम्) युवा [ब्रह्मचर्य से बलवान्] (पतिम्) पति [पालनकर्ता वा ऐश्वर्यवान् भर्ता] को (विन्दते) पाती है। (अनड्वान्) [रथ ले चलने वाला] बैल और (अश्वः) घोड़ा (ब्रह्मचर्येण)

विशेषेण (रक्षति) पालयति (आचार्यः) (ब्रह्मचर्येण) (ब्रह्मचारिणम्) वेदाध्ययनशीलं शिष्यम् (इच्छते) अभिलष्यति ॥

१८—(ब्रह्मचर्येण) म० १७ । आत्मनिग्रहवेदाध्ययनादिना (कन्या) अघ्न्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । कन प्रीतिद्युतिगतिषु-यक्, टाप् । कन्या कमनीया भवति क्वेयं नेतव्येति वा कमनेनानीयत इति वा कनतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः—निरु० ४ । १५ । कमनीया । पुत्री (युवानम्) अ० ६ । १ । २ । प्राप्तयुवावस्थाकम् । बलवन्तम् (विन्दते) लभते (पतिम्) पातेर्डतिः । उ० ४ । ५७ । पा रक्षणे-डति । यद्वा, सर्वधातुभ्य इन । उ० ४ । ११८ । पत ऐश्वर्ये-इन् । पालकम् । ऐश्वर्यवन्तम् । भर्तारम् (अनड्वान्) अ० ४ । ११ । १ । अनस् +

ब्रह्मचर्य के साथ [नियम से ऊर्ध्वरेता होकर] (घासम्=घासेन) घास से (जिगीर्षति) सींचना [गर्भाधान करना] चाहता है ॥ १८ ॥

भावार्थ—कन्या ब्रह्मचर्य से पूर्ण विदुषी और युवती होकर पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान् युवा पुरुष से विवाह करे, और जैसे बैल घोड़े आदि बलवान् और शीघ्रगामी पशु घास तिनके खाकर ब्रह्मचर्य नियम से समय पर बलवान् सन्तान उत्पन्न करते हैं, वैसे ही मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी, विद्वान् युवा होकर अपने सदृश कन्या से विवाह करके नियम पूर्वक बलवान्, सुशील सन्तान उत्पन्न करें ॥ १८ ॥

वैदिक यन्त्रालय अजमेर, और गवर्नमेंट बुकडिपो बम्बई के पुस्तकों में (जिगीर्षति) पद है जिसका अर्थ [सींचना चाहता है] है, और सेवकलाल कृष्णदास वाले पुस्तक और महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में (जिगीषति) है जिसका अर्थ [जीतना चाहता है] है ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्व१राभरत् ॥ १९ ॥

ब्रह्म-चर्येण । तपसा । देवाः । मृत्युम् । अप । अघ्नत ।
इन्द्रः । ह । ब्रह्म-चर्येण । देवेभ्यः । स्वः । आ । अभरत् ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन], (तपसा) तप से (देवाः) विद्वानों ने (मृत्युम्) मृत्यु [मृत्यु के कारण निरुत्साह, दरिद्रता आदि] को (अप) हटाकर (अघ्नत) नष्ट किया है । (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य [नियम पालन] से (ह) ही (इन्द्रः) सूर्य ने (देवेभ्यः)

वह प्रापणे-क्विप्, अनसो डश्च । रथवाहको वृषभः (ब्रह्मचर्येण) (अश्वः) शीघ्रगामी घोटकः (घासम्) घस भक्षणे-घञ् । तृतीयार्थे द्वितीया । घासेन । गवां-भक्ष्यतृणभेदेन (जिगीर्षति) गॄ सेचने-सन् । गर्तुं सेक्तुं निषेक्तुं गर्भाधानं कर्तुमिच्छति । जिगीषतीति पक्षे, जि जये-सन् । जेतुमिच्छति ॥

१९—(ब्रह्मचर्येण) म० १७ (तपसा) तपश्चरणेन (देवाः) विद्वांसः (मृत्युम्) मरणकारणं निरुत्साहनिर्धनत्वादिकम् (अप) निवार्य (अघ्नत) नाशितवन्तः (इन्द्रः) सूर्यः (ह) एव (ब्रह्मचर्येण) ईश्वरनियमपालनेन

उत्तम पदार्थों के लिये (स्वः) सुख अर्थात् प्रकाश को (आ अभरत्) धारण किया है ॥ १६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग वेदों को पढ़ने और इन्द्रियों को वश में करने से आलस्य, निर्धनता आदि दूर करके मोक्ष सुख प्राप्त करते हैं, और सूर्य, ईश्वर नियम पूरा करके, अपने प्रकाश से संसार में उत्तम उत्तम पदार्थ प्रकट करता है ॥ १६ ॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥ (१५)

ओषधयः । भूत-भव्यम् । अहोरात्रे इति । वनस्पतिः ॥ सम्-वत्सरः । सह । ऋतु-भिः । ते । जाताः । ब्रह्म-चारिणः । ॥२०॥(१५)

भाषार्थ—(ओषधयः) ओषधें [अन्न आदि पदार्थ] और (वनस्पतिः) वनस्पति [पीपल आदि वृक्ष], (भूतभव्यम्) भूत और भविष्यत् जगत, (अहोरात्रे) दिन और राति । (ऋतुभिः सह) ऋतुओं के सहित (संवत्सरः) वर्ष [जो हैं], (ते) वे सब (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी [वेदपाठी और इन्द्रिय निग्राहक पुरुष] से (जाताः) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥ २० ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी पिछले मनुष्यों के उदाहरण से भविष्यत् सुधार कर ओषधि और समय आदि से उपकार लेकर उन्हें प्रसिद्ध करता है ॥ २० ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।

(देवेभ्यः) उत्तमपदार्थानां प्राप्तये (स्वः) सुखं प्रकाशम् (आ) समन्तात् (अभरत्) धारितवान् ॥

२०—(ओषधयः) अ० १ । २३ । १ । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः । मनु० १ । ४६ । ओषः पाको धीयते यासु । व्रीहयवाद्याः (भूतभव्यम्) अतीतमुत्पत्स्यमानं च जगत् (अहोरात्रे) दिनं रात्रिश्च (वनस्पतिः) अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः । मनु० १ । ४७ । अश्वत्थादिवृक्षः (संवत्सरः) अ० १ । ३५ । ४ । सम्+वस निवासे—सरन् । वर्षकालः (सह) (ऋतुभिः) वसन्ताद्यैः कालविशेषैः (ते) पूर्वोक्ताः (जाताः) प्रसिद्धाः भवन्ति (ब्रह्मचारिणा) ब्रह्मचारिसकाशात् ॥

अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥ २१ ॥

पार्थिवाः। दिव्याः। पशवः। आरण्याः। ग्राम्याः। च। ये ॥ अपक्षाः। पक्षिणः। च। ये। ते। जाताः। ब्रह्म-चारिणः॥२१॥

भाषार्थ—(पार्थिवाः) पृथिवी के और (दिव्याः) आकाश के पदार्थ और (ये) जो (आरण्याः) वन के (च) और (ग्राम्याः) गांव के (पशवः) पशु हैं। (अपक्षाः) विना पंख वाले (च) और (ये) जो (पक्षिणः) पंख वाले जीव हैं, (ते) वे (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी से (जाताः) प्रसिद्ध [होते हैं] ॥ २१ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी ही पृथिवी आदि के पदार्थों और जीवों के गुणों को प्रकाशित करता है ॥ २१ ॥

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२ ॥

पृथक्। सर्वे। प्राजा-पत्याः। प्राणान्। आत्म-सु। बिभ्रति ॥ तान्। सर्वान्। ब्रह्म। रक्षति। ब्रह्म-चारिणि। आ-भृतम् २२

भाषार्थ—(सर्वे) सब (प्राजापत्याः) प्रजापति [परमात्मा] के उत्पन्न किये प्राणी (प्राणान्) प्राणों को (आत्मसु) अपने में (पृथक्) अलग अलग (बिभ्रति) धारण करते हैं। (तान् सर्वान्) उन सब [प्राणियों] को (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी में (आभृतम्) भर दिया गया (ब्रह्म) वेदज्ञान (रक्षति) पालता है ॥ २२ ॥

२१—(पार्थिवाः) पृथिवीभवाः पदार्थाः (दिव्याः) आकाशभवाः (पशवः) गवाश्वसिंहादयः (आरण्याः) वने भवाः (ग्राम्याः) ग्रामे भवाः (अपक्षाः) पक्षरहिताः प्राणिनः (पक्षिणः) पक्षवन्तः (च)। अन्यत् पूर्ववत् म० २० ॥

२२—(पृथक्) भिन्नभिन्नप्रकारेण (सर्वे) (प्राजापत्याः) अ० ३। २३। ५। प्रजापति-ण्य। प्रजापालकेन परमेश्वरेण सृष्टाः प्राणिनः (प्राणान्) (आत्मसु) शरीरेषु (बिभ्रति) धारयन्ति (तान्) सर्वान् प्राणिनः (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (रक्षति) पालयति (ब्रह्मचारिणि) (आभृतम्) समन्ताद् धृतं पोषितं वा ॥

भावार्थ—परमेश्वर के नियम से सब प्राणी शरीर धारण करके ब्रह्मचर्य के पालन से उन्नति करते हैं ॥ २२ ॥

देवानांमेतत् परिषूतमनंभ्यारूढं चरति रोचंमानम् । तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् २३

देवानाम् । एतत् । परि-सूतम् । अनंभि-आरूढम् । चरति । रोचंमानम् ॥ तस्मात् । जातम् । ब्राह्मणम् । ब्रह्म । ज्येष्ठम् । देवाः । च । सर्वे । अमृतेन । साकम् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(देवानाम्) प्रकाशमान लोकों का (परिषूतम्) सर्वथा चलाने वाला, (अनभ्यारूढम्) कभी न हराया गया, (रोचमानम्) प्रकाशमान (एतत्) यह [व्यापक ब्रह्म] (चरति) विचारता है , (तस्मात्) उस [ब्रह्मचारी] से (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्ट (ब्राह्मणम्) ब्रह्मज्ञान और (ब्रह्म) वृद्धिकारक धन (जातम्) प्रकट [होता है], (च) और (सर्वे देवाः) सब विद्वान् (अमृतेन साकम्) अमरपन [मोक्षसुख] के साथ [होते हैं] ॥ २३ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी सर्वप्रेरक सर्वशक्तिमान् परमात्मा के गुणों को प्रकट करके संसार में ज्ञान और धन बढ़ाकर सबको मोक्ष सुख का अधिकारी बनाता है ॥ २३ ॥

इस मन्त्र का तीसरा, और चौथा पाद मन्त्र ५ में आचुका है ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजंद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः । प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४ ॥

ब्रह्म-चारी । ब्रह्म । भ्राजंत् । बिभर्ति । तस्मिन् । देवाः । अधि । विश्वे । सम्-ओताः ॥ प्राणापानौ । जनयन् । आत् ।

२३—(देवानाम्) प्रकाशमानानां लोकानाम् (एतत्) एतेस्तुट च । उ० १ । १३३ । इण् गतौ-अदि तुट् च । व्यापकं ब्रह्म (परिषूतम्) षू क्षेपे प्रेरणे-क्त । परितः सूतम् । सर्वतः प्रेरकम् (अनभ्यारूढम्) अनाक्रान्तं सर्वोत्कृष्टम्(चरति) व्याप्नोति (रोचमानम्) दीप्यमानम् । अन्यद् व्याख्यातम् म० ५ ॥

वि-आनम् । वाचम् । मनः । हृदयम् । ब्रह्म । मेधाम् ॥२४॥

भाषार्थ—(भ्राजत्) प्रकाशमान (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी [वेद पाठक और वीर्य निग्राहक पुरुष] (ब्रह्म) वेदज्ञान को (बिभर्ति) धारण करता है, (तस्मिन्) उस [ब्रह्मचारी] में (विश्वे देवाः) सब उत्तम गुण (अधि) यथावत् (समोताः) ओत प्रोत होते हैं। वह [ब्रह्मचारी] (प्राणापानौ) प्राण और अपान [श्वास प्रश्वास विद्या] को, (आत्) और (व्यानम्) व्यान [सर्वशरीरव्यापक वायु विद्या] को, (वाचम्) वाणी [भाषण विद्या] को, (मनः) मन [मनन विद्या] को, (हृदयम्) हृदय [के ज्ञान] को, (ब्रह्म) ब्रह्म [परमेश्वर ज्ञान] को और (मेधाम्) धारणावती बुद्धि को (जनयन्) प्रकट करता हुआ [वर्तमान होता है] ॥ २४ ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारी वेदों के शब्द, अर्थ और सम्बन्ध जानकर और सम्पूर्ण उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर अनेक विद्याओं का प्रकाश करता और बुद्धि का चमत्कार दिखाता है ॥ २४ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि वेदारम्भ प्रकरण में व्याख्यात है ॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥ २५ ॥

चक्षुः । श्रोत्रम् । यशः । अस्मासु । धेहि । अन्नम् । रेतः । लोहितम् । उदरम् ॥ २५ ॥

भाषार्थ—[हे ब्रह्मचारी !] (अस्मासु) हम लोगों में (चक्षुः) नेत्र,

---

२४—(ब्रह्मचारी) म० १। वेदाध्येता (ब्रह्म) वेदज्ञानम् (भ्राजत्) शृद्भसोऽदिः। उ० १। १३०। भ्राजृ दीप्तौ-अदि। प्रकाशमानः (बिभर्ति) धरति (तस्मिन्) ब्रह्मचारिणि (देवाः) दिव्यगुणाः (अधि) अधिकारपूर्वकम् (विश्वे) सर्वे (समोताः) सम्+आङ्+वेञ् तन्तुसन्ताने-क्त। अन्तर्व्याप्ताः (प्राणापानौ) श्वासप्रश्वासयोर्विद्याम् (जनयन्) प्रकटयन् (आत्) अनन्तरम् (व्यानम्) सर्वशरीरव्यापकवायुविद्याम् (वाचम्) भाषणविद्याम् (मनः) मननविद्याम् (हृदयम्) हृदयविद्याम्। (ब्रह्म) ब्रह्मविद्याम् (मेधाम्) धारणावतीं बुद्धिम् ॥

२५—(चक्षुः) रूपग्राहकमिन्द्रियम् (श्रोत्रम्) शब्दग्राहकमिन्द्रियम्

(श्रोत्रम्) कान, (यशः) यश, (अन्नम्) अन्न, (रेतः) वीर्य, (लोहितम्) रुधिर और (उदरम्) उदर [की स्वस्थता] (धेहि) धारण कर॥ २५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि वेदवेत्ता विवेकी विद्वान् से नेत्रादि की स्वस्थता की शिक्षा प्राप्त करके आत्मा की शुद्धि से यशस्वी बलवान् होवें ॥ २५ ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे । स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ।२६। (१६)

तानि । कल्पत् । ब्रह्म-चारी । सलिलस्य । पृष्ठे । तपः । अतिष्ठत् । तप्यमानः । समुद्रे ॥ सः । स्नातः । बभ्रुः । पिङ्गलः । पृथिव्याम् । बहु । रोचते ॥ २६ ॥ (१६)

भाषार्थ—(ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (तानि) उन [कर्मों] को (कल्पत्) करता हुआ (समुद्रे) समुद्र [के समान गम्भीर ब्रह्मचर्य] में (तपः तप्यमानः) तप तपता हुआ [वीर्यनिग्रह आदि तप करता हुआ] (सलिलस्य पृष्ठे) जल के ऊपर [विद्यारूप जल में स्नान करने के लिये] (अतिष्ठत्) स्थित हुआ है। (सः) वह (स्नातः) स्नान किये हुये [स्नातक ब्रह्मचारी] (बभ्रुः) पोषण करने वाला और (पिङ्गलः) बलवान् होकर (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (बहु) बहुत (रोचते) प्रकाशमान होता है ॥ २६ ॥

(यशः) कीर्तिम् (अस्मासु) (धेहि) धारय (अन्नम्) भोजनम् (रेतः) वीर्यम् (लोहितम्) रुधिरस्वास्थ्यम् (उदरम्) जठरस्वास्थ्यम् ॥

२६—(तानि) पूर्वोक्तकर्माणि (कल्पत्) कल्पयन् (ब्रह्मचारी) म० १ । वेदाध्येता वीर्यनिग्राहकः पुरुषः (सलिलस्य) विद्यारूपजलस्य (पृष्ठे) उपरिभागे (तपः) इन्द्रियनिग्रहादितपश्चरणम् (अतिष्ठत्) स्थितवान् (तप्यमानः) कुर्वाणः (समुद्रे) समुद्ररूपे गम्भीरे ब्रह्मचर्ये (सः) ब्रह्मचारी (स्नातः) विद्यायां कृतस्नानः । वेदाध्ययनान्तरं कृतसमावर्तनाङ्गस्नानः । स्नातकः (बभ्रुः) कुर्भ्रश्च । उ० १ । २२ । डु भृञ् धारणपोषणयोः—कु द्वित्वञ्च । पोषकः (पिङ्गलः) कुटिकशिकौतिभ्यो मुट् च । उ० । १ । १०६ । पिजि वर्णे, दीप्तौ, वासे, बले, हिंसायां दानेच—कल । दीप्यमानः । बलवान् (पृथिव्याम्) भूलोके (बहु) विविधम् (रोचते) दीप्यते ॥

भावार्थ—तपस्वी ब्रह्मचारी वेदपठन, वीर्यनिग्रह, और आचार्य की सन्तुष्टि से विद्या में स्नातक होकर और समावर्तन करके अपने उत्तम गुण कर्म से संसार का उपकार करता हुआ यशस्वी होता है ॥ २६ ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत संस्कारविधि समावर्तन प्रकरण में व्याख्यात है ॥

सूक्तम् ६ ॥

१—२३ ॥ मन्त्रोक्ताग्न्यादयो देवताः ॥ १—५, ७—११, १३, १६, १७, १९-२२ अनुष्टुप्; ६, १२, १४, १५ निचृदनुष्टुप्; १८ निचृत्पथ्या पङ्क्तिः; २३ भुरिगनुष्टुप् ॥

कष्टनिवारणायोपदेशः—कष्ट हटानेके लिये उपदेश ॥

अ॒ग्निं ब्रू॑मो॒ वन॒स्पती॒नोष॑धीरु॒त वी॒रुधः॑ ।
इन्द्रं॒ बृह॒स्पतिं॒ सूर्यं॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १ ॥

अ॒ग्निम् । ब्रू॒मः॑ । वन॒स्पती॑न् । ओष॑धीः । उ॒त । वी॒रुधः॑ ॥
इन्द्र॑म् । बृह॒स्पति॑म् । सूर्य॑म् । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः ॥१ ॥

भाषार्थ—(अग्निम्) अग्नि, (वनस्पतीन्) वनस्पतियों [बड़े वृक्षों] (ओषधीः) ओषधियों [अन्न आदिकों], (उत) और (वीरुधः) [विविध प्रकार उगने वाली] जड़ी बूटियों, (इन्द्रम्) इन्द्र [मेघ] और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े लोकों के पालन करने वाले (सूर्यम्) सूर्य का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १ ॥

भावार्थ—विद्वानों को योग्य है कि अग्नि आदि पदार्थों के गुण जानकर, उनसे यथावत् उपकार लेकर दुःखों का नाश करें ॥ १ ॥

ब्रू॒मो राजा॑नं॒ वरु॑णं मि॒त्रं विष्णु॒मथो॒ भग॑म् ।

१—(अग्निम्) (ब्रूमः) कथयामः । स्तुमः (वनस्पतीन्) पिप्पलादिमहावृक्षान् (ओषधीः) अन्नादिरूपाः (उत) अपि च (वीरुधः) विरोहणशीला लताः (इन्द्रम्) मेघम् (बृहस्पतिम्) बृहतां लोकानां पालकम् (सूर्यम्) आदित्यम् (ते) पूर्वोक्ताः (नः) अस्मान् (मुञ्चन्तु) मोचयन्तु, (अंहसः) अमे हुक् च । उ० ४ । २१३ । अम रोगे पीडने च-असुन् हुक्त् च । कष्टात् ॥

अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २ ॥

ब्रूमः । राजानम् । वरुणम् । मित्रम् । विष्णुम् । अथो इति । भगम् ॥ अंशम् । विवस्वन्तम् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(वरुणम्) श्रेष्ठ (राजानम्) राजा, (मित्रम्) मित्र, (विष्णुम्) कर्मों में व्यापक विद्वान् (अथो) और (भगम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (अंशम्) विभाग करने वाले और (विवस्वन्तम्) विविध स्थान में निवास करने वाले पुरुष का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ २ ॥

भावार्थ—धार्मिक राजा और सब विद्वान् पुरुष मिलकर परस्पर रक्षा करके यश प्राप्त करें ॥ २ ॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ३ ॥

ब्रूमः । देवम् । सवितारम् । धातारम् । उत । पूषणम् ॥ त्वष्टारम् । अग्रियम् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(देवम्) विजयी, (सवितारम्) प्रेरक, (धातारम्) धारण करने वाले (उत) और (पूषणम्) पोषण करने वाले पुरुष को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। (अग्रियम्) अग्रगामी (त्वष्टारम्) सूक्ष्मदर्शी पुरुष को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥३॥

२—(राजानम्) ईशितारम्। शासकम् (वरुणम्) श्रेष्ठम् (मित्रम्) स्नेहिनम् (विष्णुम्) कर्मसु व्यापकं पण्डितम् (अथो) अपिच (भगम्) भगवन्तम्। ऐश्वर्यवन्तम् (अंशम्) विभाजकम् (विवस्वन्तम्) वि+वस निवासे क्विप्, मतुप्, मस्य वः। विविधस्थाने निवासशीलम्। अन्यत् पूर्ववत् म० ॥ १ ॥

३—(देवम्) विजयिनम् (सवितारम्) प्रेरकम् (धातारम्) धारकम् (उत) अपि च (पूषणम्) पोषकम् (त्वष्टारम्) त्वक्षू तनूकरणे–तृन्। सूक्ष्मीकर्तारम्। प्रवीणं पुरुषम् (अग्रियम्) अ० ५। २। ८। अग्रेभवम्। अन्यत् पूर्ववत् म० १॥

भावार्थ—जहां पर शूरवीर विद्वान् पुरुष होते हैं, वे परस्पर रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४ ॥

गन्धर्व-अप्सरसः । ब्रूमः । अश्विना । ब्रह्मणः । पतिम् ॥ अर्यमा । नाम । यः । देवः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥४॥

भाषार्थ—(गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों और अप्सरों [आकाश में चलने वाले पुरुषों] को और (अश्विना) कामों में व्यापक रहने वाले दोनों [माता पिता के समान हितकारी] (ब्रह्मणः पतिम्) वेद के रक्षक [आचार्य आदि] को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं । (यः) जो (अर्यमा) न्यायकारी (नाम) प्रसिद्ध (देवः) विजयी पुरुष है] उसको भी], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ४ ॥

भावार्थ—हम विविध विद्या निपुण पुरुषों से सहाय लेकर परस्पर रक्षा करें ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वानादित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ५ ॥

अहोरात्रे इति । इदम् । ब्रूमः । सूर्याचन्द्रमसौ । उभा ॥ विश्वान् । आदित्यान् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(इदम्) अब (अहोरात्रे) दिन और राति का और (उभा)

४—(गन्धर्वाप्सरसः) अ० ८ । ८ । १५ । गां पृथिवीं धरन्ति ये ते गन्धर्वाः । अप्सु आकाशे सरन्ति ते अप्सरसः । तान् पुरुषान् (ब्रूमः) (अश्विना) अ० २ । २९ । ६ । कार्येषु व्याप्तिमन्तौ जननीजनकौ यथातथा हितकारिणम् (ब्रह्मणस्पतिम्) वेदस्य रक्षकमाचार्यम् (अर्यमा) अ० ३ । १४ । २ । अरीणां नियामकः । न्यायकारी पुरुषः (नाम) प्रसिद्धौ (यः) (देवः) विजयी । अन्यद् गतम्-म० १ ॥

५—(अहोरात्रे) (इदम्) इदानीम् (ब्रूमः) (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य-

दोनों (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य और चन्द्रमा का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (विश्वान्) सब (आदित्यान्) प्रकाशमान विद्वानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों के सत्सङ्ग से सूर्य और चन्द्रमा की विद्या और नियम जानकर अपने समय का सुप्रबन्ध करें ॥ ५ ॥

वातं ब्रूमः पुर्जन्यमुन्तरिक्षमथो दिशः ।

आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ६ ॥

वातम् । ब्रूमः । पुर्जन्यम् । अन्तरिक्षम् । अथो इति । दिशः ॥ आशाः । च । सर्वाः । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(वातम्) वायु, (पर्जन्यम्) मेघ, (अन्तरिक्षम्) आकाश (अथो) और (दिशः) दिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (च) और (सर्वाः) सब (आशाः) विदिशाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य वायु, मेघ, अन्तरिक्ष और दिशा और विदिशाओं के पदार्थों से उपकार लेकर सुखी होवें ॥ ६ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।

सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥ ७ ॥

मुञ्चन्तु । मा । शपथ्यात् । अहोरात्रे इति । अथो इति । उषाः ॥ सोमः । मा । देवः । मुञ्चतु । यम् । आहुः । चन्द्रमाः । इति ॥ ७ ॥

चन्द्रविद्यां नियमं च (उभा) उभौ (विश्वान्) सर्वान् (आदित्यान्) अ० १। ६। १। आङ् दीपी दीप्तौ-यक्। आदीप्यमानान्। प्रकाशमानान् विदुषः पुरुषान्। शेषं गतम्-म० १ ॥

६—(वातम्) वायुम् (ब्रूमः) (पर्जन्यम्) अ० २। १। २। पृषु सेचने-अन्यप्रत्ययः, षस्य जकारः। सेचकं मेघम् (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (अथो) अपि च (दिशः) पूर्वाद्याः (आशाः) विदिशः (च) (सर्वाः) समस्ताः। अन्यद् गतम्-म० १ ॥

भाषार्थ—(अहोरात्रे) दिन और राति (अथो) और (उषाः) उषा [प्रभात वेला] (मा) मुझे (शपथ्यात्) शपथ में होने वाले दोष से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें। (देवः) उत्तम गुण वाला (सोमः) ऐश्वर्यवान्, (यम्) जिसको, "(चन्द्रमाः इति) यह चन्द्रमा है"—(आहुः) कहते हैं, (मा) मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य दिन राति और प्रातः सायं चन्द्रमा के समान शान्त स्वभाव होकर सत्य शपथ आदि वचन करके आनन्द भोगें ॥ ७ ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८ ॥

पार्थिवाः । दिव्याः । पशवः । आरण्याः । उत । ये । मृगाः ॥
शकुन्तान् । पक्षिणः । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ८

भाषार्थ—(ये) जो (पार्थिवाः) पृथिवी के, (दिव्याः) आकाश के (पशवः) प्राणी (उत) और (आरण्याः) जंगल के (मृगाः) जन्तु हैं [उनको]। और (शकुन्तान्) शक्ति वाले (पक्षिणः) पक्षियों को (ब्रूमः) हम पुकारते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रयत्न करें कि पृथिवी, जङ्गल और आकाश के सब प्राणी सुखदायक होवें ॥ ८ ॥

इस मन्त्र का मिलान—अथर्व० ११ । ५ । २१ ॥ से करो ॥

७—(मुञ्चन्तु) मोचयन्तु (मा) माम् (शपथ्यात्) शपथे सत्यताकरणाय दिव्यभेदे भवाद् दोषात् (अहोरात्रे) (उषाः) प्रभातवेला (सोमः) ऐश्वर्यवान् (मा) माम् (देवः) उत्तमगुणयुक्तः (मुञ्चतु) वियोजयतु (यम्) (आहुः) कथयन्ति (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (इति) वाक्यसमाप्तौ ॥

८—(पार्थिवाः) पृथिवीभवाः (दिव्याः) आकाशे भवाः (पशवः) प्राणिनः (आरण्याः) जङ्गलभवाः (उत) (ये) (मृगाः) जन्तवः (शकुन्तान्) शकेरुनोन्तोन्त्युनयः । उ० ३ । ४६ । शक्लृ शक्तौ—उन्तप्रत्ययः । शक्तियुक्तान् (पक्षिणः) वयांसि । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥ ९ ॥
भवाशर्वौ । इदम् । ब्रूमः । रुद्रम् । पशु-पतिः । च । यः ॥ इषूः ।
याः । एषाम् । सम्-विद्म । ताः । नः । सन्तु । सदा । शिवाः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इदम्) अब (भवाशर्वौ) भव [सुखोत्पादक] और शर्व [दुःखनाशक दोनों पुरुषों] को (च) और (रुद्रम्) रुद्र [ज्ञान दाता पुरुष] को, (यः) जो (पशुपतिः) प्राणियों का रक्षक है, (ब्रूमः) हम पुकारते हैं। [इसलिये कि] (एषाम्) इन सब के (याः इषूः) जिन तीरों को (संविद्म) हम पहिचानते हैं, (ताः) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जिन पुरुषों के अस्त्रशस्त्रधारी योद्धा पुरुष सहायक होते हैं हैं, वे शत्रुओं का नाश करके सुख पाते हैं ॥ ९ ॥

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १० ॥ (१७)
दिवम् । ब्रूमः । नक्षत्राणि । भूमिम् । यक्षाणि । पर्वतान् ॥
समुद्राः । नद्यः । वेशन्ताः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥ १० (१७)

भाषार्थ—(दिवम्) आकाश, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों, (भूमिम्) भूमि, (यक्षाणि) पुण्य स्थानों, और (पर्वतान्) पर्वतों का (ब्रूमः) हम कथन

९—(भवाशर्वौ) अ० ४ । २८ । १ । सुखोत्पादकशत्रुनाशकौ पुरुषौ (इदम्) इदानीम् (ब्रूमः) (रुद्रम्) अ० २ । २७ । ६ । रु गतौ—क्विप्, तुक्+ रा दाने—क । ज्ञानदातारम् (पशुपतिः) प्राणिरक्षकः (च) (यः) (इषूः) शरान् (याः) (एषाम्) पूर्वोक्तानाम् (सं विद्म) सम्यग् जानीमः (ताः) इषवः (नः) अस्मभ्यम् (सन्तु) (सदा) (शिवाः) सुखहेतवः ॥

१०—(दिवम्) आकाशम् (ब्रूमः) (नक्षत्राणि) णक्ष गतौ—अत्रन्। तारागणान् (भूमिम्) (यक्षाणि) यक्ष पूजायाम्—घञ् । पूजास्थानानि । पुण्य-

करते हैं। (समुद्राः) सब समुद्र, (नद्यः) नदियां और (वेशन्ताः) सरोवर [जो हैं उनका भी], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य आकाश, नक्षत्र, भूमि आदि पदार्थों के गुण कर्म जानकर और उनका यथावत् उपयोग करके आनन्दित रहें ॥ १० ॥

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ११ ॥

सप्त-ऋषीन् । वै । इदम् । ब्रूमः । अपः । देवीः । प्रजा-पतिम् ॥
पितॄन् । यम-श्रेष्ठान् । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ११

भाषार्थ—(इदम्) अब (वै) निश्चय करके (सप्तर्षीन्) सात ऋषियों [व्यापनशील वा दर्शनशील अर्थात् त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा, नाक मन और बुद्धि] का (देवीः) [उनकी] दिव्य गुणवाली (अपः) व्याप्तियों का और (प्रजापतिम्) प्रजापति [प्रजा पालक आत्मा] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यमश्रेष्ठान्) यम नियमों को श्रेष्ठ [प्रधान] रखने वाले (पितॄन्) पालन करने वाले गुणों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य सब इन्द्रियों, मन बुद्धि, उनकी शक्तियों, आत्मा और यम नियमों से पाने योग्य उत्तम गुणों का यथावत् विचार करके दुःखसे निवृत्ति पावें ॥ ११ ॥

क्षेत्राणि (पर्वतान्) शैलान् (समुद्राः) (नद्यः) सरितः (वेशन्ताः) जॄविशिभ्यां झच् । उ० ३ । १२६ । विश प्रवेशने झच् । अल्पजलाशयाः । अन्यत् पूर्ववत्–म० १ ॥

११—(सप्तर्षीन्) अ० ४ । ११ । ६ । सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे- यजु० ३४ । ५५ । त्वक्चक्षुःश्रवणरसनाघ्राणमनोबुद्धीः (वै) एव (इदम्) इदानीम् (ब्रूमः) (अपः) व्यापनशक्तीः (देवीः) दिव्यगुणयुक्ताः (प्रजापतिम्) प्रजापालकमात्मानम् (पितॄन्) पालकान् गुणान् (यमश्रेष्ठान्) यमनियमाः श्रेष्ठाः प्रधाना येषां तान् । अन्यत् पूर्ववत्–म० १ ॥ ११ ॥

ये दे॒वा दि॑वि॒षदो॑ अ॒न्तरि॑क्ष॒सद॑श्च॒ ये ।

पृ॒थि॒व्यां श॒क्रा ये श्रि॒तास्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १२ ॥

ये । दे॒वाः । दि॒वि॒-सदः॑ । अ॒न्त॒रि॒क्ष॒-सदः॑ । च॒ । ये ॥ पृ॒थि॒व्याम् । श॒क्राः । ये । श्रि॒ताः । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः१२

भाषार्थ—(ये) जो (देवाः) दिव्य गुण (दिविषदः) सूर्य में वर्तमान (च) और (ये) जो (अन्तरिक्षसदः) अन्तरिक्ष में व्याप्त हैं। और (ये) जो (शक्राः) शक्तिवाले गुण (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (श्रिताः) स्थित हैं, (ते) (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य सूर्य आदि के गुणों को साक्षात् करके सुख प्राप्त करें ॥ १२ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध—अथर्व० १० । ६ । १२ में आ चुका है ॥

आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वो दि॒वि दे॒वा अथ॑र्वाणः ।

अङ्गि॑रसो मनी॒षिण॒स्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १३ ॥

आ॒दि॒त्याः । रु॒द्राः । वस॑वः । दि॒वि । दे॒वाः । अथ॑र्वाणः ॥ अङ्गि॑रसः । म॒नी॒षिणः॑ । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः ॥ १३

भाषार्थ—(दिवि) विजय की इच्छा में [वर्तमान] (आदित्याः) प्रकाशमान, (रुद्राः) दुःखनाशक, (वसवः) निवास कराने वाले, (देवाः) व्यवहार कुशल (अथर्वाणः) निश्चल स्वभाव, (अङ्गिरसः) ज्ञानी और (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग [जो हैं], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १३ ॥

१२—(ये) (देवाः) दिव्यगुणाः (दिविषदः) सूर्ये स्थिताः (अन्तरिक्षसदः) अन्तरिक्षे वर्तमानाः (च) (ये) (पृथिव्याम्) भूमौ (शक्राः) अ० २। ५ । ४ । शक्तिमन्तः (ये) (श्रिताः) स्थिताः । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

१३—(आदित्याः) अ० १ । ६ । १ । आदीप्यमानाः (रुद्राः) अ० २। २७ । ६ । दुःखनाशकाः (वसवः) वासयितारः (दिवि) विजिगीषायाम् (देवाः) व्यवहारकुशलाः (अथर्वाणः) अ० ४ । १ । ७ । निश्चलस्वभावाः (अङ्गिरसः) अ० २ । १२ । ४ । ज्ञानिनो महर्षयः (मनीषिणः) अ० ३ । ५ । ६ । मेधाविनः—निघ० ३ । १५ । अन्यत् पूर्ववत्—म० १ ॥

भावार्थ—तेजस्वी, महर्षि महात्मा लोग इन्द्रियदमन आदि से बाहिरी और भीतरी दोषों का नाश करते हैं ॥ १३ ॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १४ ॥

यज्ञम् । ब्रूमः । यजमानम् । ऋचः । सामानि । भेषजा ॥
यजूंषि । होत्राः । ब्रूमः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१४॥

भाषार्थ—(यज्ञम्) यज्ञ [सङ्गति करण आदि व्यवहार], (यजमानम्) यजमान [सङ्गति करण आदि व्यवहार करने वाले], (ऋचः) ऋचाओं [स्तुति विद्याओं] और (भेषजा) भय निवारक (सामानि) मोक्ष ज्ञानों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (यजूंषि) सत्कर्मों के ज्ञानों और (होत्राः) [दान करने और ग्रहण करने योग्य] वेद विद्याओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे [पदार्थ] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥१४॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है यज्ञ, यज्ञकर्त्ता और पदार्थों के गुण और मोक्ष विद्याओं आदि के तत्त्वज्ञान से आनन्द प्राप्त करें ॥ १४ ॥

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५ ॥

पञ्च । राज्यानि । वीरुधाम् । सोम-श्रेष्ठानि । ब्रूमः ॥
दर्भः । भङ्गः । यवः । सहः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१५॥

भाषार्थ—(वीरुधाम्) जड़ी बूटियों के (सोमश्रेष्ठानि) सोम [ओषधि

१४—(यज्ञम्) सङ्गतिकरणादिव्यवहारम् (यजमानम्) सङ्गतिकरणादिव्यवहारसाधकम् (ऋचः) अ० ६ । २८ । १ । स्तुतिविद्याः (सामानि) अ० ७ । ५४ । १ । षो अन्तकर्मणि-मनिन् । मोक्षज्ञानानि (भेषजा) भयनिवारकाणि (यजूंषि) अ० ७ । ५४ । २ । सत्कर्मज्ञानानि (होत्राः) हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन् । उ० ४ । १६८ । हु दानादानयोः—त्रन् , टाप् । दानादानयोग्या वेदवाचः । होत्रा वाङ्नाम-निघ० १ । ११ (ते) पूर्वोक्ताः पदार्थाः । अन्यत् पूर्ववत्-म० १ ॥

१५—(पञ्च) पत्रकाण्डपुष्पफलमूलरूपाणि (राज्यानि) राज्ञा भिषजा

विशेष] को प्रधान रखने वाले (पञ्च) पांच [पत्ता, डंडी, फूल, फल और जड़ रूप] (राज्यानि) राज्यों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [रोगों का] (दर्भः) चीर फाड़ना, (भङ्गः) नाश करना, (यवः) मिलाना [भरदेना] और (सहः) बल [यह उनके गुण हैं], (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्य सोम आदि जड़ी बूटियों के पत्ते आदि के गुणों से यथोचित उपकार लेकर रोग निवृत्ति करके हृष्ट पुष्ट रहें ॥ १५ ॥

अ॒रा॒यान्ब्रू॑मो॒ रक्षां॑सि स॒र्पान्पु॑ण्यज॒नान्पि॒तॄन् ।
मृ॒त्यूनेक॑श॒तं ब्रू॑म॒स्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १६ ॥

अ॒रा॒यान् । ब्रू॒मः॒ । रक्षां॑सि । स॒र्पान् । पु॒ण्य॒-ज॒नान् । पि॒तॄन् ॥
मृ॒त्यून् । एक॑-श॒तम् । ब्रू॒मः॒ । ते । नः॒ । मु॒ञ्च॒न्तु॒ । अंह॑सः ॥१६॥

भाषार्थ—(अरायान्) अदाताओं, (रक्षांसि) राक्षसों, (सर्पान्) सर्पों [सर्प समान क्रूर स्वभावों], (पुण्यजनान्) पुण्यात्माओं और (पितॄन्) पालनकर्ताओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (एकशतम्) एक सौ एक [अपरिमित] (मृत्यून्) मृत्युओं [मृत्यु के कारणों] का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य दुःखदायी दुष्टों के त्याग से और पुण्यात्माओं के सत्सङ्ग से मृत्यु के कारणों से बचकर सदा आनन्द भोगें ॥ १६ ॥

नियुज्यमानानि कर्माणि (वीरुधाम्) विरोहणशीलानां लतादीनाम् (सोमश्रेष्ठानि) सोम ओषधिविशेषः श्रेष्ठः प्रशस्यतमो येषां तथाविधानि (दर्भः) दृदलिभ्यां भः । उ० ३ । १५१ । दृ विदारणे- भप्रत्ययः । रोगविदारणगुणः (भङ्गः) भञ्जो आमर्दने-घञ् । नाशनगुणः (यवः) मिश्रणगुणः (सहः) बलम् । प्रभावः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१६—(अरायान्) अ + रा दानादानयोः-घञ्, युक् । अदातॄन् (रक्षांसि) राक्षसान् (सर्पान्) सर्पवत् क्रूरान् (पुण्यजनान्) पूञो यण् णुग्घ्रस्वश्च । उ० ५ । १५ । पूञ् शोधने-यत्, णुक् ह्रस्वत्वं च । पवित्रात्मनः (पितॄन्) पालकान् (मृत्यून्) मरणकारणानि (एकशतम्) अ० ३ । ९ । ६ । एकोत्तरशतसंख्याकान् । अपरिमितान् । अन्यत् पूर्ववत् ॥

ऋ॒तून् ब्रू॑म ऋ॒तु॒पती॑नार्त॒वानु॒त हा॑य॒नान्।
समाः॑ संवत्स॒रान् मासां॒स्ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः ॥ १७ ॥

ऋ॒तून्। ब्रू॒मः। ऋ॒तु-पती॑न्। आ॒र्त॒वान्। उ॒त। हा॒य॒नान्॥
समाः॑। स॒म्-व॒त्स॒रान्। मासा॑न्। ते। नः॒। मु॒ञ्च॒न्तु॒। अंह॑सः॥१७

भाषार्थ—(ऋतून्) ऋतुओं, (ऋतुपतीन्) ऋतुओं के स्वामियों [सूर्य, वायु आदिकों], (आर्तवान्) ऋतुओं से उत्पन्न होने वाले (हायनान्) पाने योग्य चावल आदि पदार्थों, (संवत्सरान्) वरसों, (मासान्) महीनों (उत) और (समाः) सब अनुकूल क्रियाओं का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १७ ॥

भावार्थ—ज्ञानी पुरुष ज्योतिष आदि विद्या से वसन्त आदि ऋतुओं, और उनके कारणों सूर्य, चन्द्र, वायु, पृथिवी आदि और उनकी अनुकूल क्रियाओं से सब काल में उपकार लेकर आनन्द पावें ॥ १७ ॥

यह मन्त्र बहुत कुछ-अथर्व० ३। १०। ९ से मिलता है ॥

एत॑ देवा दक्षिण॒तः प॒श्चात् प्राञ्च॑ उ॒देत॑। पु॒रस्तादु॑-
त्त॒राच्छ॒क्रा विश्वे॑ दे॒वाः स॒मेत्य॒ ते नो॑ मुञ्च॒न्त्वंह॑सः॥१८॥

आ। इ॒त॒। दे॒वाः। द॒क्षि॒ण॒तः। प॒श्चात्। प्राञ्चः॑। उ॒त्-
एत॑॥ पु॒रस्ता॑त्। उ॒त्त॒रा॒त्। श॒क्राः। विश्वे॑। दे॒वाः। स॒म्-
एत्य॑। ते। नः॒। मु॒ञ्च॒न्तु॒। अंह॑सः॥ १८ ॥

भाषार्थ—(देवाः) हे देवताओ ! [वीर पुरुषो] (दक्षिणतः) दक्षिण

१७—(ऋतून्) अ० ३। १०। ९। वसन्तादिकालान् (ऋतुपतीन्) सूर्यचन्द्रपृथिवीवाय्वादीन् देवान् (आर्तवान्) अ० ३। १०। ९। ऋतूद्भवान् (उत) अपि च (हायनान्) अ० ३। १०। ९। ओ हाङ् गतौ-ण्युट्। प्राप्तव्यान् व्रीह्याद्यान् भोज्यपदार्थान् (समाः) अ० २। ६। १। अनुकूलाः क्रियाः (संवत्सरान्) वर्षकालान् (मासान्) चैत्रादिकालान्। अन्यत् पूर्ववत्॥

१८—(एत) आगच्छत (देवाः) विजिगीषवः (दक्षिणतः) दक्षिण-

से (आ इत) आवो (पश्चात्) पश्चिम से, (पुरस्तात्) पूर्व से (उत्तरात्) उत्तर से, (शक्राः) शक्तिमान् (विश्वे) सब (देवाः) महात्माओ तुम (समेत्य) मिलकर (प्राञ्चः) आगे बढ़ते हुए (उदेत) ऊपर आओ, (ते) वे [आप] (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥ १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य सब देशों के वीर विद्वानों से विद्या प्राप्त करके विपत्तियों को हटावें ॥ १८ ॥

विश्वा॑न् दे॒वानि॒दं ब्रू॑मः स॒त्यसं॑धानृ॒तावृ॑धः ।
विश्वा॑भिः पत्नी॑भिः स॒ह ते नो॑ मुञ्चन्त्वंह॑सः ॥ १९ ॥

विश्वा॑न् । दे॒वान् । इ॒दम् । ब्रू॒मः॒ । स॒त्य-सं॑धान् । ऋ॒त-वृ॑धः
विश्वा॑भिः । पत्नी॑भिः । स॒ह । ते । नः॒ । मु॒ञ्चन्तु॒ । अंह॑सः १९

भाषार्थ—(इदम्) अब (विश्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वालों, (सत्यसंधान्) सत्य प्रतिज्ञा वालों और (ऋतवृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (विश्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन शक्तियों] के साथ (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ १९ ॥

भावार्थ—मनुष्य वीर, सत्यवक्ता, सत्यकर्मी और सत्य विद्याओं के प्रचारक स्त्री पुरुषों के सत्संग और सहाय से सुख बढ़ावें ॥ १९ ॥

सर्वा॑न् दे॒वानि॒दं ब्रू॑मः स॒त्यसं॑धानृ॒तावृ॑धः ।
सर्वा॑भिः पत्नी॑भिः स॒ह ते नो॑ मुञ्चन्त्वंह॑सः ॥ २० ॥

सर्वा॑न् । दे॒वान् । इ॒दम् । ब्रू॒मः॒ । स॒त्य-सं॑धान् । ऋ॒त-वृ॑धः ॥
सर्वा॑भिः । पत्नी॑भिः । स॒ह । ते । नः॒ । मु॒ञ्चन्तु॒ । अंह॑सः २०

देशात् (पश्चात्) पश्चिमदेशात् (प्राञ्चः) प्रकर्षेण गच्छन्तः (उदेत) उदयं प्राप्नुत (पुरस्तात्) पूर्वदेशात् (उत्तरात्) उत्तरदेशात् (शक्राः) शक्तिमन्तः (विश्वे) सर्वे (देवाः) महात्मानः (समेत्य) समागत्य । अन्यत् पूर्ववत् ॥

१९—(विश्वान्) सर्वान् (देवान्) विजिगीषून् (इदम्) इदानीम् (सत्यसंधान्) सत्यप्रतिज्ञान् (ऋतवृधः) सत्यज्ञानस्य वर्धयितॄन् (पत्नीभिः) अ० २ । १२ । १ । योषिद्भिः । पालनशक्तिभिः (सह) अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—(इदम्) अब (सर्वान्) सब (देवान्) व्यवहार जानने वालों, (सत्यसंधान्) सत्य के खोजने वालों, और (ऋतवृधः) सत्य ज्ञान से बढ़ने वालों का (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। [अपनी] (सर्वाभिः) सब (पत्नीभिः सह) पत्नियों [वा पालन शक्तियों] के साथ, (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) बचावें ॥ २० ॥

भावार्थ—मनुष्य सब व्यवहारकुशल, सत्यशील, धर्म्मात्मा स्त्री पुरुषों से शिक्षा प्राप्त करके आनन्दित होवें ॥ २० ॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ २१ ॥

भूतम् । ब्रूमः । भूत-पतिम् । भूतानाम् । उत । यः । वशी ॥
भूतानि । सर्वा । सम्-गत्य । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः॥२१॥

भाषार्थ—(भूतम्) ऐश्वर्यवान्, विचारशील [योगीन्द्र] का, (भूतपतिम्) प्राणियों के पालन कर्ता का, (उत) और (भूतानाम्) तत्त्वों [पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश द्रव्यों] को (यः) जो (वशी) वश करने वाला पुरुष है [उसका] (ब्रूमः) हम कथन करते हैं। (सर्वा) सब (भूतानि) प्राणियों से (संगत्य) मिलकर (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) कष्ट से (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्य जितेन्द्रिय, सर्वहितैषी, तत्त्ववेत्ता जनों से गुण ग्रहण कर के क्लेश का नाश करें ॥ २१ ॥

२०—(सर्वान्) समस्तान् (देवान्) व्यवहारिणः पुरुषान् (सत्यसंधान्) सत्या संधा, अनुसन्धानमन्वेषणं येषां तान् (ऋतवृधः) सत्यज्ञानेन वृद्धिशीलान्। धार्मिकान्। अन्यत् पूर्ववत्—म० १६ ॥

२१—(भूतम्) भू सत्तायाम्, शुद्धिचिन्तनयोः, मिश्रणे, प्राप्तौ च-कर्मणि कर्तरि वा-क्त, भूत-अर्शआद्यच्। भूतं विभूतिरैश्वर्यं यस्य तम्। तत्त्वचिन्तनशीलम्। योगीन्द्रम्। शिवम् (भूतपतिम्) प्राणिनां पालकम् (भूतानाम्) पृथिव्यप्तेवाय्वाकाशद्रव्याणाम् (उत) अपि च (यः) (वशी) वशयिता नियन्ता (भूतानि) प्राणिनः। जीवान् (सर्वा) सर्वाणि (संगत्य) मिलित्वा। अन्यत् पूर्ववत् ॥

या दे॒वीः पञ्च॑ प्र॒दिशो॒ ये दे॒वा द्वाद॑श॒र्तवः॑ ।

सं॒व॒त्स॒रस्य॒ ये दंष्ट्रा॒स्ते नः॑ सन्तु॒ सदा॑ शि॒वाः ॥ २२ ॥

याः। दे॒वीः। पञ्च॑। प्र॒-दिशः॑। ये। दे॒वाः। द्वाद॑श। ऋ॒तवः॑॥ स॒म्-व॒त्स॒रस्य॑। ये। दंष्ट्राः॑। ते। नः॒। स॒न्तु॒। सदा॑। शि॒वाः २२

भाषार्थ—(याः) जो (देवीः) उत्तम गुण वाली (पञ्च) पांच [पूर्वादि चार और एक ऊपर-नीचे की] (प्रदिशः) बड़ी दिशायें और (ये) जो (देवाः) उत्तम गुण वाले (द्वादश) बारह [मन, बुद्धि सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय रूप] (ऋतवः) ऋतुयें [चलने वाले पदार्थ] हैं । और (संवत्सरस्य) वर्ष काल के (ये) जो (दंष्ट्राः) डंसने वाले गुण हैं, (ते) वे (नः) हमारे लिये (सदा) सदा (शिवाः) कल्याणकारी (सन्तु) होवें ॥२२॥

भावार्थ—मनुष्य सब स्थानों और सब कालों में मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा शुभ काम करके विघ्नों से बचे ॥ २२ ॥

यन्मात॑ली रथक्रीतम॒मृतं॒ वेद॑ भेष॒जम् ।

तदिन्द्रो॑ अ॒प्सु प्रावे॑शय॒त् तदा॑पो दत्त भेष॒जम् ॥२३॥(१८)

यत्। मात॑ली। र॒थ॒-क्री॒तम्। अ॒मृत॑म्। वेद॑। भे॒ष॒जम्॥ तत्। इन्द्रः॑। अ॒प्-सु। प्र। अ॒वे॒श॒य॒त्। तत्। आपः॑। द॒त्त॒। भे॒ष॒जम् ॥ २३ ॥ (१८)

भाषार्थ—(मातली) इन्द्र [जीव] का रथवान् [मन] (रथक्रीतम्) रथ [शरीर] द्वारा पाये हुये (यत्) जिस (भेषजम्) भयनिवारक (अमृ-

---

२२—(याः) (देवीः) दिव्यगुणयुक्ताः (पञ्च) पञ्चसंख्याकाः । ऊर्ध्वनीच-दिक्सहिताः प्राच्याद्याः (प्रदिशः) प्रधानदिशः (ये) (देवाः) दिव्यगुण-युक्ताः (द्वादश) अ० ४ । ११ । ११ । मनोबुद्धिसहिता दशेन्द्रियरूपाः (ऋतवः) गमनशीलाः पदार्थाः (संवत्सरस्य) वर्षकालस्य (ये) (दंष्ट्राः) सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् । उ० ४ । १५६ । दंश दंशने-ष्ट्रन् । दंशनगुणाः (ते) अन्यद् गतम्-म० ६ ॥

२३—(यत्) (मातली) अ० ८ । ६ । ५ । मतल-इञ्, विभक्तेः पूर्वस-वर्णदीर्घः । मातलिः। इन्द्रस्य जीवस्य सारथिः । मनः (रथक्रीतम्) रथेन

तम्) अमृत [अमरपन, मोक्षसुख] को (वेद) जानता है। (तत्) उस [अमृत] को (इन्द्रः) इन्द्र [परमेश्वर] ने (अप्सु) सब प्रजाओं में (प्र अवेशयत्) प्रवेश किया है, (आपः) हे प्रजाओ ! (तत्) उस (भेषजम्) भय निवारक वस्तु [मोक्षसुख] का (दत्त) दान करो ॥ २३ ॥

भावार्थ—जो मोक्षसुख शरीर द्वारा प्राप्त होकर मन से अनुभव किया जाता है, वह मोक्ष सुख ईश्वर नियम से सब प्राणियों को प्राप्य है। उसके पाने का प्रत्येक मनुष्य प्रयत्न करे ॥ २३ ॥

इस मन्त्र का मिलान अथर्व० ८। ६। ५ से करो।

इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ।

सूक्तम् ॥ ७ ॥

१—२७ ॥ उच्छिष्टो देवता ॥ १—५, ७—१०, १२—२०, २३—२७ अनुष्टुप्; ६, २१ भुरिगनुष्टुप्; ११ पथ्या पङ्क्तिः; २२ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

सर्वजगत्कारणपरमात्मोपदेशः—सब जगत् के कारण परमात्मा का उपदेश ॥

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।

उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥१॥

उत्-शिष्टे । नाम । रूपम् । च । उत्-शिष्टे । लोकः । आ-हितः ॥ उत्-शिष्टे । इन्द्रः । च । अग्निः । च । विश्वम् । अन्तः । सम्-आहितम् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [उत्पत्ति और प्रलय से बचे हुये अनन्त परमेश्वर] में [संसार के] (नाम) नाम (च) और (रूपम्) रूप हैं,

---

शरीरेण प्राप्तम् (अमृतम्) मोक्षसुखम् (वेद) जानाति (भेषजम्) भयनिवारकम् (तत्) अमृतम् (इन्द्रः) परमेश्वरः (अप्सु) आपः (आप्ताः) प्रजाः—दयानन्दभाष्ये यजु० ६। २७। प्रजासु। प्राणिषु (प्रावेशयत्) प्रविष्टवान् (तत्)(आपः) हे प्रजाः (दत्त) प्रयच्छत (भेषजम्) भयनिवारकं वस्तु। मोक्षसुखम् ॥

१—(उच्छिष्टे) अ० ११। ३। २१। उत्+शिष असर्वोपयोगे—क्त। य उत्पत्तिप्रलयाभ्यां स्थूलसूक्ष्मरचनाभ्यां चोत्कर्षेण शिष्यते शेषो भवति स

(उच्छिष्टे) शेष [परमात्मा] में (लोकः) दृश्यमान संसार (आहितः) रक्खा हुआ है। (उच्छिष्टे अन्तः) शेष [जगदीश्वर] के भीतर (इन्द्रः) मेघ (च) और (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि] (च) भी और (विश्वम्) प्रत्येक पदार्थ (समाहितम्) बटोरा हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ—परमात्मा के सामर्थ्य में यह सब विविध दृश्यमान संसार वर्तमान है ॥ १ ॥

परमेश्वर का नाम (उच्छिष्ट) अर्थात् शेष इस लिये है कि वह नित्य, अनादि, अनन्त और निर्विकार होकर उत्पत्ति और प्रलय से तथा स्थूल और सूक्ष्म रचना से बचा रहता है ॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥

उत्-शिष्टे । द्यावापृथिवी इति । विश्वम् । भूतम् । सम्-आहितम् । आपः । समुद्रः । उत्-शिष्टे । चन्द्रमाः । वातः । आ-हितः ॥ २ ॥

भाषार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [अनन्त परमेश्वर] में (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी और (विश्वम्) प्रत्येक (भूतम्) सत्ता वाला (समाहितम्) एकत्र किया गया है। (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में (आपः) जलधारायें (समुद्रः) समुद्र, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (वातः) पवन (आहितः) रक्खा गया है ॥ २ ॥

भावार्थ—स्पष्ट है ॥

उच्छिष्टस्तस्मिन् शेषे अनन्ते परमेश्वरे (नाम) सृष्टिपदार्थानां नामधेयम् (रूपम्) निरूपणीयं रचनम् (च) (उच्छिष्टे) (लोकः) दृश्यमानः संसारः (आहितः) आरोपितः। आश्रितः (उच्छिष्टे) (इन्द्रः) मेघः (च) (अग्निः) सूर्यादिरूपः (च) अपि (विश्वम्) (सर्वम्। प्रत्येकं वस्तु (समाहितम्) सम्यग् निहितम्। स्थापितम्। राशीकृतम् ॥

२—(द्यावापृथिवी) द्यावापृथिव्यौ। सूर्यभूमी (विश्वम्) प्रत्येकम् (भूतम्) सत्तान्वितं द्रव्यम् (आपः) व्यापनशीला जलधाराः (समुद्रः) जलौघः (चन्द्रमाः) चन्द्रलोकः (वातः) वायुः। अन्यत् पूर्ववत्-म० १ ॥

सन्नुच्छिष्टे असँश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥ ३ ॥

सन् । उत्-शिष्टे । असन् । च । उभौ । मृत्युः । वाजः । प्रजा-पतिः ॥ लौक्याः । उत्-शिष्टे । आ-यत्ताः । व्रः । च । द्रः । च । अपि । श्रीः । मयि ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [मंत्र १ । परमात्मा] में (उभौ) दोनों (सन्) सत्तावाला [दृश्यमान, स्थूल] और (च) (असन्) असत्तावाला [अदृश्यमान परमाणु रूप संसार], (मृत्युः) मृत्यु (वाजः) पराक्रम और (प्रजापतिः) प्रजापालक गुण [हैं] । (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] में (लौक्याः) लौकिक पदार्थ (आयत्ताः) वशीभूत हैं, (च) और (व्रः) समूह [समष्टि रूप संसार] (च) और (द्रः) व्यक्ति [पृथक् पृथक् विशेष पदार्थ] (अपि) भी (मयि) मुझ [प्राणी] में [वर्तमान] (श्रीः) सम्पत्ति [परमात्मा में है] ॥ ३ ॥

भावार्थ—परमात्मा के सामर्थ्य में ही यह सब स्थूल और परमाणु रूप जगत्, मृत्यु आदि और सब प्राणियों की (श्रीः) उत्तम सेवनीय शक्ति वर्तमान है ॥ ३ ॥

दृढो दृंहस्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥ ४ ॥

३—(सन्) अस सत्तायाम्—शतृ । सत्तां प्राप्नुवन् दृश्यमानः स्थूलसंसारः (उच्छिष्टे) म० १ । शेषे परमात्मनि (असन्) असत्तां प्राप्नुवन् । अदृश्यमानः परमाणुरूपःसंसारः (च) (उभौ) सदसतौ (मृत्युः) शरीरत्यागः (वाजः) पराक्रमः (प्रजापतिः) प्रजापालको गुणः (लौक्याः) तत्र भवः । पा० ४ । ३ । ५३ । संसारे विद्यमानाः पदार्थाः (उच्छिष्टे) (आयत्ताः) आङ्+यती प्रयत्ने-क्त । अधीनाः (व्रः) अन्येष्वपिदृश्यते । पा० ३ । २ । १०१ । व्रज गतौ—ड । व्रजः समूहः । समष्टिरूपः (च) (द्रः) द्रु गतौ-डप्रत्ययः पूर्ववत् । व्यक्तिः । व्यष्टिरूपः संसारः (च) (अपि) (श्रीः) सेवनीया संपत् (मयि) प्राणिनि वर्तमाना ॥

दृढः । दृं॒ह॒-स्थि॒रः । न्यः । ब्रह्म॑ । वि॒श्व॒-सृजः॑ । दश॑ ॥
नाभि॑म्-इव । स॒र्वतः॑। च॒क्रम् । उत्-शि॑ष्टे । दे॒वताः॑ । श्रि॒ताः ४

भाषार्थ—(दृढः) दृढ़, (दृंहस्थिरः) वृद्धि के साथ स्थिर और (न्यः) नायक [गुण] (ब्रह्म) वेदज्ञान और (दश) दस [आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी यह पांच भूत, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच तन्मात्रायें] (विश्वसृजः) संसार बनाने वाले (देवताः) दिव्य पदार्थ (उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में (आश्रिताः) आश्रित हैं, (इव) जैसे (नाभिम् सर्वतः) नाभि के सब ओर (चक्रम्) पहिया [पहिये का प्रत्येक अरा लगा होता है] ॥ ४ ॥

भावार्थ—परमात्मा की शक्ति में संसार के उत्तम उत्तम अचल नियम और पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा आदि वर्तमान हैं ॥ ४ ॥

ऋक् साम॒ यजु॒रुच्छि॑ष्ट उद्गी॒थः प्रस्तु॑तं स्तु॒तम् ।
हिङ्का॒र उच्छि॑ष्टे॒ स्वरः॒ साम्नो॑ मे॒डिश्च॒ तन्मयि॑ ॥५॥

ऋक् । साम॑ । यजुः॑ । उत्-शि॑ष्टे । उ॒त्-गी॒थः । प्र-स्तु॑तम् । स्तु॒तम् ॥ हि॒ङ्-का॒रः। उत्-शि॑ष्टे । स्वरः॑ । साम्नः॑। मे॒डिः । च॒ । तत् । मयि॑ ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(उच्छिष्टे) शेष [म० १ परमात्मा] में [वर्तमान]

४—(दृढः) प्रगाढ़ः । कठिनः (दृंहस्थिरः) दृहि वृद्धौ घञ्+ष्ठा गतिनिवृत्तौ किरच् । वृद्ध्या दृढीकृतः (न्यः) कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् । । वा० पा० ३ । २ । ५ । णीञ् प्रापणे—क । छान्दसो यण् देशः । नियः । नायको गुणः (ब्रह्म) (वेदज्ञानम्) (विश्वसृजः) जगतः स्रष्टारः (दश) आकाशवायुतेजोजलपृथिव्यः—इति, पञ्चभूतानि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः—इति पञ्चतन्मात्राणि च दशसंख्याकाः (नाभिम्) चक्रावयवभेदम् (इव) यथा (सर्वतः) उभसर्वतसोः कार्या० । वा० पा० २ । ३ । २ इति सर्वतसो योगे द्वितीया । सर्वं व्याप्य (चक्रम्) रथचक्रम् (उच्छिष्टे) म० १ परमात्मनि (देवताः) देवाः दिव्यपदार्थाः (श्रिताः) स्थिताः ॥

५—(ऋक्) वाक्-निघ० १ । ११ । वेदवाणी (साम) अ० ७ । ५४ ।

(ऋक) वेदवाणी, (साम) मोक्ष विज्ञान, (यजुः) विद्वानों की पूजा, (उद्गीथः) उत्तम गान, [वेदध्वनि आदि], (प्रस्तुतम्) प्रकरण अनुकूल (स्तुतम्) स्तोत्र [गुणों का व्याख्यान] । (उच्छिष्टे) शेष [जगदीश्वर] में [वर्त्तमान] (हिङ्कारः) वृद्धिकारक व्यवहार (स्वरः) स्वर [उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद] (च) और (साम्नः) सामवेद [मोक्षज्ञान] की (मेडिः) वाणी, (तत्) वह [सब] (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥ ५ ॥

भावार्थ—मनुष्य वेद द्वारा मोक्षज्ञान आदि सब उत्तम विद्यायें प्राप्त करके संसार में उपदेश करता हुआ कल्याण पावे ॥ ५ ॥

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥ ६ ॥

ऐन्द्राग्नम् । पावमानम् । महा-नाम्नीः । महा-व्रतम् ॥
उत्-शिष्टे । यज्ञस्य । अङ्गानि । अन्तः। गर्भः-इव । मातरि ६

भाषार्थ—(ऐन्द्राग्नम्) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य, बिजुली आदि] का ज्ञान, (पावमानम्) शुद्धिकारक वायु का ज्ञान, (महानाम्नीः) बड़े नामों वाली [वेद विद्यायें] और (महाव्रतम्) महाव्रत और (यज्ञस्य) यज्ञ [देव पूजा, सङ्गतिकरण और दान व्यवहार] के (अङ्गानि)सब अङ्ग (उच्छिष्टे)

१। दुःखनाशकं मोक्षज्ञानम् (यजुः) अ० ७। ५४। २। देवपूजनम्। विदुषां सत्कारः (उच्छिष्टे) म० १ परमात्मनि (उद्गीथः) गङ्थोदि। उ० २। १०। उद्+गै गाने—थक्। वेदध्वनिः। प्रणवः (प्रस्तुतम्) प्रासङ्गिकम् (स्तुतम्) स्तोत्रम् (हिङ्कारः) अ० ७। ७३। ८। हि गतिवृद्ध्योः—डि+करोतेः—अण्, छान्दसं रूपम्। हिं गतिं वृद्धिं वा करोतीति। वृद्धिकरो व्यवहारः, (उच्छिष्टे) (स्वरः) उदात्तादिभेदः (साम्नः) मोक्षज्ञानस्य (मेडिः) वसिवपियजि०। उ० ४। १२५। मिल संश्लेषणे इञ्। मेलिः, वाङ् नाम-निघ० १। ११। वाणी (च) (तत्) तत्सर्वम् (मयि) उपासके भवेदिति शेषः ॥

६—(ऐन्द्राग्नम्) इन्द्राग्नि—अण्। इन्द्रस्य मेघस्य, अग्नेः सूर्यविद्युनादेश्च ज्ञानम् (पावमानम्) पवमानस्य शुद्धिकारकस्य पवनस्य ज्ञानम् (महानाम्नीः) महान्ति नामानि यासु ता महानाम्न्यः। वेदवाण्यः (महाव्रतम्) पूजा

शेष [म० १ । परमात्मा] में हैं, (इव) जैसे (मातरि अन्तः) माता के [उदर के] भीतर (गर्भः) गर्भ [रहता है] ॥ ६ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर रचित पदार्थों और नियमों के ज्ञान को अपने में धारण करके वृद्धि करे, जैसे माता गर्भ को उदर में रखकर बढ़ाती है ॥ ६ ॥

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥ ७ ॥

राज-सूयम् । वाज-पेयम् । अग्नि-स्तोमः । तत् । अध्वरः ॥
अर्क-अश्वमेधौ । उत्-शिष्टे । जीव-बर्हिः । मदिन्-तमः॥७॥

भाषार्थ—(राजसूयम्) राजसूय [राजतिलक यज्ञ], (वाजयेयम्) वाजपेय [विज्ञान और बल का रक्षक यज्ञ] (अग्निष्टोमः) अग्निष्टोम [आग-वा परमेश्वर वा विद्वान् के गुणों की स्तुति], (तत्) तथा (अध्वरः) सन्मार्ग देने वाला वा हिंसा रहित व्यवहार, (अर्काश्वमेधौ) पूजनीय विचार और अश्वमेध [चक्रवर्ती राज्य पालन की मेधा अर्थात् बुद्धि वाला व्ययहार] और

नीयं व्रतम् (उच्छिष्टे) (यज्ञस्य) देवपूजासङ्गतिकरणदानव्यवहारस्य (अङ्गानि) अवयवाः (अन्तः) मध्ये (गर्भः) (इव) (मातरि ॥

७—(राजसूयम्) अ० ४ । ८ । १ । राजन्+षुञ् अभिषवे—क्यप् । राजाभिषेकयज्ञः (वाजपेयम्) वज गतौ-घञ् । अचो यत् । पा० ३ । १ । ९७ । पा रक्षणे—यत् । ईद्यति । पा० ६ । ४ । ६५ । आत इत्वम, गुणः । वाजो विज्ञानं बलं च पेयं रक्षणीयं यस्मिन् कर्मणि तत् । विज्ञानस्य बलस्य च रक्षको यज्ञः (अग्निष्टोमः) अ० ९ । ६ (४) । २ । अग्नेः पावकस्य परमेश्वरस्य विदुषो वा स्तुतिव्यवहारः (अध्वरः) अ० ३ । २६ । ६ । सन्मार्गदायको हिंसा[illegible] वा व्यवहारः (अर्काश्वमेधौ) अर्कः— अ० ३ । ३ । २ । अर्च पूजायाम्—क । अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्ति—निरु० ५ । ४ । अशूप्रुषिलटि ० । उ० १ । १५१ । अशू व्याप्तौ—क्वन् । अश्विनौ...राजानौ पुण्यकृतौ—निरु० १२ । १ । इति वचनाद् अश्वो राज्यवाचकः । मिधृ मेधृ सङ्गमे हिंसामेधयोश्च—घञ्, टाप् इति मेधा । अर्को मन्त्रः पूजनीयविचारः, अश्वे राज्यव्याप्तौ चक्रवर्तिराज्यपालने मेधा वनी धारणा-

[अन्य] (मदिन्तमः) अत्यन्त हर्षदायक (जीवबर्हिः) जीवों की बढ़ती वाला व्यवहार (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमेश्वर] में हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर की आराधना करते हुये राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध आदि यज्ञों से समस्त प्राणियों को आनन्द देवें ॥ ७ ॥

अ॒ग्न्या॒धे॒यमथो॑ दी॒क्षा का॑म॒प्रश्छन्द॑सा स॒ह ।

उत्स॑न्ना य॒ज्ञाः स॒त्त्राण्यु॒च्छि॒ष्टेऽधि॒ स॒माहि॑ताः ॥ ८ ॥

अ॒ग्नि॒-आ॒धेय॑म् । अथो॒ इति॑ । दी॒क्षा । का॒म॒-प्रः । छन्द॑सा । स॒ह ॥ उ॒त्-स॑न्नाः । य॒ज्ञाः । स॒त्त्राणि॑ । उ॒त्-शि॑ष्टे । अधि॑ । स॒म्-आहि॑ताः ॥ ८ ॥

भाषार्थ—(अग्न्याधेयम्) अग्न्याधान [अग्नि की स्थापना] (अथो) और (दीक्षा) दीक्षा [नियम पालन व्रत] (छन्दसा सह) वेद के साथ (कामप्रः) कामना पूरक व्यवहार, (उत्सन्नाः) ऊंचे चढ़े हुये (यज्ञाः) यज्ञ [पूजनीय व्यवहार] और (सत्राणि) बैठकें (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से मनुष्य को यथावत् उन्नति करने के लिये वेद के साथ सत्यव्रत धारण आदि नियमों का उपदेश किया है ॥८॥

वतीबुद्धिर्यस्मिन् व्यवहारे स च तावुभौ (उच्छिष्टे) म० १ । परमात्मनि (जीवबर्हिः) बृंहेर्नलोपश्च । उ० २ । १०६ । जीव + बृहि बृद्धौ–इसि । जीवानां बृद्धिव्यवहारः (मदिन्तमः) अत इनिठनौ । पा० ५ । २ । ११५ । मद–इनि । मदिन्–तमप् । नाद्घस्य । पा० ८ । २ । १७ । तमपो नुडागमः । अतिशयेन हर्षकरः ॥

८—(अग्न्याधेयम्) अग्नि + आ + दधातेः–यत् । वाजपेयवत् सिद्धिः–म० ७ । अग्न्याधानम् (अथो) अपि च (दीक्षा) अ० ८ । ५ । १५ । नियमपालनव्रतम् (कामप्रः) आतोऽनुपसर्गे कः । पा० ३ । २ । ३ । काम + प्रा पूरणे—क । कामनापूरको व्यवहारः (छन्दसा) वेदेन (सह) साकम् (उत्सन्नाः) उत + षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु–क्त । ऊर्ध्वं गताः । उन्नताः (यज्ञाः) पूजनीया व्यवहाराः (सत्राणि) गुधृवीपचिवचियमिसदि० । उ० ४ । १६७ । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु—त्र । सदनानि । सभास्थानानि (उच्छिष्टे) (अधि) अधिकारपूर्वकम् (समाश्रिताः) राशीकृताः ॥

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।
दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥ ९ ॥

अग्नि-होत्रम् । च । श्रद्धा । च । वषट्-कारः । व्रतम् । तपः ॥ दक्षिणा । इष्टम् । पूर्तम् । च । उत्-शिष्टे । अधि । सम्-आहिताः ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र [अग्नि में हवन] (च) और (श्रद्धा) श्रद्धा [भक्ति], (च) और (वषट्कारः) दानकर्म, (व्रतम्) व्रत [नियम] (तपः) तप [चित्त की एकाग्रता], (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा] (इष्टम्) वेदाध्ययन, आतिथ्य आदि (च) और (पूर्तम्) अन्नदानादि पुण्य कर्म (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (समाहिताः) एकत्र किये गये हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ—हवन और शिल्प आदि व्यवहारों में अग्नि का प्रयोग ईश्वर और वेद में श्रद्धा आदि कर्म परमेश्वर ने जगत् के हित के लिये नियत किये हैं ९॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥ १० ॥ (१८)

एक-रात्रः । द्वि-रात्रः । सद्यः-क्रीः । प्र-क्रीः । उक्थ्यः ॥ आ-उतम् । नि-हितम् । उत्-शिष्टे । यज्ञस्य । अणूनि । विद्यया १०(१८)

भाषार्थ—(एक रात्रः) एक रात्रि वाला, (द्विरात्रः) दो रात्रि वाला, (सद्यः क्रीः) तुरन्त ही मोल लिया गया, (प्रक्रीः) मोल लेने योग्य; (उक्थ्यः)

९—(अग्निहोत्रम्) अग्नौ होमः (च) (श्रद्धा) भक्तिः (च) (वषट्-कारः) अ० १। ११। १। वह प्रापणे-डषटि। आहुतिकरणम्। दानक्रिया (व्रतम्) (तपः) चित्तैकाग्र्यम (दक्षिणा) अ० १। ५। १। प्रतिष्ठा (इष्टम्) अ० २। १२। ४। वेदाध्ययनातिथ्यादि कर्म (पूर्तम्) अ० २। १२। ४। अन्नदानादि-पुण्यकर्म। अन्यत् पूर्ववत्-म० ८॥

१०—(एकरात्रः) अहः सर्वैकदेश संख्यातपुण्याच्च रात्रेः। पा० ५। ४। ८७। अच् समासान्तः। एका रात्रिरेकरात्रः। ततो मत्वर्थे। अर्श आदिभ्यो

प्रशंसनीय [व्यवहार वा यज्ञ], [यह सब] (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (ओतम्) ओत प्रोत [भली भांति बुना हुआ] (निहितम्) रक्खा हुआ है, और (विद्यया) विद्या के साथ (यज्ञस्य) [ईश्वर पूजा आदि] के (अणूनि) सूक्ष्म रूप [रक्खे हैं] ॥ १० ॥

भावार्थ—मनुष्य परमात्मा को सर्व व्यापक जानकर एक दिन वा दो दिन में वा तुरन्त, अथवा क्रय विक्रय आदि से समाप्ति योग्य कर्मों को विचार कर अपना कर्त्तव्य सिद्ध करे ॥ १० ॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह । षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥ ११ ॥

चतुः-रात्रः । पञ्च-रात्रः । षट्-रात्रः । च । उभयः । सह ॥ षोडशी । सप्त-रात्रः । च । उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । ये । यज्ञाः । अमृते । हिताः ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(चतूरात्रः) चार रात्रि [तक रहने] वाला, (पञ्चरात्रः) पांच रात्रि वाला, (षड्रात्रः) छह रात्रि वाला, (च) और (सह) मिलकर (उभयः) दूने समय [८+१०+१२=३० रात्रि] वाला । (षोडशी) सोलह [रात्रि] वाला (च) और (सप्तरात्रः) सात रात्रि वाला [यज्ञ वा

ऽच् पा० ५ । २ । १२७ । इत्यच् । एकां रात्रिं व्याप्य वर्तमानो व्यवहारः (द्विरात्रः) द्वे रात्री व्याप्य वर्तमानः (सद्यःक्रीः) क्विप् च । पा० ३ । २ । ७६ । डु क्रीञ् द्रव्यविनिमये-क्विप् । तत्कालवक्रीतः (प्रक्रीः) प्रकर्षेण क्रेयः (उक्थ्यः) प्रशंसनीयः (ओतम्) व्यूतम् (निहितम्) निक्षिप्तम् (उच्छिष्टे) (यज्ञस्य) (अणूनि) सूक्ष्माणि रूपाणि (विद्यया) तत्त्वज्ञानेन ॥

११—(चतूरात्रः) एकरात्र इति शब्दवत् सिद्धिः—म० १ । चतस्रो रात्रीर्व्याप्य समाप्यमानः (पञ्चरात्रः) पञ्चभी रात्रिभिः समाप्यमानः (षड्रात्रः) षड्भी रात्रिभिः समाप्यमानः (च) (उभयः) द्विगुणितः (सह) साहाय्येन (षोडशी) षोडशरात्रः (सप्तरात्रः) सप्तभी रात्रिभिः समाप्यमानः (उच्छिष्टात्) (जज्ञिरे) उत्पन्ना बभूवुः (सर्वे) (ये) (यज्ञाः) (अमृते) नास्ति मरणं दुःखं यस्मिंस्तस्मिन् पौरुषे मोक्षे वा (हिताः) धृताः ॥

व्यवहार] (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ । परमेश्वर] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं, [और वे भी] (ये) जो (सर्वे) सब (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार] (अमृते) [अमरपन [पौरुष वा मोक्ष पद] में (हिताः) स्थापित हैं ॥११॥

भावार्थ—परमात्मा ने बताया है कि मनुष्य पहिले से ही चार दिन, पांच दिन आदि काल का विचार करके मोक्ष पर्यन्त अपना कर्तव्य व्यवहार साधे ॥ ११ ॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः
साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन्मयि ॥ १२ ॥

प्रति-हारः । नि-धनम् । विश्व-जित् । च । अभि-जित् । च । यः ॥ साह्न-अतिरात्रौ । उत्-शिष्टे । द्वादश-अहः । अपि । तत् । मयि ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(प्रतीहारः) प्रत्युपकार, (निधनम्) कुल [कुलवृद्धि] (च) और (विश्वजित्) संसार का जीतने वाला (च) और (यः) जो (अभिजित्) सब ओर से जीतने वाला [यज्ञ वा व्यवहार है, वह] (साह्नातिरात्रौ) उसी दिन पूरा होने वाला और रात्रि बिता कर पूरा होने वाला और (द्वादशाहः) बारह दिन में पूरा होने वाला [यज्ञ वा व्यवहार] (अपि) भी (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में हैं, (तत्) वह (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥ १२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य परमात्मा में आत्मसमर्पण करते हैं, वे संसार में परस्पर उपकार, कुलवृद्धि, जय और विविध समय का उपयोग करके उत्तम सुख भोगते हैं ॥ १२ ॥

१२—(प्रतीहारः) प्रति+हृञ् स्वीकारे—घञ् । उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम् । पा० ६ । ३ । १२२ । इति सांहितिको दीर्घः । प्रत्युपकारः (निधनम्) नि+धा-क्यु । कुलम् । कुलवर्धनम् (विश्वजित्) सर्वजेता (च) (अभिजित्) सर्वतो जेता यज्ञः (च) (यः) (साह्नातिरात्रौ) एकरात्र इति शब्दवत् सिद्धिः—म० १० । समानेन दिनेन समाप्यमानो रात्रिमतीत्य वर्तमानश्चतौ यज्ञौ व्यवहारौ वा (उच्छिष्टे) (द्वादशाहः) अ० ६ । ६ (४) । ८ । द्वादशभिर्दिनैः समाप्यमानो यज्ञः (अपि) एव (तत्) पूर्वोक्तम् (मयि) उपासके ॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥ १३ ॥

सूनृता । सम्-नतिः । क्षेमः । स्वधा । ऊर्जा । अमृतम् ।
सहः ॥ उत्-शिष्टे । सर्वे । प्रत्यञ्चः । कामाः । कामेन । ततृपुः १३

भाषार्थ—(सूनृता) प्रिय सत्य वाणी, (संनतिः) यथावत् नम्रता, (क्षेमः) रक्षा, (स्वधा) अन्न, (ऊर्जा) पराक्रम, (सहः) बल और (अमृतम्) अमृत [मृत्यु वा दुःख से बचना अर्थात् पुरुषार्थ] । (सर्वे) [इन] सब (कामाः) कामना योग्य विषयों ने (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (प्रत्यञ्चः) व्याप कर (कामेन) इष्ट फल के साथ [मनुष्य को] (ततृपुः) तृप्त किया है ॥ १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रिय सत्य वचन आदि के साथ आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ाते हैं, वे परमात्मा के अनुग्रह से सब उत्तम कामनायें सिद्ध करते हैं ॥ १३ ॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
आ सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन्मयि ॥ १४ ॥

नव । भूमीः । समुद्राः । उत्-शिष्टे । अधि । श्रिताः । दिवः ॥
आ । सूर्यः । भाति । उत्-शिष्टे । अहोरात्रे इति । अपि ।
तत् । मयि ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(नव) नौ [हमारे दो कान, दो आंख, दो नथने, मुख,

१३—(सूनृता) अ० ३ । १२ । २ । प्रियसत्यात्मिका वाक् (संनतिः) सम्यग् नम्रता (क्षेमः) परिरक्षणम् (स्वधा) अ० २ । २९ । ७ अन्नम् (ऊर्जा) ऊर्ज बलप्राणनयोः—पचाद्यच् । पराक्रमः (अमृतम्) मरणराहित्यम् पौरुषम् (सहः) बलम् (उच्छिष्टे) (सर्वे) (प्रत्यञ्चः) अभिमुखमञ्चन्तः प्राप्नुवन्तः (कामाः) काम्यमानाः पदार्थाः (कामेन) इष्टफलेन (ततृपुः) तृप प्रीणने लिट्, सांहितिको दीर्घः । तर्पितवन्तः ॥

१४—(नव) द्वे श्रोत्रे, चक्षुषी, नासिके, मुखम्, द्वे पायूपस्थे नवभिः

पायु और उपस्थ इन नौ अर्थात् सब इन्द्रियों से जाने गये] (भूमीः) भूमि के देश, (समुद्राः) अन्तरिक्ष के लोक और (दिवः) प्रकाशमान लोक (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक (श्रिताः) ठहरे हैं। (सूर्यः) सूर्य (उच्छिष्टे) शेष [परमेश्वर] में (आ) सब ओर (भाति) चमकता है, और (अहोरात्रे) दिन राति (अपि) भी, (तत्) वह [उनका सुख] (मयि) मुझ [उपासक] में [होवे] ॥ १४ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपनी इन्द्रियों से विद्या द्वारा परमेश्वर रचित भूमि आदि से यथावत् उपकार लेकर सुखी होवें ॥ १४ ॥

उपहव्यं विषुवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।
बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥ १५ ॥

उप-हव्यम् । विषु-वन्तम् । ये । च । यज्ञाः । गुहा । हिताः ॥
बिभर्ति । भर्ता । विश्वस्य । उत्-शिष्टः । जनितुः । पिता १५

भाषार्थ—(उपहव्यम्) प्राप्ति योग्य (विषुवन्तम्) व्याप्ति वाले [बाहिरी उत्तम गुण] को (च) और (ये) जो (यज्ञाः) श्रेष्ठ गुण (गुहा) बुद्धि के भीतर (हिताः) रक्खे हैं, [उनको भी] (विश्वस्य) सब का (भर्त्ता) पोषक, (जनितुः) जनक [हमारे उत्पन्न करने वाले] का (पिता) पिता [पालक] (उच्छिष्टः) शेष [म० १ । परमात्मा] (बिभर्ति) धारण करता है ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्य अनादि सर्वपोषक परमेश्वर के ज्ञान द्वारा अपने बाहिरी और भीतरी गुणों का ज्ञान प्राप्त करें ॥ १५ ॥

शरीरिच्छद्रैर्ज्ञायमानाः—इत्यर्थः (भूमीः) भूमयः । भूमिदेशाः (समुद्राः) अन्तरिक्षलोकाः (उच्छिष्टे) म० १ । शेषे । परमात्मनि (अधि) अधिकृत्य (श्रिताः) स्थिताः (दिवः) प्रकाशमाना लोकाः (आ) समन्तात् (सूर्यः) भास्करः (भाति) दीप्यते (उच्छिष्टे) अहोरात्रे) रात्रिदिने (अपि) (तत्) सुखम् (मयि) उपासके ॥

१५—(उपहव्यम्) हु दानादानयोः-यत् । ग्राह्यं गुणम् (विषुवन्तम्) व्याप्तिमन्तं विस्तारवन्तं गुणम् (ये) (च) (यज्ञाः) श्रेष्ठगुणाः (गुहा) गुहायाम् । बुद्धौ (हिताः) धृताः (बिभर्ति) धरति (भर्ता) पोषकः (विश्वस्य) सर्वस्य (उच्छिष्टः) म० १ । शेषः (जनितुः) जनयितुः । जनकस्य (पिता) पालकः । जनकः ॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥ १६ ॥

पिता । जनितुः । उत्-शिष्टः । असोः । पौत्रः । पितामहः ॥
सः । क्षियति । विश्वस्य । ईशानः । वृषा । भूम्याम् । अति-घ्न्यः ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(उच्छिष्टः) शेष [म० १ । परमात्मा] (जनितुः) जनक [हमारे उत्पादक] का (पिता) पिता और (असोः) प्राण [हमारे जीवन] का (पौत्रः) पोता [पुत्र के पुत्र समान पीछे वर्तमान] और (पितामहः) दादा [पिता के पिता समान पहिले वर्तमान] है । (सः) वह (विश्वस्य) सबका (ईशानः) ईश्वर, (वृषाः) महापराक्रमी [परमात्मा] (भूम्याम्) भूमि पर (अतिघ्न्यः) बिना हराया हुआ (क्षियति) बसता है ॥ १६ ॥

भावार्थ—सर्वजनक, अनादि, अनन्त परमेश्वर सर्व विजयी है, उसकी उपासना सब मनुष्य करें ॥ १६ ॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥ १७ ॥

ऋतम् । सत्यम् । तपः । राष्ट्रम् । श्रमः । धर्मः । च । कर्म । च ॥
भूतम् । भविष्यत् । उत्-शिष्टे । वीर्यम् । लक्ष्मीः । बलम् । बले ॥ १७ ॥

१६—(पिता) जनकः (जनितुः) जनकस्य (उच्छिष्टः) म० १ । परमात्मा (असोः) असु क्षेपणे-उन् । असुरिति प्राणनामास्तः शरीरे भवति-निरु० ३ । ८ । प्राणस्य जीवनस्य (पौत्रः) पुत्रस्य पुत्रवत् पश्चाद्भावी (पितामहः) अ० ५ । ५ । १ । पितुः पितृसमान प्रथमभवः (सः) (क्षियति) निवसति (विश्वस्य) सर्वस्य (ईशानः) ईश्वरः (वृषा) वृषु सेचने ऐश्वर्ये च—कनिन् । महापराक्रमी । इन्द्रः (भूम्याम्) पृथिव्याम् (अतिघ्न्यः) अघ्न्यादयश्च । उ० ४ । ११२ । अति+हन हिंसागत्योः-यक् । अतिक्रान्तहननः । अहंतव्यः । अजेयः ॥

भाषार्थ--(ऋतम्) सत्य शास्त्र, (सत्यम्) सत्यवचन, (तपः) तप [इन्द्रियदमन], (राष्ट्रम्) राज्य, (श्रमः) परिश्रमः (च) और (धर्मः) धर्म [पक्षपात रहित न्याय और सत्य आचरण] (च) और (कर्म) कर्म। (भूतम) उत्पन्न हुआ और (भविष्यत्) उत्पन्न होने वाला जगत्, (वीर्यम्) वीरता, (लक्ष्मीः) लक्ष्मी [सर्वसम्पत्ति] और (बले) बले के भीतर [वर्तमानन्] (बलम्) बल (उच्छिष्टे) शेष [म० १। परमात्मा] में हैं ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की उपासना से सत्य व्यवहार वीरता आदि करके लक्ष्मीवान् होवें ॥ १७ ॥

समृ॑द्धि॒रोज॒ आकू॑तिः क्ष॒त्रं रा॒ष्ट्रं षडु॒र्व्यः᳖ ।
सं॒व॒त्स॒रोऽध्यु॒च्छिष्ट॒ इडा॑ प्रै॒षा ग्रहा॑ ह॒विः ॥ १८ ॥

सम्-ऋ॑द्धिः । ओजः॑ । आ-कू॑तिः । क्ष॒त्रम् । रा॒ष्ट्रम् । षट् । उ॒र्व्यः᳖ ॥ स॒म्-व॒त्स॒रः । अधि॑ । उत्-शि॑ष्टे । इडा॑ । प्र॒-ए॒षाः । ग्रहाः॑ । ह॒विः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(समृद्धिः) समृद्धि [सर्वथा वृद्धि] (ओजः) पराक्रम(आकूतिः) संकल्प [मनमें विचार] (क्षत्रम्) हानि से रक्षक [क्षत्रियपन] (राष्ट्रम्) राज्य और (षट्) छह (उर्व्यः) फैली [दिशाये]। (संवत्सरः) वर्ष (इडा)

१७—(ऋतम्) सत्यशास्त्रम्। यथार्थसंकल्पनम् (सत्यम्) यथार्थभाषणम् (तपः) इन्द्रियदमनम् (राष्ट्रम्) राज्यम् (श्रमः) परिश्रमः (धर्मः) अर्तिस्तुसुहुसृधृ०। उ० १। १४०। धृञ् धारणे-मन्। ध्रियते सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः। पक्षपातरहितो न्यायः। सत्याचारः (कर्म) विहितं कार्यम् (च) (भूतम्) उत्पन्नं जगत् (भविष्यत्) उत्पत्स्यमानम् (उच्छिष्टे) (वीर्यम्) वीरकर्म (लक्ष्मीः) लक्षेर्मुट् च। उ० ३। १६०। लक्ष दर्शने अङ्कने च। ई प्रत्ययो मुट् च। दर्शनीया सर्वसम्पत्तिः (बलम्) सामर्थ्यम् (बले] सामर्थ्ये॥

१८—(समृद्धिः) अभिवृद्धिः (ओजः) बलम् (आकूतिः) संकल्पः (क्षत्रम्) अ० २। १५। ४। क्षत्+त्रैङ् पालने-क। क्षतो हाने रक्षकं क्षत्रियधर्मः (राष्ट्रम्) राज्यम् (षट्) (उर्व्यः) विस्तृता दिशः (संवत्सरः) वर्ष-

वाणी, (प्रैषाः) प्रेरणायें, (ग्रहाः) अनेक प्रयत्न और (हविः) ग्राह्य वस्तु (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (अधि) अधिकार पूर्वक हैं ॥१८॥

भावार्थ—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास से मनुष्य दिशाओं अर्थात् देश और संवत्सर अर्थात् काल का विचार करके सदा प्रयत्न के साथ राज्य आदि व्यवहार करें ॥ १८ ॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥ १९ ॥
चतुः-होतारः । आ-प्रियः । चातुः-मास्यानि । नि-विदः ॥
उत्-शिष्टे । यज्ञाः। होत्राः। पशु-बन्धाः । तत् । इष्टयः १९॥

भाषार्थ—(चतुर्होतारः) चार [ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चार वर्णों] से ग्राह्य व्यवहार, (चातुर्मास्यानि) चार महीनों में सिद्ध होने वाले कर्म (आप्रियः) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करने वाली क्रियायें और (निविदः) निश्चित् विद्यायें, (यज्ञाः) यज्ञ [श्रेष्ठ व्यवहार], (होत्राः) देने लेने योग्य [वेद वाचायें] (पशुबन्धाः) प्राणियों के प्रबन्ध (तत्) तथा (इष्टयः) इष्ट क्रियायें (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । ५ परमात्मा] में हैं ॥ १९ ॥

भावार्थ—सर्वविद्यामय, सर्वाधार परमेश्वर की उपासना से मनुष्य अपने २ योग्य कर्मों में प्रवृत्ति करें ॥ १९ ॥

कालः (अधि) (उच्छिष्टे) (इडा) अ० ३ । १० । ६ । इल गतौ-क, टाप् । वाणी-निघ० ३ । ११ (प्रैषाः) प्र+इष गतौ-घञ् । प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु । वा० पा० ६ । १ । ८९ । इति वृद्धिः । प्रैषणव्यवहाराः । प्रेरणाः (ग्रहाः) ग्राह्याः प्रयत्नाः । उद्यमाः (हविः) ग्राह्यं वस्तु ॥

१९—(चतुर्होतारः) चत्वारो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा होत्तारो ग्रहीतारो येषां ते व्यवहाराः (आप्रियः) प्रीञ् तर्पणे कांतौ च-क्विप् । सर्वथा प्रीत्युत्पादिकाः क्रियाः (चातुर्मास्यानि) चतुर्मासाण्ण्यो यज्ञे । वा पा० ५ । १ । ९४ । चतुर्षु मासेषु साध्यानि कर्माणि (निविदः) अ० ५ । २६ । ४ । निश्चितविद्याः (उच्छिष्टे) (यज्ञाः) श्रेष्ठव्यवहाराः (होत्राः) अ० ११ । ६ । १४ । दानादानयोग्या वेदवाचः (पशुप्रबन्धाः) पशवो व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च—निरु० ११ । २९ । पशूनां प्राणिनां प्रबन्धाः (तत) तथा (इष्टयः) इष्टक्रियाः ॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीरापः स्तनयित्नुः श्रुतिर्मही ॥ २० ॥ (२०)

अर्ध-मासाः । च । मासाः । च । आर्तवाः । ऋतु-भिः ।
सह ॥ उत्-शिष्टे । घोषिणीः । आपः । स्तनयित्नुः । श्रुतिः ।
मही ॥ २० ॥ (२०)

भाषार्थ—(अर्धमासाः) आधे महीने (च) और (मासाः) महीने (च) और (ऋतुभिः सह) ऋतुओं के साथ (आर्तवाः) ऋतुओं के पदार्थ, (घोषिणीः) शब्द करने वाली (आपः) जल धारायें, (स्तनयित्नुः) मेघ की गर्जन, (श्रुतिः) सुनने योग्य [वेद वाणी] और (मही) भूमि (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में हैं ॥ २० ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने मनुष्य के सुख के लिये पखवाड़े, महीने, ऋतुयें और ऋतुओं की उपज और अन्य सब पदार्थ उत्पन्न किये हैं ॥ २० ॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥ २१ ॥

शर्कराः । सिकताः । अश्मानः । ओषधयः । वीरुधः । तृणा ॥
अभ्राणि । वि-द्युतः । वर्षम् । उत्-शिष्टे । सम्-श्रिता । श्रिता २१

भाषार्थ—(शर्कराः) कंकड़ आदि (अश्मानः) पत्थर, (सिकताः) बालू, (ओषधयः) ओषधें [अन्नादि], (वीरुधः) जड़ी बूटियां, (तृणा)

२०—(अर्धमासाः) मासपक्षाः (च) (मासाः) चैत्राद्याः (आर्तवाः) ऋतुषु समुत्पन्नाः पदार्थाः (ऋतुभिः) वसन्तादिभिः (सह) (उच्छिष्टे) (घोषिणीः) शब्दवत्यः (आपः) जलधाराः (स्तनयित्नुः) अ० ४ । १५ । ११ । मेघध्वनिः (श्रुतिः) श्रवणीया वेदवाणी (मही) भूमिः ॥

२१—(शर्कराः) शॄ हिंसायाम्—करन्, टाप् । उपलखण्डाः (सिकताः) बालुकाः (अश्मानः) प्रस्तराः (ओषधयः) अन्ना-

घासें, (अभ्राणि) बादल, (विद्युतः) बिजुलियां, (वर्षम्) बरसात, (संश्रिता) [ये सब] परस्पर आश्रित द्रव्य (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में] (श्रिता) ठहरे हैं ॥ २१ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर की महिमा को विचार कर कंकड़ पत्थर आदि पदार्थों से यथा योग्य कार्य सिद्ध करें ॥ २१ ॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥ २२ ॥

राद्धिः । प्र-आप्तिः । सम्-आप्तिः । वि-आप्तिः । महः । एधतुः ॥ अति-आप्तिः । उत्-शिष्टे । भूतिः । च । आ-हिता । नि-हिता । हिता ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(राद्धिः) अर्थ सिद्धि, (प्राप्तिः) प्राप्ति [लाभ], (समाप्तिः) समाप्ति [पूर्त्ति], (व्याप्तिः) व्याप्ति [फैलाव], (महः) बड़ाई, (एधतुः) बढ़ती, (अत्याप्तिः) अत्यन्त प्राप्ति (च) और (आहिता) सब ओर से रक्खी हुई और (निहिता) गहरी रक्खी हुई (भूतिः) विभूति [सम्पत्ति] (उच्छिष्टे) शेष [म० १ । परमात्मा] में (हिता) रक्खी है ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य परमेश्वर के आश्रय से अर्थ सिद्धि आदि प्राप्त करके ऐश्वर्यवान् होवें ॥ २२ ॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २३ ॥

दयः (वीरुधः) विरोहणशीला लतादयः (तृणा) गवादिभक्षणानि (अभ्राणि) अभ्र गतौ-अच् । गतिमन्तो मेघाः (विद्युतः) तडितः (वर्षम्) वृष्टिः, (उच्छिष्टे) (संश्रिता) परस्परस्थितानि (श्रिता) स्थितानि ॥

२२—(राद्धिः) अर्थसिद्धिः (प्राप्तिः) लाभः (समाप्तिः) पूर्तिः (व्याप्तिः) विस्तृतिः (महः) महत्त्वम् (एधतुः) एधिवह्योश्चतुः । उ० १ । ७७ । एध वृद्धौ-चतु । वृद्धिः (अत्याप्तिः) अत्यन्तप्राप्तिः (उच्छिष्टे) (आहिता) समन्ताद् धृता (निहिता) निक्षिप्ता (हिता) स्थिता ॥

यत् । च । प्राणति । प्राणेन । यत् । च । पश्यति । चक्षुषा ॥
उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिवि-श्रितः ॥२३॥

भाषार्थ—(च) और (यत्) जो कुछ (प्राणेन) प्राण [श्वास प्रश्वास] के साथ (प्राणति) जीता है, (च) और (यत्) जोकुछ (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यति) देखता है । [वह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुये (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ । परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सब प्राण वाले जगत् और सब लोकों को सूर्य के आकर्षण में रखकर मनुष्य के सुख के लिये उत्पन्न किया है ॥ २३ ॥

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २४ ॥

ऋचः । सामानि । छन्दांसि । पुराणम् । यजुषा । सह ॥ उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिवि-श्रितः ॥२४॥

भाषार्थ—(ऋचः) स्तुति विद्यायें [वा ऋग्वेद मन्त्र] (सामानि) मोक्ष ज्ञान [वा साम वेद मन्त्र] और (यजुषा सह) विद्वानों के सत्कार सहित [वा यजुर्वेद सहित] (छन्दांसि) आनन्द प्रद कर्म [वा अथर्ववेद मन्त्र] और (पुराणम्) पुराण [पुरातन वृत्तान्त]। [यह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुये (सर्वे)

२३— (यत्) यत् किञ्चिज् जगत् (च) (प्राणति) प्रकर्षेण जीवति (प्राणेन) श्वासप्रश्वासव्यापारेण (यत् च) (पश्यति) अवलोकयति (चक्षुषा) नेत्रेण (उच्छिष्टात्) म० १। शेषात्परमेश्वरात् (जज्ञिरे) उत्पन्ना बभूवुः (सर्वे) (दिवि) आकाशे वर्तमानाः (देवाः) दिवु गतौ-पचाद्यच् । गतिमन्तो लोकाः (दिविश्रितः) दिवि सूर्ये सूर्याकर्षणे स्थिताः ॥

२४—(ऋचः) अ० ११ । ६ । १४ । स्तुतिविद्याः । ऋग्वेदमन्त्राः (सामानि) अ० ११ । ६ । १४ । मोक्षज्ञानानि । साममन्त्राः (छन्दांसि) अ० ४ । ३४ । १ । चदि आह्लादने-असुन्, चस्य छः । आह्लादकर्माणि । अथर्ववेदमन्त्राः (पुराणम्) अ० १० । ७ । २६ । पुरातनवृत्तान्तः (यजुषा) अ० ७ । ५४ । २ ।

सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १। परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने सब उत्तम कर्म और वेद आदि शास्त्र और सब पदार्थ मनुष्य के सुख के लिये प्रकट किये हैं ॥ २४ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २५ ॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ॥
उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिवि-श्रितः ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाले श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान (च) और (या) जो (अक्षितिः) [तत्त्वों की] निर्हानि [बढ़ती] (च) और (क्षितिः) [तत्त्वों की] हानि। [यह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुये (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १। परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं ॥ २५ ॥

भावार्थ—परमात्मा ने शरीर में पृथिवी आदि तत्त्वों के बढ़ाव घटाव से मनुष्य को जीवधारण, देखने और सुनने आदि के साधन देकर और सृष्टि के पदार्थों का साक्षात् कराकर सुख बढ़ाने का उपदेश किया है ॥ २५ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २६ ॥

आ-नन्दाः । मोदाः । प्र-मुदः । अभिमोद-मुदः । च । ये ॥
उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिवि-श्रितः ॥ २६ ॥

विदुषां सत्कारेण । यजुर्मन्त्रेण (सह) शेषं पूर्ववत् ॥

२५—(प्राणापानौ) श्वासप्रश्वासौ (चक्षुः) नेत्रम् (श्रोत्रम्) कर्णम् (अक्षितिः) तत्त्वानां निर्हानिः (च) (क्षितिः) तत्त्वानां हानिः (च) (या) । अन्यत् पूर्ववत् ॥

भाषार्थ—(आनन्दाः) आनन्द, (मोदाः) हर्ष, (प्रमुदः) बड़े आनन्द (च) और (ये) जो (अभिमोदमुदः) बड़े उत्सवों से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं। [यह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुये (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने मनुष्य को अनेक प्रकार से आनन्द पाने के लिये अनेक आनन्द साधन प्रदान किये हैं ॥ २६ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २७ ॥ (२१)

देवाः । पितरः । मनुष्याः । गन्धर्व-अप्सरसः । च । ये ॥
उत्-शिष्टात् । जज्ञिरे । सर्वे । दिवि । देवाः । दिवि-श्रितः २७

भाषार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग, (पितरः) ज्ञानी लोग, (मनुष्याः) मनन शील लोग (च) और (ये) जो (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर [आकाश में चलने वाले पुरुष] हैं। [यह सब और] (दिवि) आकाश में [वर्तमान्] (दिविश्रितः) सूर्य [के आकर्षण] में ठहरे हुये (सर्वे) सब (देवाः) गतिमान् लोक (उच्छिष्टात्) शेष [म० १ । परमात्मा] से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुये हैं ॥ २७ ॥

भावार्थ—परमात्मा के सामर्थ्य से अनेक विद्वान् लोग और अनेक पदार्थ संसार में सुख बढ़ाने के लिये उत्पन्न हुये हैं ॥

यह मन्त्र महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृष्ट १३५, १३६ में व्याख्यात है ॥

२६—(आनन्दाः) सुखविशेषाः (मोदाः) हर्षाः (प्रमुदः) प्रकृष्टहर्षाः (अभिमोदमुदः) अभिमोदैर्महोत्सवैर्हर्षयितारः पदार्थाः (च) (ये) अन्यत् पूर्ववत् ॥

२७—(देवाः) विद्वांसः (पितरः) ज्ञानिनः (मनुष्याः) मननशीलाः (गन्धर्वाप्सरसः) अ० ८ । ८ । १५ । गां पृथिवीं धरन्ति ये ते गन्धर्वाः । अप्सु आकाशे सरन्ति ते अप्सरसः । तथाभूताः पुरुषाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

सूक्तम् ॥ ८ ॥

१—३४ ॥ मन्युर्देवता ॥ १—२८, ३०-३२, ३४ अनुष्टुप्; २९ विराडनुष्टुप्; ३३ पथ्या पङ्क्तिः ॥

शरीररचनोपदेशः—शरीर की रचना का उपदेश।

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत् ॥ १ ॥

यत् । मन्युः। जायाम् । आ-अवहत् । सम्-कल्पस्य । गृहात्। अधि ॥ के । आसन् । जन्याः। के । वराः । कः । ऊं इति । ज्येष्ठ-वरः । अभवत् ॥ १ ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (मन्युः) सर्वज्ञ [परमेश्वर] (जायाम्) सृष्टि की क्रिया को (संकल्पस्य) सङ्कल्प [मनोविचार] के (गृहात्) ग्रहण [स्वीकार करने] से (अधि) अधिकार पूर्वक (आवहत्) सब ओर लाया [प्रकट किया] । (के) कौन (जन्याः) उत्पत्ति में साधक [योग्य] पदार्थ और (के) कौन (वराः) वर [वरणीय, इष्टफल] (आसन्) थे, (कः उ) कौन ही (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्टफलों] का देने वाला (अभवत्) हुआ ॥ १ ॥

भावार्थ—जब ईश्वर ने सृष्टि की रचना चाहा, तब यह प्रश्न उत्पन्न हुये-किन पदार्थों से सृष्टि की जावे, किस प्रयोजन के लिये वह होवे, और कौन उसका स्वामी हो। इस का उत्तर आगे है ॥ १ ॥

१—(यत्) यदा (मन्युः) अ० १ । १० । १ । यजिमनिशुन्धि० । उ० ३ । २० । मन ज्ञाने—युच् । सर्वज्ञः परमेश्वरः (जायाम्) जनेर्यक् । उ० ४ । १११ । जन जनने—यक् । जायतेऽस्यां सर्वं जगदिति जाया तां सृष्टिक्रियाम् (आवहत्) समन्तात् प्रापयत् । प्रकटीकृतवान् (सङ्कल्पस्य) मनोविचारस्य (गृहात्) गृह ग्रहणे क । ग्रहणात् । स्वीकरणात् (अधि) अधिकारपूर्वकम् (आसन्) अभवन् (जन्याः) तत्र साधुः । पा० ४ । ४ । ९८ । जन—यत् । जने जनने, उत्पादने, साधका योग्याः पदार्थाः (के) (वराः) वरणीया इष्टपदार्थाः (कः) (उ) एव (ज्येष्ठवरः) ज्येष्ठाः सर्वोत्कृष्टा वरा वरणीयपदार्था यस्मात् सः ॥

तप॑श्चै॒वास्तां कर्म॑ चा॒न्तर्म॑ह॒त्य॑र्ण॒वे ।
त आ॑स॒ञ् जन्या॒स्ते व॒रा ब्रह्म॑ ज्येष्ठव॒रो॑ऽभवत् ॥ २ ॥

तप॑ः । च॒ । ए॒व । आ॒स्ता॒म् । कर्म॑ । च॒ । अ॒न्तः । म॒ह॒ति । अ॒र्ण॒वे ॥ ते । आ॒स॒न् । जन्या॑ः । ते । व॒राः । ब्रह्म॑ । ज्ये॒ष्ठ॒ऽव॒रः । अ॒भ॒व॒त् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे। [तप और कर्म ही] (ते) वे प्रसिद्ध] (जन्याः) उत्पत्ति में साधन [योग्य] पदार्थ और (ते) वे ही (वराः) वर [वरणीय इष्टफल] (आसन्) थे, (ब्रह्म) ब्रह्म [सब से बड़ा परमात्मा] (ज्येष्ठवरः) सर्वोत्तम वरों [इष्ट फलों] का दाता (अभवत्) हुआ ॥ २ ॥

भावार्थ—अनादि चक्र रूप संसार में परमात्मा अपने सामर्थ्य से प्राणियों के कर्मानुसार सृष्टि रचकर आप ही सर्वनियन्ता हुआ। यह गत मन्त्र के तीनों प्रश्नों का उत्तर है। मन्त्र ३ तथा ४ में इसी का विवरण है ॥२॥

दश॑ सा॒कम॑जायन्त दे॒वा दे॒वेभ्य॑ः पु॒रा ।
यो वै तान् वि॒द्यात् प्र॒त्यक्षं॒ स वा अ॒द्य म॒हद् व॑देत् ॥ ३ ॥

दश॑ । सा॒कम् । अ॒जा॒य॒न्त॒ । दे॒वाः । दे॒वेभ्य॑ः । पु॒रा ॥ यः । वै । तान् । वि॒द्यात् । प्र॒ति॒ऽअक्ष॑म् । सः । वै । अ॒द्य । म॒हत् । व॒दे॒त् ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(दश देवाः) दस दिव्य पदार्थ [पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय] (पुरा) पूर्व काल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म

२—(तपः) तप ऐश्वर्ये—असुन्। ईश्वरसामर्थ्यम् (च) (एव) (आस्ताम्) अभवताम् (कर्म) प्राणिनां पुण्यपापकर्मफलम् (च) (अन्तः) मध्ये (महति) प्रभूते (अर्णवे) अ० १। १०। ४। समुद्रे। परमेश्वरस्य गम्भीरसामर्थ्ये (ते) प्रसिद्धाः (ब्रह्म) प्रवृद्धः परमात्मा। अन्यत् पूर्ववत्—म० १॥

३—(दश) दशसंख्याकाः (साकम्) सह (अजायन्त) प्रादुरभवन् (देवाः) स्वस्वविषयप्रकाशनशीलानि ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि (देवेभ्यः)

फलों] से (साकम्) परस्पर मिले हुये (अजायन्त) उत्पन्न हुये । (यः) जो पुरुष (वै) निश्चय करके (तान्) उनको (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (वै) ही (अद्य) आज (महत्) महान् [ब्रह्म] को (वदेत्) बतलावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—फिर उस ब्रह्म के सामर्थ्य से प्राणियों के पूर्वसंचित कर्म अनुसार पांच ज्ञानेन्द्रिय, कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका और पांच कर्मेन्द्रिय वाक्, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ, कर्मों के जानने और करने के लिये उत्पन्न हुये। सूक्ष्म दर्शी पुरुष ही इसको जानकर परमात्मा का उपदेश करते हैं ॥ ३ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ॥ व्यान-उदानौ । वाक् । मनः । ते । वै । आ-कूतिम् । आ । अवहन् ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षितिः) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षितिः) [दुःख की] हानि । (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुंचाने वाला वायु] और (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) इन सब ने (वै) निश्चय करके (आकूतिम्)

पञ्चमी विभक्तिः । दिव्यपदार्थेभ्यः । पूर्वकर्मफलानां सकाशात् (पुरा) पुरातनकाले वर्तमानेभ्यः (यः) विवेकी (वै) (तान्) (विद्यात्) जानीयात् (प्रत्यक्षम्) साक्षात्कारेण (सः) (वै) (अद्य) अस्मिन् दिने (महत्) पूजनीयं ब्रह्म (वदेत्) उपदिशेत् ॥

४—(व्यानोदानौ) सर्वासु नाडिषु रसमनिति प्रेरयतीति व्यानः । उत् ऊर्ध्वमनिति चेष्टतइत्युदानः । तौ वायुव्यापारौ (वाक्) वचनसाधनमिन्द्रियम् (मनः) सङ्कल्पविकल्पात्मकवृत्तिमदन्तःकरणम् (ते) पूर्वोक्ताः पदार्थाः (वै)

सङ्कल्प [प्राणी के मनोविचार] को (आ) सब ओर से (अवहन्) प्राप्त कराया ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्राणियों के विहित कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर ने प्राण, अपान आदि बनाये । मन्त्र १ का उत्तर समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आ चुका हैं—अ० ११ । ७ । २५ ॥

अजाता आसन्नृतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ५ ॥

अजाताः । आसन् । ऋतवः । अथो इति । धाता । बृहस्पतिः ॥ इन्द्राग्नी इति । अश्विना । तर्हि । कम् । ते । ज्येष्ठम् । उप । आसत ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(ऋतवः) ऋतुयें (अजाताः) अनुत्पन्न (आसन्) थे, (अथो) और भी (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश], (बृहस्पतिः) [बड़े पदार्थों का रक्षक वायु], (इन्द्राग्नी) इन्द्र [मेघ] और अग्नि [सूर्य आदि] और (अश्विना) दिन और राति [अनुत्पन्न थे], (तर्हि) तब (ते) उन्होंने [ऋतु आदिकों ने] (कम् ज्येष्ठम्) कौनसे सर्वश्रेष्ठ को (उप आसत) पूजा है ५

भावार्थ—जब बसन्त आदि ऋतुयें और आकाश वायु आदि पदार्थ स्थूल दशा में नहीं थे, तब उनका अधिष्ठाता कौन था । इस प्रश्न का उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ ५ ॥

(आकूतिम्) संकल्पम् (आ अवहन्) समन्तात् प्रापितवन्तः प्रकटी कृतवन्तः । अन्यद् व्याख्यातम्-अ० ११ । ७ । २५ ॥

५—(अजाताः) अनुत्पन्नाः । अप्रादुर्भूताः (आसन्) अभवन् (ऋतवः) बसन्ताद्याः कालाः (अथो) अपि च (धाता) सर्वस्य विधाता-निरु० ११ । १० । इति मध्यस्थानदेवतासु पाठात् । लोकानां धारक आकाशः (बृहस्पतिः) बृहस्पतिर्बृहतः पाता वा पालयिता वा-निरु० १० । ११ । इति मध्यस्थानदेवतासु पाठात् । बृहतां प्राणिनां रक्षको वायुः (इन्द्राग्नी) मेघतापौ (अश्विना) अहोरात्रौ निरु० १२ । १ (तर्हि) तदा (कम्) अधिष्ठातारम् (ते) पूर्वोक्ताः (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्टम् (उपासत) पूजितवन्तः ॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।

तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥ ६ ॥

तपः । च । एव । आस्ताम् । कर्म । च । अन्तः । महति । अर्णवे ॥ तपः । ह । जज्ञे । कर्मणः । तत् । ते । ज्येष्ठम् । उप । आसत ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य] (च च) और (कर्म) कर्म [प्राणियों के कर्म का फल] (एव) ही (महति अर्णवे अन्तः) बड़े समुद्र [परमेश्वर के गम्भीर सामर्थ्य] के भीतर (आस्ताम्) दोनों थे। (तपः) तप [ईश्वर का सामर्थ्य (ह) निश्चय करके (कर्मणः) कर्म [कर्म के फल अनुसार शरीर, स्वभाव आदि रचना] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है, (तत्) सो (ते) उन्हों ने [ऋतु आदिकों ने-म० ५] (ज्येष्ठम्) सर्वश्रेष्ठ परमात्मा को (उप-आसत) पूजा है ॥ ६ ॥

भावार्थ—प्रलय में प्राणियों के कर्म फल और ईश्वर सामर्थ्य भी ईश्वर सामर्थ्य में रक्षित थे। फिर सृष्टि काल में कर्म फलों के अनुसार प्राणियों के विविध प्रकार शरीर और स्वभाव प्रकट हुये। उस से परमात्मा ही सर्व नियन्ता प्रतीत हुआ ॥ ६ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध ऊपर म० २ में आ चुका है ॥

येत आसीद् भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद् विदुः ।

यो वै तां विद्यान्नामथा स मन्येत पुराणवित् ॥ ७ ॥

या । इतः । आसीत् । भूमिः । पूर्वा । याम् । अद्धातयः । इत् । विदुः ॥ यः । वै । ताम् । विद्यात् । नाम-था । सः । मन्येत । पुराण-वित् ॥ ७ ॥

६—(तपः) ईश्वरसामर्थ्यम् (ह) एव (जज्ञे) प्रादुर्बभूव (कर्मणः) कर्मफलानुसारेण शरीरस्वभावादिरचनारूपात् कर्मसकाशात् (तत्) तदा (ते) ऋतुधात्रादयः-म० ५ (ज्येष्ठम्) सर्वोत्कृष्टं परमात्मानम् (उपासत) पूजितवन्तः। अन्यत् पूर्ववत्-म० २ ॥

भाषार्थ—(इतः) इस [दीखती हुई भूमि] से (पूर्वा) पहिली [पहिले कल्प वाली] (या भूमिः) जो भूमि (आसीत्) थी और (याम्) जिस [भूमि] को (अद्धातयः) सत्य ज्ञानी पुरुष (इत्) ही (विदुः) जानते हैं। (यः) जो (वै) निश्चय करके (ताम्) उस [पहिले कल्प वाली भूमि] को (नामथा) नाम द्वारा [तत्त्वतः] (विद्यात्) जान लेवे, (सः) वह (पुराणवित्) पुराणवेत्ता [पिछले वृत्तान्त जानने वाला] (मन्येत) माना जावे ॥७॥

भावार्थ—वर्तमान सृष्टि में एक से साधन उपस्थित हो जाने पर भी किसी को ज्ञानी, किसी को अज्ञानी, किसी को धनी, किसी को निर्धनी, आदि विचित्रता देखकर बुद्धिमान् लोग पूर्व सृष्टि का अनुभव करते और उसके मर्म को साक्षात् करते हैं ॥ ७ ॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत् कुतो धाताजायत ॥ ८ ॥

कुतः । इन्द्रः । कुतः । सोमः । कुतः । अग्निः । अजायत ॥
कुतः । त्वष्टा । सम् । अभवत् । कुतः । धाता । अजायत ॥८॥

भाषार्थ—(कुतः) कहां से [किस कारण से] (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (कुतः) कहां से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (कुतः) कहां से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है। (कुतः) कहां से (त्वष्टा)

७—(या) भूमिः (इतः) दृश्यमानाया भूमेः (आसीत्) अभवत् (भूमिः) (पूर्वा) पूर्वकल्पस्था (याम्) पूर्वां भूमिम् (अद्धातयः) अ० ६ । ७६ । २ । अद्धा + अत सातत्यगमने—इन् । अद्धा सत्यमतन्ति जानन्ति ते । सत्यज्ञातारः । मेधाविनः—निघ० ३ । १५ (इत्) एव (विदुः) जानन्ति (यः) विद्वान् (वै) खलु (ताम्) पूर्वां भूमिम् (नामथा) नामप्रकारेण । यथार्थज्ञानेन (सः) (मन्येत) कर्मणि यक् । ज्ञायेत । बुध्येत (पुराणवित्) पूर्ववृत्तान्तवेत्ता ॥

८—(कुतः) कस्मात् कारणात् (इन्द्रः) मेघः (सोमः) इत्यस्य मध्यस्थानदेवतासु पाठात्-निरु० ११ । २ । प्रेरको वायुः (अग्निः) सूर्यादितापः (अजायत्) उदपद्यत (त्वष्टा) त्वष्टा तूर्णमश्नुत इति नैरुक्तास्त्विषेर्वा स्याद्

त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (सम् अभवत्) उत्पन्न हुआ है, (कुतः) कहां से (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश] (अजायत) प्रकट हुआ है ॥ ८ ॥

भावार्थ—मेघ आदि पदार्थ किस कारण से उत्पन्न हुये हैं। इन प्रश्नों का उत्तर अगले मंत्र में है ॥ ८ ॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥ ९ ॥

इन्द्रात् । इन्द्रः । सोमात् । सोमः । अग्नेः । अग्निः । अजायत ॥ त्वष्टा । ह । जज्ञे । त्वष्टुः । धातुः । धाता । अजायत ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(इन्द्रात्) इन्द्र [पूर्वकल्पवर्ती मेघ] से (इन्द्रः) इन्द्र [मेघ], (सोमात्) सोम [प्रेरक वायु] से (सोमः) सोम [प्रेरक वायु], (अग्नेः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] से (अग्निः) अग्नि [सूर्य आदि तेज] (अजायत) उत्पन्न हुआ है। (त्वष्टा) त्वष्टा [शरीर आदि का कारण पृथिवी तत्त्व] (ह) निश्चय करके (त्वष्टुः) त्वष्टा [शरीर आदि के कारण पृथिवी तत्त्व] से (जज्ञे) प्रकट हुआ है और (धातुः) धाता [धारण करनेवाले आकाश] से (धाता) धाता [धारण करने वाला आकाश] (अजायत) उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ प्रलय में परमाणु रूप थे, वे पूर्व कल्प के समान इस कल्प में भी ईश्वर सामर्थ्य से उत्पन्न हुये हैं ॥ ९ ॥

ऋग्वेद १० । १९० । ३ । में ऐसा वर्णन है—(सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्) सूर्य और चन्द्रमा को धाता [सर्वधारक परमेश्वर] ने पूर्वकल्प के समान रचा है ॥

दीप्तिकर्मणस्त्वक्षतेर्वास्यात्करोतिकर्मणः—निरु० ८ । १३ । इति भूस्थानदेवतासु पाठात् । शरीराणां कारणं पृथिवीतत्त्वम (धाता) म० ५ । लोकानां धारक आकाशः । अन्यद् गतम् ॥

९—इन्द्रादिशब्दा व्याख्याताः—म० ८ (इन्द्रात्) मेघात् (इन्द्रः) मेघः (सोमात्) वायोः (सोमः) वायुः (अग्नेः) सूर्यादितापात् (अग्निः) (अजायत) (त्वष्टा) शरीरादिकारणं भूमितत्त्वम् (ह) एव (जज्ञे) प्रादुर्बभूव (त्वष्टुः) (धातुः) (धाता) आकाशः (अजायत) ॥

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥ (२२)

ये । ते । आसन् । दश । जाताः । देवाः । देवेभ्यः । पुरा ॥
पुत्रेभ्यः। लोकम् । दत्त्वा । कस्मिन् । ते । लोके । आसते १०(२२

भाषार्थ—(ये ते) वे जो (दश देवाः) दस दिव्य गुण [दस इन्द्रियों के विषय ग्राहक गुण] (पुरा) पूर्वकाल में [वर्तमान] (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों [कर्म फलों] से (जाताः) उत्पन्न हुये (आसन्) थे । (ते) वे (पुत्रेभ्यः) पुत्रों [पुत्र रूप इन्द्रियों के गोलकों] को (लोकम्) स्थान [दर्शन वा विषय ग्रहण सामर्थ्य (दत्त्वा) देकर (कस्मिन् लोके) कौन से स्थान में (आसते) बैठते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ—पूर्व कल्प के अनुसार आंख, कान आदि अपने अपने गोलकों में दर्शन, श्रवण आदि गुणों के प्रवेश करने से विषयों का ग्रहण सामर्थ्य होता है। फिर वे दर्शन आदि गुण कहां रहते हैं। इसका उत्तर अन्य प्रश्नों के साथ आगे मन्त्र १३ में हैं ॥ १० ॥

इस मन्त्र का मिलान-मन्त्र ३ से करो ॥

यदा केशानस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत् ।
शरीरं कृत्वा पादवत् कं लोकमनु प्राविशत् ॥ ११ ॥

यदा । केशान् । अस्थि । स्नाव । मांसम् । मज्जानम् । आ-अभरत् ॥ शरीरम् । कृत्वा । पाद-वत् । कम् । लोकम् । अनु । प्र । अविशत् ॥ ११ ॥

१०—(ये) (ते) (आसन्) अभवन् (दश) दशसंख्याकाः (जाताः) प्रादुर्भूताः (देवाः) म० ३ । ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां विषयग्राहकगुणाः (देवेभ्यः) दिव्यपदार्थानां कर्मफलानां सकाशात् (पुरा) पूर्वकल्पे वर्तमानेभ्यः (पुत्रेभ्यः) पुत्ररूपेभ्य इन्द्रियगोलकेभ्यः (लोकम्) स्थानम् । दर्शनस्य विषयस्य वा ग्रहणसामर्थ्यम् (दत्त्वा) (कस्मिन्) (लोके) स्थाने (आसते) उपविशन्ति ॥

भाषार्थ—(यदा) जब [प्राणी के] (केशान्) केशों, (अस्थि) हड्डी, (स्नाव) सूक्ष्म नाड़ी [वायु ले चलने वाली नस], (मांसम्) मांस (मज्जानम्) मज्जा [हड्डियों के भीतर के रस] को (आभरत्) उस [कर्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। और (पादवत्) पैरों वाला [हाथ पांव आदि अङ्गों वाला] (शरीरम्) शरीर (कृत्वा) बनाकर (कम् लोकम्) कौन से स्थान में उस [परमेश्वर] ने (अनु) पीछे (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्राणी के केश आदि धातु उपधातुओं और हाथ पैर आदि अङ्गों वाले शरीर को रच कर वह परमेश्वर कहां रहता है। इस दूसरे प्रश्न का भी उत्तर मन्त्र १३ में है ॥ ११ ॥

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत् ।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत् ॥ १२ ॥

कुतः । केशान् । कुतः । स्नाव । कुतः । अस्थीनि । आ । अभरत् ॥ अङ्गा । पर्वाणि । मज्जानम् । कः । मांसम् । कुतः । आ । अभरत् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(कुतः) किससे [किस उपादेय कारण से प्राणियों के] (केशान्) केशों को, (कुतः) कहां से (स्नाव) सूक्ष्मनाड़ी [वायु ले चलने वाली नस], (कुतः) कहां से (अस्थीनि) हड्डियों को (आ अभरत्) उस

११—(यदा) यस्मिन् सृष्टिकाले (अस्थि) (स्नाव) अ० २। ३३। ६। वायुवाहिनी सूक्ष्मा नाडी (मांसम्) प्राणिदेहस्थशोणितपरिपाकजं धातुभेदम् (मज्जानम्) अ० १। ११। ४। अस्थिमध्यस्थस्नेहम् (आभरत्) आनीय धृतवान् स परमेश्वरः (शरीरम्) कलेवरम् (कृत्वा) निर्माय (पादवत्) हस्तपादाद्यङ्गोपाङ्गसहितम् (कम्) प्रश्ने (लोकम्) स्थानम् (अनु) पश्चात् (प्राविशत्) प्रविष्टवान् ॥

१२—(कुतः) पञ्चम्यास्तसिल्। पा० ५। ३। ७। कु तिहोः। पा० ७। २। १०४। किमस्तसिल् कु च। कस्मादुपादेयकारणात् (अङ्गा) शरीराङ्गानि (पर्वाणि) शरीरसन्धीन् (मज्जानम्) अस्थ्यन्तर्गतं रसम् (कः) करोतेः-ड।

[कर्त्ता परमेश्वर] ने लाकर धरा। (अङ्गा) अङ्गों, (पर्वाणि) जोड़ों, (मज्जानम्) मज्जा [हड्डी के भीतर के रस], और (मांसम्) मांस को (कः) कर्ता [प्रजापति परमेश्वर] ने (कुतः) कहां से (आ अभरत्) ला कर धरा ॥ १२ ॥

भावार्थ—परमेश्वर प्राणियों के शरीर के बड़े और छोटे अवयव किस सामग्री से बनाता है। इस का भी उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ १२ ॥

यह मन्त्र १०, ११ तथा १२ का उत्तर है ॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १३ ॥

सम्-सिचः । नाम । ते । देवाः । ये । सम्-भारान् । सम्-अभरन् ॥ सर्वम् । सम्-सिच्य । मर्त्यम् । देवाः । पुरुषम् । आ । अविशन् ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(संसिचः) परस्पर सींचने वाले (नाम) प्रसिद्धः (ते) वे (देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी आदि पंचभूत] हैं, (ये) जिन्हों ने (संभारान्) [उन] संग्रहों [उपकरण द्रव्यों को (समभरन्) मिलाकर भरा है। (देवाः) [उन] दिव्य पदार्थों ने (सर्वम्) सब (मर्त्यम्) मरण धर्मी [शरीर] को (संसिच्य) परस्पर सींचकर (पुरुषम्) पुरुष में [आत्मा सहित शरीर में] (आ अविशन्) प्रवेश किया है ॥ १३ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के सामर्थ्य से पूर्व कल्प के समान पृथिवी, जल आदि पांचों तत्त्व आपस में मिलकर शरीर के इन्द्रिय आदि अवयवों को बना कर स्वयम् भी प्राणियों के शरीर में प्रवेश कर रहे हैं ॥ १३ ॥

कर्ता प्रजापतिः। कः कमनो या क्रमणो वा सुखो वा—निरु० १०। २२। अन्यद् व्याख्यातम्—म० ११।

१३—(संसिचः) परस्परसेचकाः सन्धायकाः (नाम) प्रसिद्धौ (ते) पूर्वोक्ताः (देवाः) दिव्यपदार्थाः पृथिव्यादिपञ्चभूतरूपाः (ये) (संभारान्) सम् + डुभृञ् धारणपोषणयोः—घञ्। संग्राहान्। उपकरणद्रव्यानि (समभरन्) एकीकृत्य धृतवन्तः (सर्वम्) (संसिच्य) परस्परमार्द्रीकृत्य (मर्त्यम्) मरणधर्माणं देहम् (देवाः) (पुरुषम्) अ० १। १६। ४। सात्मकं शरीरम् (आ अविशन) प्रविष्टवन्तः ॥

ऊ॒रू पादा॑वष्ठी॒वन्तौ॒ शिरो॒ हस्ता॒वथो॒ मुख॑म् ।
पृ॒ष्टीर्ब॑र्ज॒ह्ये॑ पा॒र्श्वे कस्तत् सम॑दधा॒दृषि॑: ॥ १४ ॥

ऊ॒रू इति॑ । पादौ॑ । अ॒ष्ठी॒वन्तौ॑ । शिर॑: । हस्तौ॑ । अथो॒ इति॑ । मुख॑म् ॥ पृ॒ष्टीः । ब॒र्ज॒ह्ये॒३॑ इति॑ । पा॒र्श्वे इति॑ । क: । तत् । सम् । अ॒द॒धा॒त् । ऋषि॑: ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(ऊरू) दोनों जंघाओं, (अष्ठीवन्तौ) दोनों घुटनों, (पादौ) दोनों पैरों, (हस्तौ) दोनों हाथों, (अथो) और भी (शिरः) शिर, (मुखम्) मुख, (पृष्टीः) पसलियों, (बर्जह्ये) दोनों कुच की टीपनी, (पार्श्वे) दोनों कोखों को (तत्) तब (कः) किस (ऋषिः) ऋषि [ज्ञानवान्] ने (सम् अदधात्) मिला दिया ॥ १४ ॥

भावार्थ—शरीर के भीतर जंघा आदि को किस चतुर ज्ञानी ने आपस में जोड़कर जमा दिया है। इसका उत्तर अगले मन्त्र में है ॥ १४ ॥

शिरो॒ हस्ता॒वथो॒ मुखं॒ जि॒ह्वां ग्री॒वाश्च॒ कीक॑साः ।
त्व॒चा प्रा॒वृत्य॒ सर्वं॒ तत् सं॒धा सम॑दधा॒न्म॒ही ॥ १५ ॥

शिर॑: । हस्तौ॑ । अथो॒ इति॑ । मुख॑म् । जि॒ह्वाम् । ग्री॒वाः । च॒ । कीक॑साः । त्व॒चा । प्र॒-आ॒वृत्य॑ । सर्व॑म् । तत् । स॒म्-धा । सम् । अ॒द॒धा॒त् । म॒ही ॥ १५ ॥

१४—(ऊरू) जानोरुपरिभागौ (पादौ) (अष्ठीवन्तौ) अ० २ । २३ । ५ । ऊरुपादयोर्मध्यस्थे जानुनी (शिरः) मस्तकम् (हस्तौ) (अथो) अपि च (मुखम्) (पृष्टीः) अ० २ । ७ । ५ । पर्श्वस्थीनि (बर्जह्ये) बल जीवने-विच्, लस्य रः+जनेर्यक् । उ० ४ । १११ । ओ हाक् त्यागे—यक् । जहातेर्द्वे च । उ० २ । ४ । इति अवर्णाद् द्वित्वम् । कुचाग्रभागौ (पार्श्वे) अ० २ । ३३ । ३ । कक्षयोरधोभागौ (कः) प्रश्ने (समधात) संहितवान् संश्लिष्टवान् (ऋषिः) अ० २ । ६ । १ । ज्ञानवान् ॥

भाषार्थ—(हस्तौ) दोनों हाथों, (शिरः) शिर, (अथो) और भी (मुखम्) मुख, (जिह्वाम्) जीभ, (ग्रीवाः) गले की नाड़ियों, (च) और (कीकसाः) हंसली की हड्डियों। (तत् सर्वम्) इस सबको (त्वचा) खाल से (प्रावृत्य) ढक कर (मही) बड़ी (संधा) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] ने (सम् अधात्) मिला दिया ॥ १५ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने तत्त्वों के संयोग वियोग से प्राणियों के अङ्गों को बनाकर और ऊपर से खाल में लपेट कर एक दूसरे में मिला दिया है। यह गत मन्त्र का उत्तर है ॥ १५ ॥

यत्तच्छरीरमशयत् संधया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत् ॥ १६ ॥

यत्। तत्। शरीरम्। अशयत्। सम्-धया। सम्-हितम्। महत् ॥ येन। इदम्। अद्य। रोचते। कः। अस्मिन्। वर्णम्। आ। अभरत् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(यत्) जब (संधया) जोड़ने वाली [शक्ति, परमेश्वर] करके (संहितम्) जोड़ा हुआ (तत्) वह (महत्) महान् [समर्थ] (शरीरम्) शरीर (अशयत्) पड़ा हुआ था। [तब] (येन) जिस [रंग] से (इदम्) यह [शरीर] (अद्य) आज (रोचते) रुचता है, (कः) किसने (अस्मिन्) इस [शरीर]

१५—(जिह्वाम्) रसनाम् (ग्रीवाः) अ० २। ३३। २। कन्धरावयवान् (च) (कीकसाः) अ० २। ३३। २। जत्रुवक्षोगतास्थीनि (त्वचा) चर्मणा (प्रावृत्य) आच्छाद्य (सर्वम्) (तत्) पूर्वोक्तम् (सन्धा) आतश्चोपसर्गे। पा० ३। १। १३६। इति संदधातेः कर्तरि-कप्रत्ययः। सन्धानकर्त्री शक्तिः परमेश्वरः (मही) महती। अन्यत् पूर्ववत्—म० १४ ॥

१६—(यत्) यदा (तत्) उक्तप्रकारम् (शरीरम्) (अशयत्) शीङ् स्वप्ने-लुङि छान्दसं रूपम्। अशयिष्ट। वर्तते स्म (संधया) म० १५। सन्धात्र्या शक्त्या (संहितम्) संश्लिष्टम् (महत्) समर्थम् (येन) वर्णेन (इदम्) शरीरम् (अद्य) (रोचते) रुचिरं दृश्यते। दीप्यते (कः) (अस्मिन्) शरीरे

में (वर्णम्) वर्ण [रंग] (आ अभरत्) सब ओर से भर दिया ॥ १६ ॥

भावार्थ—जब शरीर अवयवों सहित चर्म में लपेटकर रख दिया गया, फिर उस पर गोरा, काला, पीला आदि रंग किसने चढ़ाया। इस मन्त्र का उत्तर अगले मंत्र में है ॥ १६ ॥

सर्वे॑ दे॒वा उपा॑शिक्ष॒न् तद॑जानाद् व॒धूः स॒ती ।
ई॒शा वश॑स्य॒ या जा॒या सास्मि॒न् वर्ण॒माभ॑रत् ॥ १७ ॥

सर्वे॑ । दे॒वाः । उप॑ । अ॒शि॒क्ष॒न् । तत् । अ॒जा॒ना॒त् । व॒धूः । स॒ती ॥ ई॒शा । वश॑स्य । या । जा॒या । सा । अ॒स्मि॒न् । वर्ण॑म् । आ । अ॒भ॒र॒त् ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थों [तत्त्वों के गुणों] ने (उप) उपकारीपन से (अशिक्षन्) समर्थ [सहायक] होना चाहा, (तत्) उस [कर्म] को (सती) सत्यव्रता (वधूः) चलाने वाली [परमेश्वर शक्ति] (अजानात्) जानती थी। (वशस्य) वश करने वाले [परमेश्वर] की (या) जो (ईशा) ईश्वरी (जाया) उत्पन्न करने वाली शक्ति है, (सा) उसने (अस्मिन्) इस [शरीर] में (वर्णम्) रङ्ग (आ) सब ओर से (अभरत्) भर दिया ॥ १७ ॥

भावार्थ—तत्त्वों के संयोग वियोग क्रिया जानने वाले महारासायनिक, सर्वनियन्ता, सत्यव्रती, परमेश्वर ने अपनी शक्ति से व्यक्ति व्यक्ति को विशेष करके जानने के लिये शरीर पर गोरा, काला, पीला आदि रंग चढ़ा दिया ॥१७॥

(वर्णम्) शुक्लादिरूपम् (आ) समन्तात् (अभरत्) धृतवान् ॥

१७—(सर्वे) (देवाः) दिव्यपदार्थाः। तत्त्वगुणाः (उप) उपकारकत्वेन (अशिक्षन्) शक्लृ शक्तौ-सन्, लङ्। शक्ताः सहायका भवितुमैच्छन् (तत्) वर्णकर्म (अजानात्) ज्ञातवती (वधूः) वहेर्धश्च। उ० १। ८३। वह प्रापणे-ऊ, हस्य धः। वहनशक्तिः परमेश्वरः (सती) सत्यव्रता (ईशा) ईश ऐश्वर्ये-क, टाप्। ईश्वरी नियन्त्री (वशस्य) वश कान्तौ-कर्तरि अच। वशयितुः परमेश्वरस्य (या) (जाया) म० १। उत्पादनशक्तिः (सा) नियन्त्री शक्तिः ॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।

गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ १८ ॥

यदा । त्वष्टा । वि-अतृणत् । पिता । त्वष्टुः । यः । उत्तरः ॥ गृहम् । कृत्वा । मर्त्यम् । देवाः । पुरुषम् । आ । अविशन् १८

भाषार्थ—(यः) जो (त्वष्टुः) कर्मकर्ता [जीव] का (उत्तरः) अधिक उत्तम (पिता) पिता [पालक] है, (यदा) जब (त्वष्टा) विश्वकर्ता [उस सृष्टि कर्ता परमेश्वर] ने [जीव के शरीर में] (व्यतृणत्) विविध छेद किये। [तब] (देवाः) दिव्य पदार्थों [इन्द्रिय की शक्तियों] ने (मर्त्यम्) मरणधर्मी [नश्वर शरीर] को (गृहम्) घर (कृत्वा) बनाकर (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष शरीर] में (आ अविशन्) प्रवेश किया ॥ १८ ॥

भावार्थ—जब जगत् पिता परमेश्वर ने शरीर में नेत्र, कान आदि गोलक बनाये, तब उसने उनमें उन की शक्तियों को प्रवेश कर दिया ॥ १८ ॥

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।

जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥ १९ ॥

स्वप्नः । वै । तन्द्रीः । निः-ऋतिः । पाप्मानः । नाम । देवताः ॥ जरा । खालत्यम् । पालित्यम् । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(स्वप्नः) नींद (वै) और भी (तन्द्रीः) थकावटें, (निर्ऋतिः) अलक्ष्मी [महामारी, दरिद्रता आदि], (नाम), अर्थात् (पाप्मानः) पाप

१८—(यदा) यस्मिन् सृष्टिकाले (त्वष्टा) विश्वकर्मा। सृष्टिकर्त्ता परमेश्वरः (व्यतृणत्) उ तृदिर् हिंसानादरयोः। विविधं छिद्राणि कृतवान् पुरुषशरीरे (पिता) पालकः (त्वष्टुः) कर्मकर्तुः प्राणिनः (यः) (उत्तरः) उत्कृष्टतरः (गृहम्) आवासस्थानम् (कृत्वा) निर्माय (मर्त्यम्) मरणधर्मकं नश्वरं शरीरम् (देवाः) दिव्यपदार्थाः। इन्द्रियशक्तयः (पुरुषम्) पुरुषशरीरम् (आ अविशन्) प्रविष्टवन्तः ॥

१९—(स्वप्नः) निद्रा (वै) अपि (तन्द्रीः) तन्द्र्यः आलस्यानि (निर्ऋतिः) अ० २। १०। १। कृच्छ्रापत्तिः—निरु० २। ७ (पाप्मानः) अ० ३। ३१। १।

व्यवहार, (देवताः) दुःख दायी इच्छायें, (जरा) बुढ़ापा (खालत्यम्) गंजापन, (पालित्यम्) केशों के भूरेपन ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ १६ ॥

भावार्थ—पापियों के दुष्टकर्मों के फल से उन के शरीर में निर्बलता के कारण निद्रा आदि दोष घुस पड़ते हैं ॥ १६ ॥

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २० ॥ (२३)

स्तेयम् । दुः-कृतम् । वृजिनम् । सत्यम् । यज्ञः । यशः । बृहत् ॥ बलम् । च । क्षत्रम् । ओजः । च । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् ॥ २० ॥ (२३)

भाषार्थ—(स्तेयम्) चोरी, (दुष्कृतम्) दुष्टकर्म, (वृजिनम्) पाप, (सत्यम्) सत्य [यथार्थ कथन कर्म आदि], (यज्ञः) यज्ञ [देव पूजा आदि] और (बृहत्) वृद्धिकारक (यशः) यश, (बलम्) बल (च) और (ओजः) पराक्रम (च) और (क्षत्रम्) हानि से रक्षक गुण [क्षत्रियपन] ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २० ॥

भावार्थ—मनुष्य के दुष्ट विचारों से चोरी आदि दुष्ट कर्म और उनके नरक आदि बुरे फल और शुभ विचारों से सत्य कर्म आदि उत्तम कर्म और उनके मोक्ष आदि उत्तम फल शरीर द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

पापव्यवहाराः (नाम) प्रसिद्धौ (देवताः) दिवु मर्दने—अच्, तल् । हिंसनेच्छाः (जरा) वृद्धावस्था (खालत्यम्) खलतिः । उ० ३ । ११२ । स्खल संचलने अतच्, सलोपः, अत इत्वं च । खलतिर्निष्केशशिराः पुरुषः । ततो भावे ष्यञ् । इन्द्रलुप्तरोगः । केशनाशकरोगः (पालित्यम्) पलित—ष्यञ् । केशेषु जरया श्वेतत्वम् (शरीरम्) (अनु) अनुक्रमेण (प्र अविशन्) प्रविष्टवन्तः ॥

२०—(स्तेयम्) चौरत्वम् (दुष्कृतम्) दुष्टकर्म (वृजिनम्) अ० १ । १० । ३ । पापम् (सत्यम्) यथार्थकथनादिकर्म (यज्ञः) देवपूजादिव्यवहारः (यशः) कीर्तिः (बृहत्) सुखवृद्धिकरम् (बलम्) (च) (क्षत्रम्) अ० २ । १५ । ४ । क्षत्+त्रैङ् पालने—क । क्षतः क्षतात्, हानेः रक्षकं क्षत्रियत्वम् (ओजः) पराक्रमः (च) अन्यत् पूर्ववत् ॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥ २१ ॥

भूतिः । च । वै । अभूतिः । च । रातयः । अरातयः । च । याः ॥ क्षुधः । च । सर्वाः । तृष्णाः । च । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् ॥ २१ ॥

भाषार्थ—(भूतिः) सम्पत्ति, (च वै) और भी (अभूतिः) निर्धनता (च) और (रातयः) दानशक्तियां, (च) और (याः) जो (अरातयः) कंजूसी की बातें [हैं, उन्हों ने] (च) और (क्षुधः) भूखा (च) और (सर्वाः) सब (तृष्णाः) तृष्णाओं ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २१ ॥

भावार्थ—मन की स्थिरता से सम्पत्ति आदि सुख, और उसकी चञ्चलता से निर्धनता आदि कष्ट प्राणी को शरीर द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा च नु प्राविशन् ॥ २२ ॥

निन्दाः । च । वै । अनिन्दाः । च । यत् । च । हन्त । इति । न । इति । च ॥ शरीरम् । श्रद्धा । दक्षिणा । अश्रद्धा । च । अनु । प्र । अविशन् ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(निन्दाः) निन्दायें [गुणों में दोष लगाने] (च च वै) और भी (अनिन्दाः) अनिन्दायें [स्तुति, गुणों के कथन] (च) और (यत्)

२१—(भूतिः) सम्पत्तिः (च) (वै) एव (अभूतिः) निर्धनता (च) (रातयः) दानशक्तयः (अरातयः) कार्पण्यानि (च) (याः) (क्षुधः) बुभुक्षाः (च) (सर्वाः) (तृष्णाः) पिपासाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२२—(निन्दाः) गुरोश्च हलः । पा० ३ । ३ । १०३ । णिदि कुत्सायाम्-अप्रत्ययः । गुणेषु दोषारोपाः (च च) समुच्चये (वै) एव (अनिन्दाः)

जो कुछ (हन्त) "हां"—(इति) ऐसा, (च) और (न) "ना"-(इति) ऐसा है और (दक्षिणा) दक्षिणा [प्रतिष्ठा],(श्रद्धा) श्रद्धा [सत्य ईश्वर और वेद में विश्वास] (च) और (अश्रद्धा) अश्रद्धा [ईश्वर और वेद में भक्ति न होना] [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २२ ॥

भावार्थ—मनुष्य विहित कर्मों के करने और निषिद्ध कर्मों को छोड़ने से सुसंस्कार के कारण शरीर द्वारा सुख प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥ २३ ॥

विद्याः । च । वै । अविद्याः । च । यत् । च । अन्यत् । उप-देश्यम् । शरीरम् । ब्रह्म । प्र । अविशत् । ऋचः । साम । अथो इति । यजुः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(विद्याः) विद्यायें [तत्त्वज्ञान] (च च वै) और भी (अविद्याः) अविद्यायें [मिथ्या कल्पनायें] (च) और (यत्) जो कुछ (अन्यत्) दूसरा (उपदेश्यम्) उपदेश योग्य कर्म [विद्या और अविद्या से सम्बन्धवाला विषय है, वह] और (ब्रह्म) ब्रह्म [ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय संयम आदि तप] (ऋचः) ऋचायें [पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्यायें] (साम=सामानि) साम ज्ञान [मोक्ष विद्यायें] (अथो) और भी (यजुः=यजूंषि) यजुर्ज्ञान

स्तुतयः । गुणकथनानि (च) (यत्) (च) (हन्त) हन हिंसागत्योः-त प्रत्ययः । हर्षे । स्वीकारे कर्मणां विधिसूचकः शब्दः (इति) वाक्यसमाप्तौ (न) निषेधे । कर्मणां निषेधसूचकः शब्दः (इति) (च) (शरीरम्) (श्रद्धा) सत्ये परमेश्वरे वेदे च विश्वासः (दक्षिणा) प्रतिष्ठा (अश्रद्धा) नास्तिकबुद्धिः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२३—(विद्याः) तत्त्वज्ञानानि (च) (वै) (अविद्याः) मिथ्याकल्पनाः (च) (यत्) (च) (अन्यत्) कर्म (उपदेश्यम्) हितकथनेन गम्यम् । विद्याविद्ययोराश्रयभूतम् (शरीरम्) (ब्रह्म) ब्रह्मचर्यम् । इन्द्रिय-

[ब्रह्म निरूपक विद्यायें], [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशत्) प्रवेश किया ॥ २३ ॥

भावार्थ—मनुष्य आचार्य द्वारा विद्या और अविद्या के ज्ञान और ब्रह्मचर्य के धारण करने से चारों वेदों में वर्णित कर्म, उपासना, ज्ञान–त्रयीविद्या में निष्ठा करके आनन्द पाता है ॥ २३ ॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥ २४ ॥

आ-नन्दाः । मोदाः । प्र-मुदः । अभिमोद-मुदः । च । ये ॥
हसः । नरिष्टा । नृत्तानि । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् ।२४।

भाषार्थ—(आनन्दाः) आनन्द, (मोदाः) हर्ष, (प्रमुदः) बड़े आनन्द (च) और (ये) (अभिमोदमुदः) बड़े उत्सवों से हर्ष देने वाले पदार्थ हैं [वे सब और] । (हसः) हंसी, (नृत्तानि) नाचों और (नरिष्टा) मङ्गल कामों [खेल कूद आदि] [इन सब ने] (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य शरीर द्वारा अनेक शुभ कर्म करके अनेक मङ्गल मनावें ॥ २४ ॥

इस मन्त्र का पूर्वार्द्ध आचुका है—अ० ११ । ७ । २६ ॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वं प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥ २५ ॥

संयमरूपं तपः (प्राविशत्) प्रविष्टमभवत् (ऋचः) पदार्थानां गुणप्रकाशिका विद्याः (साम) सामानि । मोक्षज्ञानानि (अथो) अपि च (यजुः) यजूंषि । ब्रह्मनिरूपकज्ञानानि ॥

२४—पूर्वार्धर्चो व्याख्यातः—अ० ११ । ७ । २६ (हसः) स्वनहसोर्वा । पा० ३ । ३ । ६२ । हसे हसने—अप् । हासः (नरिष्टा) न+रिष हिंसायाम्—कर्तरि-क्त । शेर्लोपः । अरिष्टानि । अहिंसकानि । मङ्गलकर्माणि (नृत्तानि) नृती गात्रविक्षेपे-क्त । तालमानयुक्तान्यङ्गविक्षेपरूपाणि नर्तनानि । अन्यत् पूर्ववत्—म० २२ ॥

आ-लापाः । च । प्र-लापाः । च । अभिलाप-लपः । च । ये ॥
शरीरम् । सर्वे । प्र । अविशन् । आ-युजः । प्र-युजः । युजः ।२५।

भाषार्थ—(आलापाः) आलाप [सार्थक बातें] (च) और (प्रलापाः) प्रलाप [अनर्थक बातें, बकवाद] (च च) और (ये) जो (अभिलापलपः) व्याख्यानों के कथन व्यवहार हैं, [उन सब ने और] (आयुजः) उद्योगों, (प्रयुजः) प्रयोजनों और (युजः) योगों [समाधि क्रियाओं], (सर्वे) इन सब ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २५ ॥

भावार्थ—उत्साह के बढ़ाने वाले आलाप आदि व्यवहार शरीर के साथ मनुष्य को सुखदायक होते हैं ॥ २५ ॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥ २६ ॥

प्राणापानौ । चक्षुः । श्रोत्रम् । अक्षितिः । च । क्षितिः । च । या ॥ व्यान-उदानौ । वाक् । मनः । शरीरेण । ते । ईयन्ते २

भाषार्थ—(प्राणापानौ) प्राण और अपान [भीतर और बाहिर जाने वाला श्वास], (चक्षुः) नेत्र, (श्रोत्रम्) कान, (च) और (या) जो (अक्षितिः) [सुख की] निर्हानि (च) और (क्षितिः) [दुःख की] हानि । (व्यानोदानौ) व्यान [सब नाड़ियों में रस पहुंचाने वाला वायु] और उदान [ऊपर को चढ़ने वाला वायु], (वाक्) वाणी और (मनः) मन, (ते) ये सब (शरीरेण) शरीर के साथ (ईयन्ते) चलते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—जीवों में प्राण अपान आदि सब व्यापार शरीर के साथ होते हैं ॥ २६ ॥

इस मन्त्र के पहिले तीन पाद ऊपर मन्त्र ४ में आ चुके हैं ॥

२५—(आलापाः) आङ् + लप व्यक्तायां वाचि-घञ् । सार्थकानि वचनानि (प्रलापाः) निरर्थकानि वचनानि (च) (अभिलापलपः) लपेः क्विप् । अभिलापानां व्याख्यानां कथनव्यवहाराः (च) (ये) (सर्वे) (आयुजः) आङ् + युजिर् योगे, युज संयमने—क्विप् । आयोजनानि । उद्योगाः (प्रयुजः) प्रयोजनानि । कारणानि (युजः) युज समाधौ—क्विप् । ध्यानक्रियाः ॥

२६—त्रयः पादाः पूर्ववत्—म० ४ (शरीरेण) देहेन (ते) पूर्वोक्ताः पदार्थाः (ईयन्ते) ईङ् गतौ—श्यन् । गच्छन्ति । प्रवर्तन्ते ॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥ २७ ॥

आ-शिषः । च । प्र-शिषः । च । सम्-शिषः । वि-शिषः । च । याः ॥ चित्तानि । सर्वे । सम्-कल्पाः । शरीरम् । अनु । प्र । अविशन् ॥ २७ ॥

भाषार्थ—(आशिषः) आशीर्वादों [हित प्रार्थनाओं], (च) और (प्रशिषः) उत्तम शासनों (च) और (संशिषः) यथावत् प्रबन्धों (च) और (याः) जो (विशिषः) विशेष परामर्श हैं [उन्होंने], (चित्तानि) अनेक विचारों और (सर्वे) सब (सङ्कल्पाः) सङ्कल्पों [मनोरथों] ने (शरीरम्) शरीर में (अनु) धीरे धीरे (प्र अविशन्) प्रवेश किया ॥ २७ ॥

भावार्थ—मनुष्य शरीर के सम्बन्ध से ज्ञान प्राप्त करके हित प्रार्थनाओं और शासन आदि क्रियाओं को दृढ़ सङ्कल्पी होकर सिद्ध करे ॥ २७ ॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥ २८ ॥

आस्तेयीः । च । वास्तेयीः । च । त्वरणाः । कृपणाः । च । याः ॥ गुह्याः । शुक्राः । स्थूलाः । अपः । ताः । बीभत्सौ । असादयन् ॥ २८ ॥

भाषार्थ—(आस्तेयीः) अस्ति [रुधिर] में रहने वाले (च) और (वास्तेयीः) बस्ति [पेडू वा मूत्राशय] में रहने वाले (च) और (त्वरणाः)

२७—(आशिषः) आङः शासु इच्छायाम्—क्विप् । उपधाया इत्वम् । आशीर्वादाः । हितप्रार्थनाः (प्रशिषः) शासु अनुशिष्टौ—क्विप् । उत्तमानि शासनानि (संशिषः) सम्यक् शासनानि । प्रबन्धकर्माणि (विशिषः) विशेषपरामर्शाः (च) (याः) (चित्तानि) विचाराः (सर्वे) (सङ्कल्पाः) दृढ़मनोरथाः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

२८—(आस्तेयीः) वसेस्तिः । उ० ४ । १८० । असु क्षेपणे—ति । अस्यते क्षिप्यते या नाडीषु सा अस्तिः, असृग् रक्तम् । दृतिकुक्षिकलशिवस्त्यस्त्यहेर्ढञ् ।

शीघ्र चलने वाले (च) और (कृपणाः) दुर्बल [पतले], (स्थूलाः) गाढ़े (गुह्याः) गुहा [शरीर के गुप्त स्थान] में रहने वाले और (शुक्राः) वीर्य [वा रज] में रहने वाले (याः) जो [जल हैं], (ताः आपः) उन जलों को (बीभत्सौ) परस्पर बंधे हुये [शरीर] में (असादयन्) उन [ईश्वर नियमों] ने पहुंचाया ॥ २८ ॥

भावार्थ—परमेश्वर ने नाड़ियों द्वारा वायु की गति से जल को विविध प्रकार पहुंचा कर शरीर को काम करने योग्य बनाया है ॥ २८ ॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।

रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

अस्थि । कृत्वा । सम्-इधम् । तत् । अष्ट । आपः । असादयन् ॥ रेतः । कृत्वा । आज्यम् । देवाः । पुरुषम् । आ । अविशन् ॥ २९ ॥

भाषार्थ—(आपः) व्यापक (देवाः) दिव्य गुणों [ईश्वर नियमों] ने (तत्) फिर (अस्थि) हड्डी को (समिधम्) समिधा [इन्धन समान पाक साधन] (कृत्वा) बनाकर और (रेतः) वीर्य [वा स्त्री रज] को (आज्यम्)

पा० ४ । ३ । ५६ । अस्ति-ढञ् । तत्र भव इत्यर्थे, ङीप्-च । आस्तेय्यः । रक्ते वर्तमानाः (वास्तेयीः) वस्ति-ढञ् पूर्ववत् । मूत्राधारे नाभेरधोभागे भवाः (च) (त्वरणाः) त्वरया गच्छन्त्यः (कृपणाः) रञ्जेः क्युन् । उ० २ । ७९ । कृप दौर्बल्ये-क्युन् । दुर्बलाः । कृशाः (च) (याः) आपः (गुह्याः) गुहायां गर्ते भवाः (शुक्राः) शुक्रे वीर्ये रजसि वा भवाः (स्थूलाः) घनाः । स्निग्धाः (अपः) जलानि (ताः) पूर्वोक्ताः (बीभत्सौ) मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य । पा० ३ । १ । ६ । बध बन्धने-सन् स्वार्थे । सनाशंसभिक्ष उः । पा० ३ । २ । १६८ । उप्रत्ययः । परस्परसम्बन्धिनि शरीरे (असादयन्) षद्लृ गतौ-णिच्, लङ् । प्रापितवन्तः । प्रेरितवन्तः ॥

२९—(अस्थि) (कृत्वा) निर्माय (समिधम्) समिन्धनसाधनं शरीरपरिपाकस्य निमित्तम् (तत्) तदा (अष्ट) अष्टधा । रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः—इत्येते सप्तधातवो मनश्चेत्येभिः (आपः) आपः=

घृत [घृत समान पुष्टिकारक] (कृत्वा) बनाकर (अष्ट) आठ प्रकार से [रस अर्थात् खाये अन्न का सार, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य, वा स्त्री रज इन सात धातुओं और मन के द्वारा] (पुरुषम्) पुरुष [प्राणी के शरीर] को (असादयन्) चलाया, और [उस में] (आ अविशन्) उन्होंने प्रवेश किया ॥ २९ ॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वर ने अपनी शक्ति के प्रवेश से प्रधानता से हड्डियों को काष्ठ रूप अन्न आदि के पाक का साधन और पुरुष के वीर्य वा वा स्त्री के रज को घृत समान पुष्टिकारक बनाकर रस, रक्त, मांस आदि सात धातुओं और मन के द्वारा प्राणियों के शरीर को कार्य योग्य किया है ॥ २९ ॥

या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥ ३० ॥

याः । आपः । याः । च । देवताः । या । वि-राट् । ब्रह्मणा । सह ॥ शरीरम् । ब्रह्म । प्र । अविशत् । शरीरे । अधि । प्रजा-पतिः ॥ ३० ॥

भाषार्थ—(याः) जो (आपः) व्यापक [इन्द्रियों की शक्तियां] (च) और (याः) जो (देवताः) दिव्य गुण वाले [इन्द्रियों के गोलक] हैं, और (या) जो (विराट्) विराट् [विविध प्रकार शोभायमान प्रकृति] (ब्रह्मणा सह) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ है । [इस सब ने और] (ब्रह्म) अन्न ने (शरीरम्) शरीर में (प्र अविशत्) प्रवेश किया, और (प्रजापतिः) प्रजापति

आपनाः—निरु० १२ । ३७ । व्यापकाः (असादयन्) म० २८ । प्रेरितवन्तः (रेतः) वीर्यं स्त्रीरजो वा (कृत्वा) (आज्यम्) घृतवत्पुष्टिकरम् (देवाः) दिव्याः परमेश्वरगुणाः (पुरुषम्) प्राणिशरीरम् (आ अविशन्) प्रविष्टवन्तः ॥

३०—(याः) (आपः) आप आपनानि–निरु० १२ । ३७ व्यापकानीन्द्रियसामर्थ्यानि (याः) (च) (देवताः) दिव्यगुणानीन्द्रियच्छिद्राणि (या) (विराट्) विविधराजमाना प्रकृतिः (ब्रह्मणाः) परमात्मना (सह) (शरीरम्)

[इन्द्रिय आदि प्रजाओं का स्वामी, जीवात्मा] (शरीरे) शरीर में (अधि) अधिकार पूर्वक [ठहरा] ॥ ३० ॥

भावार्थ—परमात्मा ने जीव के शरीर में इन्द्रियों को उनकी शक्तियों सहित प्रकृति द्वारा रचा और शरीर पुष्टि के लिये अन्न आदि पदार्थ देकर सब का अधिष्ठाता जीवात्मा को किया ॥ ३० ॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ ३१ ॥

सूर्यः । चक्षुः । वातः । प्राणम् । पुरुषस्य । वि । भेजिरे ॥ अथ । अस्य । इतरम् । आत्मानम् । देवाः । प्र । अयच्छन् । अग्नये ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—(सूर्यः) सूर्य ने (पुरुषस्य) [जीवात्मा] के (चक्षुः) नेत्र को, (वातः) वायु ने (प्राणम्) प्राण [उसके श्वास प्रश्वास] को (वि) विशेष करके (भेजिरे=भेजे) स्वीकार किया । (अथ) फिर (देवाः) दिव्य पदार्थों [दूसरे इन्द्रिय आदि] ने (अस्य) इस [जीवात्मा] का (इतरम्) दूसरा (आत्मानम्) शरीर का अवयव समूह (अग्नये) अग्नि को (प्र अयच्छन्) दान किया ॥ ३१ ॥

भावार्थ—ईश्वर नियम से जैसे शरीर में सूर्य का प्रधानत्व नेत्र पर और वायु का श्वास प्रश्वास पर है, इसी प्रकार अग्नि तत्त्व की विशेषता शरीर के अन्य सब अङ्गों में है ॥ ३१ ॥

(ब्रह्म) अन्नम्-निघ० २ । ७ (प्राविशत्) (शरीरे) अधि) अधिकारपूर्वकम् (प्रजापतिः) इन्द्रियादिप्रजानां पालको जीवात्मा-अतिष्ठत् इतिशेषः ॥

३१—(सूर्यः) प्रकाशप्रेरको लोकविशेषः (चक्षुः) नेत्रम् (वातः) वायुः (प्राणम्) श्वासप्रश्वासरूपम् (पुरुषस्य) जीवात्मनः (वि) विशेषेण (भेजिरे) एकवचनस्य बहुवचनम् । भेजे । स्वीचकार (अथ) अपि च (अस्य) प्राणिनः (इतरम्) अन्यम् (आत्मानम्) शरीरावयवसमूहम् (देवाः) इन्द्रियाद्या दिव्यपदार्थाः (प्र अयच्छन्) दत्तवन्तः (अग्नये) अग्नितत्त्वाय ॥

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

तस्मात् । वै । विद्वान् । पुरुषम् । इदम् । ब्रह्म । इति । मन्यते ॥ सर्वाः । हि । अस्मिन् । देवताः । गावः । गोस्थे-इव । आसते ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—(तस्मात्) उस से [ब्रह्म से उत्पन्न] (वै) निश्चय करके (पुरुषम्) पुरुष [पुरुष शरीर] को (विद्वान्) जानने वाला [मनुष्य] "(ब्रह्म) ब्रह्म [परमात्मा] (इदम्) परम ऐश्वर्य वाला है" (इति) ऐसा) (मन्यते) मानता है । (हि) क्योंकि (अस्मिन्) इस [परमात्मा] में (सर्वाः) सब (देवताः) दिव्यपदार्थ [पृथिवी, सूर्य आदि लोक] (आसते) ठहरते हैं, (इव) जैसे (गावः) गौयें (गोष्ठे) गोशाला में [सुख से रहती] हैं॥ ३२ ॥

भावार्थ—मनुष्य अपने शरीर में परमात्मा की अद्भुत स्थूल और सूक्ष्म रचना देखकर समस्त ब्रह्माण्ड का कर्ता, धर्ता और आधार उसको जाने ॥ ३२ ॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ् वि गच्छति । अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छतीहैकेन नि षेवते ॥ ३३ ॥

प्रथमेन । प्र-मारेण । त्रेधा । विष्वङ् । वि । गच्छति ॥ अदः । एकेन । गच्छति । अदः । एकेन । गच्छति । इह । एकेन । नि । सेवते ॥ ३३ ॥

३२—(तस्मात्) परमात्मनः सकाशात् (वै) एवं (विद्वान्) जानन् (पुरुषम्) पुरुषशरीरम् (इदम्) इन्देः कमिन्नलोपश्च । उ० ४ । १५७ । इदि परमैश्वर्ये—कमिन् । परमैश्वर्ययुक्तम् (ब्रह्म) परमात्मा (इति) एवम् (मन्यते) जानाति (सर्वाः) समस्ताः (हि) यस्मात् (अस्मिन्) परमात्मनि (देवताः) दिव्यपदार्थाः पृथिवीसूर्यादिलोकाः (गावः) धेनवः (गोष्ठे) गोशालायाम् (इव) (आसते) तिष्ठन्ति ॥

भाषार्थ—(प्रथमेन) पहिले [मरण समय के पहिले] से और (प्रमारेण) मरण के साथ (त्रेधा) तीन प्रकार पर (विष्वङ्) नाना गति से वह [प्राणी] (वि गच्छति) चला चलता है। वह [प्राणी] (एकेन) एक [शुभ कर्म] से (अदः) उस [मोक्ष सुख] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पाप कर्म] से (अदः) उस [नरक स्थान] को (गच्छति) पाता है, (एकेन) एक [पुण्य पाप के साथ मिले कर्म] से (इह) यहां पर [मध्य अवस्था में] (नि सेवते) नियम से रहता है ॥ ३३ ॥

भावार्थ—मनुष्य जीवनकाल और परलोक में अपने शुभ कर्म से मोक्ष, अशुभ कर्म से नरक, और दोनों पुण्य पाप की मध्य अवस्था में मोक्ष और नरक की मध्य अवस्था भोगता है ॥ ३३ ॥

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिं छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥ ३४ ॥(२४)

अप्-सु । स्तीमासु । वृद्धासु । शरीरम् । अन्तरा । हितम् ॥ तस्मिन् । शवः । अधि । अन्तरा । तस्मात् । शवः । अधि । उच्यते ॥ ३४ ॥ (२४)

भाषार्थ—(स्तीमासु) बाफ वाले, (वृद्धासु) बढ़े हुये (अप्सु अन्तरा) अन्तरिक्ष के भीतर (शरीरम्) शरीर (हितम्) रक्खा हुआ है। (तस्मिन् अन्तरा) उस [शरीर] के भीतर (शवः) बल [गति कारक वा वृद्धिकारक

३३—(प्रथमेन) मरणात् प्रथमकालेन (प्रमारेण) मरणेन सह (त्रेधा) त्रिप्रकारेण (विष्वङ्) विषु+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन्। नानागत्या (वि गच्छति) व्याप्य चलति (अदः) तत्। मोक्षपदम् (एकेन) पुण्यकर्मणा (गच्छति) प्राप्नोति (अदः) तत्। नरकस्थानम् (एकेन) पापकर्मणा (इह) अत्र। मोक्षनरकयोर्मध्यावस्थायाम् (एकेन) पुण्यपापमिश्रितेन कर्मणा (नि) नितराम्। नियमेन (सेवते) भुनक्ति ॥

३४—(अप्सु) आपः= अन्तरिक्षम्-निघ० १।३। अन्तरिक्षे। आकाशे (स्तीमासु) ष्टीम आर्द्रीभावे-पचाद्यच्। आर्द्रं कुर्वतीषु। वाष्पयुक्तासु (वृद्धासु) वृद्धियुक्तासु (शरीरम्) (अन्तरा) मध्ये (हितम्) धृतम् (तस्मिन्) शरीरे

जीवात्मा] (अधि) अधिकारपूर्वक है, (तस्मात्) उस [जीवात्मा] से (अधि) ऊपर (शवः) बल [गतिकारक वा वृद्धिकारक परमात्मा] (उच्यते) कहा जाता है ॥ ३४ ॥

भावार्थ—विशाल आकाश के भीतर मेघ, वायु आदि पदार्थ हैं। उस आकाश के भीतर सब शरीर हैं, शरीरों में चेतन्य जीवात्मा अधिष्ठाता है। उस जीवात्मा का भी अधिष्ठाता सर्व नियन्ता परमात्मा है ॥ ३४ ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सूक्तम् ९ ॥

१—२६ ॥ अर्बुदिर्देवता ॥ १ त्र्यवसाना सप्तपदा विराट्शक्वरी; २,५-८, १०, १२, १३, १८—२१ अनुष्टुप्; ३ परोष्णिक्; ४ त्र्यवसाना स्वराडार्षी जगती; ९,११,१४,२३ आस्तारपङ्क्तिः; १५ अतिजगती; १६ त्र्यवसाना ब्राह्म्युष्णिक्; १७ गायत्री; २२, २४, २५ त्र्यवसाना सप्तपदा शक्वरी; २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

राजप्रजाकृत्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्त्तव्य का उपदेश ॥

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥ १ ॥

(शवः) अ० ५ । २ । २ । श्वेः सम्प्रसारणं च । उ० ४ । १५३ । टुओश्वि गति-वृद्ध्योः—असुन् । बलम्—निघ० २ । ९ । गतिकरं वृद्धिकरं वा जीवात्मरूपं बलम् (अधि) उपरि (तस्मात्) जीवात्मनः सकाशात् (शवः) गतिकरं वृद्धिकरं वा परमात्मरूपं बलम् (अधि) उपरि (उच्यते) कथ्यते ॥

ये । बाहवः । याः । इषवः । धन्वनाम् । वीर्याणि । च ॥ असीन् । परशून् । आयुधम् । चित्त-आकूतम् । च । यत् । हृदि ॥ सर्वम् । तत् । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु । उत्-आरान् । च । प्र । दर्शय ॥ १ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (बाहवः) भुजायें, (याः) जो (इषवः) बाण, (च) और (धन्वनाम्) धनुषों के (वीर्याणि) वीर कर्म हैं [उनको] । (असीन्) तरवारों, (परशून्) परसाओं [कुल्हाड़ों], (आयुधम्) अस्त्र शस्त्र को, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और सङ्कल्प है । (तत् सर्वम्) उस सब [कर्म] को (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और (उदारान्) [हमें अपने] बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥ १ ॥

भावार्थ—सेनापति राजा अपने योद्धाओं, अस्त्र शस्त्रों, हृदय के विचारों, और मनोरथों को दृढ़ करके शत्रुओं को रोके और प्रजा की यथावत् रक्षा करे ॥ १ ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥ २ ॥

१—(ये) (बाहवः) भुजदण्डाः (याः) (इषवः) बाणाः (धन्वनाम्) धनुषाम् (वीर्याणि) वीरकर्माणि । शत्रुजयसामर्थ्यानि (असीन्) खड्गान् (परशून्) कुठारविशेषान् (आयुधम्) अस्त्रशस्त्रजातम् (चित्ताकूतम्) द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । पा० २ । ४ । २ । एकवद्भावादेकवचनम् । चित्तानां विचाराणाम्, आकूतानां संकल्पानां च समाहारः (च) (यत्) (हृदि) हृदये (सर्वम्) (तत्) (अर्बुदे) अर्व गतौ हिंसायां च—उदिच् प्रत्ययः । हे पुरुषार्थिन् शत्रुनाशक शूर सेनापते (त्वम्) (अमित्रेभ्यः) शत्रुभ्यः (दृशे) अ० १ । ६ । ३ । द्रष्टुम् (कुरु) अनुतिष्ठ (उदारान्) उद + आङ् + रा दाने—क । यद्वा उद् + ऋ गतिप्रापणयोः—घञ् । गम्भीरोपायान् (च) (प्र) प्रकृष्टेन (दर्शय) निरीक्षय ॥

उत् । तिष्ठत । सम् । नह्यध्वम् । मित्राः । देव-जनाः । यूयम् ॥
सम्-दृष्टा । गुप्ता । वः । सन्तु । या । नः । मित्राणि । अर्बुदे ॥२॥

भाषार्थ—(मित्राः) हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो ! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (सम् नह्यध्वम्) कवचों को पहिनो । (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति-म० १] (या) जो (नः) हमारे (मित्राणि) मित्र हैं, [वे सब] (वः) तुम लोगों के (संदृष्टा) देखे हुये और (गुप्ता) रक्षिता (सन्तु) होवें ॥ २ ॥

भावार्थ—सेनापति राजा आदि लोग अपने विजयी वीर सैनिकों और सहायक मित्रों को सावधान और अस्त्र शस्त्रों से सजाकर निरीक्षण करें और व्यूह रचना से उन की रक्षा करें ॥ २ ॥

उत्तिष्ठतमा रभेथामादानसंदानाभ्याम् ।
अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥ ३ ॥

उत् । तिष्ठतम् । आ । रभेथाम् । आदान-संदानाभ्याम् ॥
अमित्राणाम् । सेनाः । अभि । धत्तम् । अर्बुदे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [हे शूर सेनापति राजन् और प्रजागण] तुम दोनों (उत् तिष्ठतम्) खड़े हो जाओ, (आदानसन्दानाभ्याम्) दोनों पकड़ने और बांधने के यन्त्रों से [युद्ध] (आ रभेथाम्) आरम्भ करो,

२—(उत्तिष्ठत) उद्गच्छत (संनह्यध्वम्) संनाहान् कवचान् धारयत (मित्राः) डु मिञ् प्रक्षेपणे-क्त् । हे प्रेरकाः (देवजनाः) विजिगीषुलोकाः (यूयम्) (संदृष्टा) सम्यङ् निरीक्षितानि (गुप्ता) रक्षितानि (वः) युष्माकम् (सन्तु) (या) यानि (नः) अस्माकम् (मित्राणि) सुहृद्गणाः (अर्बुदे) म० १ । हे शूर सेनापते ॥

३—(उत्तिष्ठतम्) उच्चलतम् (आरभेथाम्) युद्धमुपक्रमेथाम् (आदानसन्दानाभ्याम्) आदीयते गृह्यत अनेनेति आदानं ग्रहणयन्त्रम् , सन्दीयते बध्यते अनेनेति बन्धनयन्त्रम् । ताभ्यां यन्त्राभ्याम् (अमित्राणाम्) शत्रूणाम्

और (अमित्राणाम्) बैरियों की (सेनाः) सेनाओं को (अभि धत्तम्) तुम दोनो बांध लो ॥ ३ ॥

भावार्थ—सेनापति राजा और सब प्रजागण मिलकर वीरता के साथ अनेक यन्त्र समूहों से शत्रुओं को घेर लेवें ॥ ३ ॥

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥ ४ ॥

अर्बुदिः । नाम । यः । देवः । ईशानः । च । नि-अर्बुदिः ॥ याभ्याम् । अन्तरिक्षम् । आ-वृतम् । इयम् । च । पृथिवी । मही ॥ ताभ्याम् । इन्द्रमेदि-भ्याम् । अहम् । जितम् । अनु । एमि । सेनया ॥ ४ ॥

भाषार्थ—(अर्बुदिः) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा], (यः) जो (नाम) प्रसिद्ध (देवः) विजयी पुरुष है, (च) और [जो] (ईशानः) ऐश्वर्यवान् (न्यर्बुदिः) न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] है। (याभ्याम्) जिन दोनों से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (आवृतम्) घिरा हुआ है (च) और (इयम्) यह (मही) बड़ी (पृथिवी) पृथिवी [घिरी है]। (ताभ्याम्) उन दोनों (इन्द्रमेदिभ्याम्) जीवों के स्नेहियों के द्वारा (सेनया) [अपनी] सेना से

(सेनाः) (अभिधत्तम्) युवां बध्नीतम् (अर्बुदे) म० १। हे शूर सेनापते त्वम् हे राजागण त्वं च युवाम् ॥

४—(अर्बुदिः) म० १। शूरसेनापती राजा (नाम) प्रसिद्धौ (यः) (देवः) विजिगीषुः (ईशानः) ईशिता (च) (न्यर्बुदिः) नि+अर्ब गतौ हिंसायां च-उदिच्। निरन्तरपुरुषार्थी प्रजागणः (याभ्याम्) अर्बुदिन्यर्बुदि-भ्याम् (अन्तरिक्षम्) (आवृतम्) आच्छादितम् (इयम्) दृश्यमाना (च) (पृथिवी) (मही) महती (ताभ्याम्) (इन्द्रमेदिभ्याम्) ञि मिदा स्नेहने-णिनि ।

(जितम्) जीते हुये [प्रयोजन] को (अहम्) मैं [प्रजागण] (अनु) निरन्तर (एमि) पाऊं ॥ ४ ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजन पृथिवी, आकाश और जल में भी राज्य बढ़ाकर प्रजागण को जीते हुवे देशों में विद्या प्रचार और वाणिज्य आदि से लाभ पहुंचावें ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्नमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥ ५ ॥

उत् । तिष्ठ । त्वम् । देव-जन । अर्बुदे । सेनया । सह ॥
भञ्जन् । अमित्राणाम् । सेनाम् । भोगेभिः । परि । वारय ॥५॥

भाषार्थ—(देवजन) हे विजयी जन ! (अर्बुदे) अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (सेनया सह) [अपनी] सेना के साथ (उत् तिष्ठ) खड़ा हो । (अमित्राणाम्) अमित्रों की (सेनाम्) सेना को (भञ्जन्) पीसता हुआ तू (भोगेभिः) भोग व्यूहों [सांप की कुण्डली के समान सेना की रचनाओं] से (परि वारय) घेर ले ॥ ५ ॥

भावार्थ—सेनापति अपनी सेना को अस्त्र शस्त्रों से सजाकर भोगव्यूह, चक्रव्यूह, दण्डव्यूह, शकटव्यूह, आदि बनाकर शत्रु सेना को चूरचूर करके घेर लेवे ५ ॥

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।
तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥ ६ ॥

जीवानां स्नेहिभ्याम् (अहम्) प्रजागणः (जितम्) जयेन प्राप्तं प्रयोजनम् (अनु) निरन्तरम् (एमि) प्राप्नोमि (सेनया) स्वसेनया ॥

५—(उत्तिष्ठ) उद्गच्छ (त्वम्) (देवजन) हे विजिगीषुजन (अर्बुदे) म० १ । हे शूर सेनापते (सेनया) (सह) (भञ्जन्) आमर्दयन् । चूर्णयन् (अमित्राणाम्) शत्रूणाम् (सेनाम्) (भोगेभिः) भुजो कौटिल्ये—घञ् । भोगैः । सर्पशरीरवत् सेनाव्यूहविशेषैः (परिवारय) सर्वतो वेष्टय ॥

सप्त । जातान् । नि-अर्बुदे । उत्-आराणाम् । सम्-ईक्षयन् ॥
तेभिः । त्वम् । आज्ये । हुते । सर्वैः । उत् । तिष्ठ । सेनया ॥६॥

भाषार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उदाराणाम्) बड़े उपायों में से (सप्त) सात (जातान्) उत्तम [उपायों अर्थात् राज्य के अङ्गों] को (समीक्षयन्) दिखाता हुआ तू (तेभिः सर्वैः) उन सब [शत्रुओं] के साथ [जैसे अग्नि में] (आज्ये हुते) घी चढ़ने पर, (त्वम्) तू (सेनया) [अपनी] सेना सहित (उत् तिष्ठ) खड़ा हो ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि घी डालने से प्रचण्ड होता है वैसे ही शत्रु से भारी युद्ध ठनने पर सब प्रजा गण राज्य के सात अङ्गों को दृढ़ करके टूट पड़ें ॥ ६ ॥

राज्य के सात अङ्ग शब्दकल्पद्रुम में इस प्रकार हैं [स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत् । परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ १ ॥] १- स्वामी अर्थात् राजा, और २-मन्त्री और ३-राजधानी आदि राज्य, ४-गढ़, ५-सुवर्ण आदि कोष, ६-सैन्य दल, और ७-मित्र, परस्पर उपकारी सात अङ्गों वाला यह राज्य कहा जाता है ॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ ७ ॥

प्रति-घ्नाना । अश्रु-मुखी । कृधु-कर्णी । च । क्रोशतु ॥
वि-केशी । पुरुषे । हते । रदिते । अर्बुदे । तव ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(प्रतिघ्नाना) [शिर आदि] धुनती हुयी, (अश्रुमुखी) मुख पर आंसु बहाती हुयी, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली (च) और (विकेशी)

६—(सप्त) सप्तसंख्याकान् स्वाम्यमात्यादीन् राज्योपायान् (जातान्) प्रशस्तान् (न्यर्बुदे) म० ४ । हे निरन्तरपुरुषार्थिन् प्रजागण (उदाराणाम्) म० १ । गम्भीराणामुपायानां मध्ये (समीक्षयन्) ईक्ष दर्शने-णिच्, शतृ । सम्यग् दर्शयन् । प्रकटयन् (तेभिः) तैः शत्रुभिः (त्वम्) (आज्ये) घृते (हुते) अग्नौ प्रक्षिप्ते सति (सर्वैः) समस्तैः (उत्तिष्ठ) (सेनया) ॥

७—(प्रतिघ्नाना) प्रति+हन हिंसागत्योः-शानच् । गमहनजन० । पा० ६ । ४ । ९८ । उपधालोपः । शिरआद्यङ्गं ताडयन्ती (अश्रुमुखी) बाष्पमुखी (कृधु-

केश बिखरे हुये [शत्रु की माता, पत्नी बहिन आदि] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने में, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (क्रोशतु) रोवे ॥ ७ ॥

भावार्थ—शूर सेनापति शत्रुओं को ऐसा मारे कि उनकी स्त्रियां अति व्याकुल होकर विलाप करें ॥ ७ ॥

सं॒कर्ष॑न्ती क॒रूक॑रं॒ मन॑सा पु॒त्रमि॒च्छन्ती॑ ।
पतिं॒ भ्रात॑रमात्स्वान् र॑दि॒ते अ॑र्बु॒दे॒ तव॑ ॥ ८ ॥

स॒म्-कर्ष॑न्ती । क॒रूक॑रम् । मन॑सा । पु॒त्रम् । इ॒च्छन्ती॑ ॥
पति॑म् । भ्रात॑रम् । आत् । स्वान् । र॒दि॒ते । अ॒र्बु॒दे॒ । तव॑ ॥८॥

भाषार्थ—(करूकरम्) कार्य कर्ता (पुत्रम्) पुत्र (पतिम्) पति, (भ्रातरम्) भाई (आत्) और (स्वान्) बन्धुओं को (संकर्षन्ती) समेटती हुई और (मनसा) मन से (इच्छन्ती) चाहती हुई [माता, पत्नी, भगिनी आदि स्त्री] (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति-म० १] (ते) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर, [रोवे-म० ७] ॥ ८ ॥

भावार्थ—शूर सेनापति से शत्रुओं के मारे जाने पर उनकी स्त्रियां अपने घरों के कार्य कर्ताओं के बिना अत्यन्त दुःखी होवें ॥ ८ ॥

अ॒लिक्ल॑वा जाष्कम॒दा गृध्राः॑ श्ये॒नाः प॑त॒त्रिणः॑ । ध्वाङ्क्षाः॑
श॒कुन॑यस्तृप्यन्त्व॒मित्रे॑षु स॒मीक्ष॑यन् र॑दि॒ते अ॑र्बु॒दे॒ तव॑ ॥९॥

कर्णी) कृधु ह्रस्व नाम-निघ० २ । ३ । अल्पश्रोत्रा । पटहध्वन्यादिना हतश्रवणसामर्थ्या (च) (क्रोशतु) क्रुश आह्वाने रोदने च । रोदितु (विकेशी) अ० १ । २८ । ४ । विकीर्णकेशयुक्ता (पुरुषे) स्वबन्धौ (हते) मारिते सति (रदिते) रद विलेखने-भावे क्त । विदारणे सति (अर्बुदे) म० १ । हे शूर सेनापते (तव) ॥

८—(संकर्षन्ती) सम्यग् गृह्णन्ती (करूकरम्) कृषिचमितनि० । उ० १ । ८० । करोतेः—ऊप्रत्ययः स्त्रियाम् । कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । पा० ३ । २ । २० । करोतेष्टः । करू क्रियां करोतीति करूकरस्तं कार्यकर्तारम् (मनसा) हृदयेन (पुत्रम्) सुतम् (इच्छन्ती) कामयमाना (पतिम्) (भ्रातरम्) सहोदरम् (आत्) तथा (स्वान्) ज्ञातीन् । अन्यत् पूर्ववत्-म० ७ ॥

अलिक्लवाः । जाष्कमदाः । गृध्राः । श्येनाः । पतत्रिणः ॥ ध्वाङ्क्षाः । शकुनयः । तृप्यन्तु । अमित्रेषु । सम्-ईक्षयन् । रदिते । अर्बुदे तव ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(अलिक्लवाः) अपने बल से भय देने वाले [चील आदि] (जाष्कमदाः) हिंसा में सुख मनाने वाले [सारस आदि], (गृध्राः) खाऊ [गिद्ध], (श्येनाः) श्येन [बाज], (ध्वाङ्क्षाः) कौवे, (शकुनयः) चीलें, (पतत्रिणः) पक्षीगण (तृप्यन्तु) तृप्त होवें, [जिन पक्षियों को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, तू (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥ ९ ॥

भावार्थ—शूर सेनापति शत्रुओं को युद्ध में मारकर गिरा दे और चील आदि मांस भक्षक पक्षी उनकी लोथों को नोंच नोंच कर खावें ॥ ९ ॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥ १० ॥ (२५)

अथो इति । सर्वम् । श्वापदम् । मक्षिका । तृप्यतु । क्रिमिः ॥ पौरुषेये । अधि । कुणपे । रदिते । अर्बुदे । तव ॥१०॥ (२५)

भाषार्थ—(अथो) और भी (सर्वम्) सब (श्वापदम्) कुत्तेंकेसे

९—(अलिक्लवाः) अ० ११ । २ । २ । अलिना शक्त्या स्वबलेन भयानकाः पक्षिणः (जाष्कमदाः) इण्भीकापा० । उ० ३ ; ४३ । जष हिंसायाम्—कन्, छांदसी वृद्धिः + मदी हर्षे—पचाद्यच् । हिंसने हर्षशीलाः । सारसादयः पक्षिणः (गृध्राः)मांसभक्षकाः खगविशेषाः (श्येनाः) अ० ३ । ३ । ३ । शीघ्रगतयः पक्षिविशेषाः (पतत्त्रिणः) अ० १ । १५ । १ । पक्षिणः (ध्वाङ्क्षाः) ध्वाक्षि घोरशब्दे-अच् । काकाः (शकुनयः) अ० ७ । ६४ । १ । विलपक्षिणः (तृप्यन्तु) हृष्यन्तु (अमित्रेषु) शत्रुषु (समीक्षयन्) म० ६-त्वं सम्यग् दर्शयन् यान् पक्षिणः (रदिते) विदारणे, त्वं वर्त्तस्वेति शेषः (अर्बुदे) म० १ । हे शूर सेनापते राजन् (तव) स्वकीये ॥

१०—(अथो) अपि च (सर्वम्) (श्वापदम्) शुनो दन्तदंष्ट्राकर्णकुन्द-

पैर वाले [सियार आदि हिंसकों का समूह], (मक्षिका) मक्खी और (क्रिमिः) कीड़ा (पौरुषेये) पुरुषों की (कुणपे अधि) लोथों के ऊपर, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (तृप्यतु) तृप्त होवे ॥ १० ॥

भावार्थ--शूर सेनापति के विध्वंस करने पर शत्रुओं की लोथों से हिंसक पशु पक्षी पेट भरें॥ १० ॥

आ गृ॑ह्णीतं॒ सं बृ॑हतं प्राणापा॒नान् न्य॑र्बुदे । नि॒वा॒शा घोषा॒ः सं य॑न्त्व॒मित्रे॑षु स॒मीक्षय॑न् । रदि॒ते अ॑र्बुदे॒ तव॑ ॥ ११ ॥

आ । गृ॒ह्णी॒त॒म् । सम् । बृ॒ह॒त॒म् । प्रा॒ण॒अ॒पा॒नान् । नि॒-अ॒र्बु॒दे॒ ॥ नि॒-वा॒शाः । घोषाः॑ । सम् । य॒न्तु॒ । अ॒मित्रे॑षु । स॒म्-ई॒क्षय॑न् । र॒दि॒ते । अ॒र्बु॒दे॒ । तव॑ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण और शूर सेनापति राजन्] [शत्रुओं को] (आ गृह्णीतम्) तुम दोनों घेर लो, और [उनके] (प्राणापानान्) श्वास प्रश्वासों को (सम् बृहतम्) उखाड़ दो। (निवाशाः) लगातार बोले हुये (घोषाः) घोषणा शब्द (सम् यन्तु) गूंज उठें, [जिन घोषणाओं को] (अमित्रेषु) अमित्रों पर (समीक्षयन्)

वराहपुच्छपदेषु दीर्घो वाच्यः। वा० पा० ६। ३। १३७। दीर्घः। शुन इव पदं यस्य सः श्वापदः, ततः समूहार्थे—अण्। हिंस्रपशूनां शृगालादीनां समूहः (मक्षिका) म० ११। २। २। कीटभेदः (तृप्यतु) (क्रिमिः) (पौरुषेये) अ० ७। १०५। १। पुरुष-ढञ्। पुरुषसम्बन्धिनि (अधि) उपरि (कुणपे) क्वणेः सम्प्रसारणं च। उ० ३। १४३। क्वण शब्दे-कपन्, सम्प्रसारणम्, यद्वा कुण शब्दोपकरणयोः-कपन्। मृतदेहे। शवे। अन्यत् पूर्ववत्-म० ७॥

११—(आ गृह्णीतम्) समन्तात् प्राप्नुतम् (सं बृहतम्) बृहू बृह्रू उद्यमने-लोट्। उत्खिदतं युवाम् (प्राणापानान्) (न्यर्बुदे) म० ४। हे निरन्तरपुरुषार्थिन् प्रजागण त्वं च, हे शूर सेनापते राजन् त्वं च। (निवाशाः) वाशृ शब्दे—घञ्। निरन्तरभाष्यमाणाः (घोषाः) घोषणाशब्दाः (सं यन्तु)

दिखाता हुआ तू (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [वर्तमान हो] ॥ ११ ॥

भावार्थ—प्रजाजन राजगणों के सहायक होकर शत्रुओं को घेर कर व्याकुल कर देवें ॥ ११ ॥

उद् वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥ १२ ॥

उत् । वेपय । सम् । विजन्ताम् । भिया । अमित्रान् । सम् । सृज ॥ उरु-ग्राहैः । बाहु-अङ्कैः । विध्य । अमित्रान् । नि-अर्बुदे १२

भाषार्थ—[उन्हें] (उद् वेपय) कंपा दे, (संविजन्ताम्) वे घबड़ाकर चले जावें, (अमित्रान्) अमित्रों को (भिया) भय के साथ (सं सृज) संयुक्त कर। (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण] (उरुग्राहैः) चौड़ी पकड़ वाले (बाह्वङ्कैः) भुज बन्धनों से (अमित्रान्) अमित्रों को (विध्य) बेध ले ॥ १२ ॥

भावार्थ—युद्ध चतुर प्रजागण शत्रुओं को पकड़ने और मारने में उत्साह करें ॥ १२ ॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥ १३ ॥

मुह्यन्तु । एषाम् । बाहवः चित्त-आकूतम् । च । यत् । हृदि॥

प्रतिध्वनिना संगच्छन्ताम् (अमित्रेषु) (समीरयन्) सम्यग् दर्शयन् , यान् घोषानिति शेषः। अन्यत् पूर्ववत्—म० ६ ॥

१२—(उद्वेपय) टु वेपृ कम्पने। उत्कम्पय (संविजन्ताम्) ओ विजी भयचलनयोः। व्याकुलीभूय चलन्तु (भिया) भयेन (अमित्रान्) शत्रून् (संसृज) संयोजय (उरुग्राहैः) विस्तृतग्रहणयन्त्रयुक्तैः (बाह्वङ्कैः) अङ्क पदे लक्षणे च—घञ्। भुजबन्धनैः (विध्य) ताडय (अमित्रान्) (न्यर्बुदे) ॥

मा । एषाम् । उत् । शेषि । किम् । चन । रदिते । अर्बुदे । तव ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(एषाम्) इन [शत्रुओं] की (बाहवः) भुजायें (मुह्यन्तु) निकम्मी हो जावें, (च) और (यत्) जो कुछ (हृदि) हृदय में (चित्ताकूतम्) विचार और सङ्कल्प हैं, (एषाम्) इनका (किं चन) वह कुछ भी, (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (मा उत् शेषि) न बचा रहे १३ ॥

भावार्थ—युद्ध विशारद सेनापति की वीरता प्रकट होने पर शत्रुदल और उनके विचार और मनोरथ निष्फल पड़ जावें ॥ १३ ॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटूरावाघ्नानाः । अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥ १४ ॥

प्रति-घ्नानाः । सम् । धावन्तु । उरः । पटूरौ । आ-घ्नानाः ॥ अघारिणीः । वि-केश्यः । रुदत्यः । पुरुषे । हते । रदिते । अर्बुदे । तव ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(उरः) छाती और (पटूरौ) दोनों पटूरों [छाती के दोनों ओर के भागों] को (प्रतिघ्नानाः) धुनती हुईं और (आघ्नानाः) पीटती हुईं, (अघारिणीः) बिना तेल लगाये, (विकेश्यः) केश बिखेरे हुये , (रुदत्यः) रोती हुईं [स्त्रियां] (पुरुषे हते) [अपने] पुरुष के मारे जाने में, (अर्बुदे)

१३—(मुह्यन्तु) मूढा निरर्थका भवन्तु (एषाम्) शत्रूणाम् (बाहवः) (चित्ताकूतम्) म० १ । विचाराणां सङ्कल्पानां च समाहारः (च) (यत्) (हृदि) हृदये (एषाम्) (मा उच्छेषि) शिष्लृ विशेषणे-कर्मणि लुङ् । अवशिष्टं मा भूत् (किंचन) तत् किमपि । अन्यद् गतम्—म० ७ ॥

१४—(प्रतिघ्नानाः) म० ७ । ताडयन्त्यः (संधावन्तु) इतस्ततः शीघ्रं गच्छन्तु (उरः) वक्षःस्थलम् (पटूरौ) मीनातेरूरन् । उ० १ । ६७ । पट गतौ दीप्तौ वेष्टने च-ऊरन् । उरः प्रदेशौ । कण्ठाधोभागौ (आघ्नानाः) म० ७ । हन-शानच् । समन्तात् पीडयन्त्यः (अघारिणीः) अ+घृ सेके-घञ्, अघार-इनि,

हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) तेरे (रदिते) तोड़ने फोड़ने पर (सं धावन्तु) दौड़ती फिरें ॥ १४ ॥

भावार्थ—रणक्षेत्र में शत्रुओं के मारे जाने पर उनकी स्त्रियां व्याकुल होकर इधर उधर फिरती फिरें ॥ १४ ॥

इस मन्त्र का मिलान ऊपर मन्त्र ७ से करो ॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तः पात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ॥
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय १५

श्वन्-वतीः । अप्सरसः । रूपकाः । उत । अर्बुदे ॥ अन्तः-पात्रे । रेरिहतीम् । रिशाम् । दुर्निहित-एषिणीम् ॥ सर्वाः । ताः । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु । उत्-आरान् । च । प्र । दर्शय ॥ १५ ॥

भाषार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (श्वन्वतीः) वृद्धि वाली (उत) और (अप्सरसः) प्रजाओं में व्यापने वाली (रूपकाः) सुन्दरतायें जताने वाली क्रियाओं को [मित्रों के लिये], (अन्तःपात्रे) भीतरले पात्र [अन्तःकरण] में (रेरिहतीम्) अत्यन्त युद्ध करने वाली (दुर्णिहितैषिणीम्) दुष्ट प्रयोजन को खोजने वाली (रिशाम्) पीड़ा को, (ताः सर्वाः) उन सब [पीड़ाओं] को, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू

ङीप् । अघारिण्यः । घारेण सेचनद्रव्येण तैलादिना रहिताः (विकेश्यः) अ० १ । २८ । ४ । विकीर्णकेशाः (रुदत्यः) अश्रून् विमोचयन्त्यः । अन्यद् गतम् म० ७ ॥

१५—(श्वन्वतीः) श्वन्नुक्षन्पूषन्० । उ० १ । १५९ । टु ओ श्वि गतिवृद्ध्योः-कनिन्, मतुप् । अनोनुट् । पा० ८ । २ । १६ । अन्नन्ताद् मतोर्नुट् । वृद्धिमतीः (अप्सरसः) अ० ४ । ३७ । २ । अप्+सृ गतौ—असि । अप्सु प्रजासु व्यापन-शीलाः (रूपकाः) आतोऽनुपसर्गे कः । पा० ३ । २ । ३ । रूप+कै शब्दे-कः । उप-पदमतिङ् । पा० २ । २ । १९ । इति समासः । रूपाणि सौन्दर्याणि काययन्ति शब्द-यन्ति ज्ञापयन्ति यास्ताः क्रियाः (उत) अपि च (अर्बुदे) म० १ । हे शूर सेना-पते राजन् (अन्तःपात्रे) मध्यवर्तिनि पात्रे । अन्तः करणे (रेरिहतीम्) रिह

(अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर, (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥ १५ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि शिष्टों के साथ उनके श्रेष्ठ व्यवहारों के अनुसार श्रेष्ठ व्यवहार करे और दुष्टों को खोजकर उनकी दुष्टता के अनुसार दण्ड देवे, जिससे राजाकी उत्तम नीति का प्रभाव सबको विदित होजावे ॥१५॥ मन्त्र के अन्तिम भाग के लिये मन्त्र १ तथा २२ और २४ देखो ॥

खड़ूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥ १६ ॥

खड़ूरे । अधि-चङ्क्रमाम् । खर्विकाम् । खर्व-वासिनीम् ॥ ये । उत्-आराः । अन्तः-हिताः । गन्धर्व-अप्सरसः । च । ये ॥ सर्पाः । इतर-जनाः । रक्षांसि ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(खड़ूरे) खड्ग [तरवार] पर (अधिचङ्क्रमाम्) निधड़क चढ़ जाने वाली, (खर्विकाम्) अभिमानिनी, (खर्ववासिनीम्) खर्वों [बहुत गिनती मनुष्यों] में रहने वाली [सेना] को और (ये) जो (उदाराः) उदार [दानशील] (च) और (ये) जो (अन्तर्हिताः) अन्तःकरण से हितकारी (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्व [पृथिवी के धारण करने वाले] और अप्सर

कत्थन युद्धनिन्दाहिंसादानेषु–यङ्लुकि शतृ, ङीप् । भृशं युध्यमानाम् (रिशाम्) रिश हिंसायाम्- क, टाप् । पीडाम् (दुर्णिहितैषिणीम्) दुर् + नि + धा—क्त + इष इच्छायाम्—णिनि । दुष्टं स्थापितं प्रयोजनमन्विच्छन्तीम् (सर्वाः) (ताः) पीडाः । अन्यद् गतम्—म० १ ॥

१६—(खड़ूरे) मीनातेरूरन् उ० १ । ६७ । खड भेदने-ऊरन् । खड्गे । तरवारौ (अधिचङ्क्रमाम्) क्रमु पादविक्षेपे, यङ् लुकि नुक्-पचाद्यच् । यङोऽचि च । पा० २ । ४ । ७२ । यङो लुक् । भृशमधिक्रमणशीलाम् (खर्विकाम्) खर्व दर्पे–ण्वुल् । अभिमानिनीम् (खर्ववासिनीम्) खर्वेषु संख्याविशेषेषु निवसन्तीं सेनाम् (ये) (उदाराः) दानशीलाः (अन्तर्हिताः) अन्तः करणेन हितकारिणः (गन्धर्वाप्सरसः) अ०११ । ६ । ४ । गां पृथिवीं धरन्ति ये ते

[प्रजाओं वा आकाश में चलने वाले विवेकी लोग हैं, उनको, दिखा—म० १५] और [जो] (सर्पाः) सर्प [के समान हिंसक], (इतरजनाः) पामरजन (रक्षांसि) राक्षस हैं [उनको, कंपा दे–म० १८] ॥ १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (दर्शय) [दिखा] मन्त्र १५ से और (उत्-वेपय) (कंपा दे) क्रिया पद–मन्त्र १८ से लाया गया है। राजा अपनी सुनीति से सुशिक्षित वीर सेना और हितैषी, भूमिविद्या और आकाशविद्या जानने वाले विज्ञानियों द्वारा दुष्टों को दण्ड देवे, जिससे शत्रु लोग पृथिवी वा आकाश मार्ग से कष्ट न दे सकें॥१६॥

चतुर्दंष्ट्रांछ्यावदतः कुम्भ-मुष्काँ असृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥ १७ ॥

चतुः-दंष्ट्रान् । श्याव-दतः । कुम्भ-मुष्कान् । असृक्-मुखान् ॥ स्व-भ्यसाः । ये । च । उत्-भ्यसाः ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(चतुर्दंष्ट्रान्) चार डाढ़ें वालों [बड़े हाथियों] और (श्यावदतः) काले दांतों वाले, (कुम्भमुष्कान्) कुम्भसमान [घड़ा समान बड़े] अंडकोश वाले (असृङ्मुखान्) रुधिर मुखों [सिंह आदि जीवों] को (च) और (ये) जो (स्वभ्यसाः) स्वभाव से भयानक [और जो] (उत्भ्यसाः) ऊपरी [आकार से] भयानक हैं [उनको, कंपा दे म० १८]॥ १७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में (उत् वेपय) [कंपा दे] क्रिया पद–मन्त्र १८ से आता है। राजा भयानक हिंसक जीवों और उनके समान दुष्ट मनुष्यों को राज्य से हटाकर प्रजापालन करें॥ १७ ॥

गन्धर्वाः। अप्सु प्रजासु आकाशे वा सरन्ति ये ते अप्सरसः। ते सर्वे विवेकिनः (च) (ये) (सर्पाः) सर्पवत् क्रूराः (इतरजनाः) पामरलोकाः (रक्षांसि) राक्षसाः ॥

१७—(चतुर्दंष्ट्रान्) चतुर्दन्तान् महागजान् (श्यावदतः) श्यामवर्णदन्त-युक्तान् (कुम्भमुष्कान्) कुम्भाकृतिमुष्कयुक्तान् (असृङ्मुखान्) रुधिरमुखान् सिंहादीन् (स्वभ्यसाः) भ्यस भये-घञर्थे कप्रत्ययः। स्वेन आत्मना स्वभावेन भयानकाः (ये) (च) (उद्भ्यसाः) ऊर्ध्वप्रकारेण भयानकाः ॥

उद् वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयंश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

उत् । वेपय । त्वम् । अर्बुदे । अमित्राणाम् । अमूः । सिचः ॥ जयन् । च । जिष्णुः । च । अमित्रान् । जयताम् । इन्द्रमेदिनौ ॥ १८ ॥

भाषार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (अमूः) उन (सिचः) सेचनशील [उमड़ती हुई सेनाओं] को (उत् वेपय) कंपा दे । (जयन्) जीतता हुआ [प्रजागण] (च च) और (जिष्णुः) विजयी [राजा], (इन्द्रमेदिनौ) जीवों के स्नेही आप दोनों (अमित्रान्) वैरियों को (जयताम्) जीतें ॥ १८ ॥

भावार्थ—परस्पर प्रसन्न चित्त प्रजागण और राजगण शत्रुओं की सहायक सेनाओं को तुरन्त जीत लेवें ॥ १८ ॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥ १९ ॥

प्र-ब्लीनः । मृदितः । शयाम् । हतः । अमित्रः । नि-अर्बुदे ॥ अग्नि-जिह्वाः । धूम-शिखाः । जयन्तीः । यन्तु । सेनया ॥ १९ ॥

भाषार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [निरन्तर पुरुषार्थी प्रजागण (प्रब्लीनः) घिरा हुआ, (मृदितः) कुचला हुआ (हतः) मारा गया (अमित्रः) वैरी

१८—(उत्) उत्कर्षेण (वेपय) म० १२ । कम्पय (त्वम्) (अर्बुदे) म० १ । शूर सेनापते राजन् (अमित्राणाम्) शत्रूणाम् (अमूः) दृश्यमानाः (सिचः) षिच आर्द्रीकरणे-क्विप् । सेचनशीलाः सहायिकाः सेनाः (जयन्) सांहितिको दीर्घः । पराभावयन् प्रजागणः (जिष्णुः) जयशीलः सेनापतिः (च) (अमित्रान्) शत्रून् (जयताम्) पराभावयताम् (इन्द्रमेदिनौ) म० ४ । जीवानां स्नेहिनौ राजप्रजागणौ ॥

१९—(प्रब्लीनः) ब्ली स्वीकरणे वेष्टने गतौ च-क्त, वस्य बः । वेष्टितः । आच्छादितः (मृदितः) संपिष्टगात्रः (शयाम्) लोपस्त आत्मनेपदेषु । पा० ७ ।

(शयाम्) सोजावे। (अग्निजिह्वाः) अग्नि की जीभें [लपटें] और (धूमशिखाः) धुयें की चोटियां [आग्नेय शस्त्रों से] (सेनया) सेना द्वारा (जयन्तीः) जीतती हुईं (यन्तु) चलें ॥ १९ ॥

भावार्थ—धर्मात्माओं के सेना दल आग्नेय आदि शस्त्रों को जल, थल और आकाश से इस प्रकार छोड़ें कि शत्रु लोग रुन्ध खुंद कर मर जावें ॥ १९ ॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।

अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥ २० ॥ (२६)

तया । अर्बुदे । प्र-नुत्तानाम् । इन्द्रः । हन्तु । वरम्-वरम् ॥ अमित्राणाम् । शची-पतिः । मा । अमीषाम् । मोचि । कः । चन ॥ २० ॥ (२६)

भाषार्थ—(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालने वाले, (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले आप] (तया) उस [सेना के द्वारा] (प्रणुत्तानाम्) बाहिर हटाये गये (अमित्राणाम्) बैरियों में से (वरंवरम्) अच्छे अच्छे को (हन्तु) मारे। (अमीषाम्) इनमें से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥ २० ॥

---

१ । ४१ । तलोपः । शेताम् (हतः) नाशितः (अमित्रः) पीडकः शत्रुः (न्यर्बुदे) म० ४ । हे निरन्तरपुरुषार्थिन् प्रजागण (अग्निजिह्वाः) आग्नेयशस्त्राणामग्नेर्ज्वालाः (धूमशिखाः) धूमस्य शिखररूपाः समुच्चयाः (जयन्तीः) शत्रुबलं जयन्त्यः (यन्तु) गच्छन्तु (सेनया) ॥

२०—(तया) सेनया (अर्बुदे) म० १ । हे शूरसेनापते राजन् (प्रणुत्तानम्) बहिष्प्रेरितनाम् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनापतिः (हन्तु) मारयतु (वरंवरम्) अ० ६ । ६७ । २ । श्रेष्ठं श्रेष्ठं नायकम् (अमित्राणाम्) शचीपतिः) अ० ३ । १० । १२ । शची=वाक्-निघ० १ । ११ । कर्म २ । १ । प्रज्ञा - ३ । ९ । शचीनां वाचां कर्मणां प्रज्ञानां च पालकः । यथार्थवक्ता यथार्थकर्मा यथार्थप्रज्ञश्च (अमीषाम्) शत्रूणाम् (मा मोचि) अ० ३ । १९ । ८ । मा मुच्यताम् (कश्चन) को ऽपि ॥

भावार्थ—युद्ध कुशल (शचीपति) यथार्थ बोलने वाला, यथार्थ कर्म वाला और यथार्थ बुद्धि वाला सेनापति शत्रुओं के सब नायकों को मार कर परास्त कर देवे ॥ २० ॥

देखो—अथर्व० ६ । ६७ । २ । और-अथर्व० ३ । १९ । ८॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामुमित्रान् मोत मित्रिणः ॥ २१ ॥

उत् । कसन्तु । हृदयानि । ऊर्ध्वः । प्राणः । उत् । ईषतु ॥ शौष्क-आस्यम् । अनु । वर्तताम् । अमित्रान् । मा । उत । मित्रिणः ॥ २१ ॥

भाषार्थ—[शत्रुओं के] (हृदयानि) हृदय (उत् कसन्तु) उकस जावें [हिलजावें], (प्राणः) प्राण [श्वास प्रश्वास] (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (उत् ईषतु) चढ़ जावे । (शौष्कास्यम्) मुखकी सुखाई (अमित्रान् अनु) शत्रुओं को (वर्तताम्) व्यापे, (उत) और (मित्रिणः) [हमारे लिये] मित्र रखने वाले जनों को (मा) न [व्यापे] ॥ २१ ॥

भावार्थ—जो लोग अपने मित्रों सहित हमारे सहायक होते हैं, उन वीरों के भय से शत्रुदल व्याकुल होकर कष्ट पावें और धर्मात्मा लोग सुख पावें ॥ २१ ॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वास्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय २२

२१—(उत् कसन्तु) कस गतौ । उद्गच्छन्तु (हृदयानि) अन्तः करणानि (ऊर्ध्वः) उच्चगतिः सन् (प्राणः) श्वासप्रश्वासव्यापारः (उदीषतु) ईष गतौ । निर्गच्छतु (शौष्कास्यम्) शुष्कास्यता । मुखस्य निर्द्रवत्वम् (अनु) प्रति (वर्तताम्) व्याप्यताम् (अमित्रान्) पीडकान् (मा) निषेधे (उत) अपि च (मित्रिणः) मित्र-इनि । अस्मभ्यं मित्राणि सन्ति येषां तान् जनान्-अनुवर्ततामिति शेषः ॥

ये । च । धीराः । ये । च । अधीराः । पराञ्चः । बधिराः । च । ये ॥ तमसाः । ये । च । तूपराः । अथो इति । बस्त-अभिवासिनः ॥ सर्वान् । तान् । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु । उत्-आरान् । च । प्र । दर्शय ॥ २२ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (धीराः) धीर [धैर्यवान्] (च च) और (ये) जो (अधीराः) अधीर [चंचल], (पराञ्चः) हट जाने वाले (च) और (ये) जो (बधिराः) बहिरे [शिक्षा न सुनने वाले] हैं। (च) और (ये) जो (तमसाः) अन्धकार युक्त, (तूपराः) हिंसक (अथो) और (बस्ताभिवासिनः) उद्योगों में रहने वाले हैं। (तान् सर्वान्) इन सब [लोगों] को, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने केलिये (कुरु) कर (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥ २२ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि वह धीर-अधीर, शूर-कातर, उद्योगी-अनुद्योगी आदि पुरुषों की विवेचना करके शत्रुओं को अपनी सुनीति का निश्चय करादे ॥ २२ ॥

मन्त्र के अन्तिम भाग के लिये मन्त्र १ । १५ तथा २४ देखो ॥

अर्बुदिश्च त्रिषंधिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपते ऽमित्राणां सहस्रशः ॥२३॥

अर्बुदिः । च । त्रि-संधिः । च । अमित्रान् । नः । वि ।

२२—(ये) मनुष्याः (च) (धीराः) धैर्यवन्तः । प्रज्ञानवन्तो ध्यानवन्तः निरु० ४ । १० (ये) (च) (अधीराः) चञ्चलाः (पराञ्चः) पराङ्मुखाः । पलायमानाः (बधिराः) शिक्षायां हतश्रवणसामर्थ्याः (च) (ये) (तमसाः) तमस्-अर्शआद्यच् । अन्धकारेण युक्ताः शठाः (ये) (च) (तूपराः) ऋच्छेररः । उ० ३ । १३१ । तुप हिंसायाम्-अर प्रत्ययः, गुणाभावे दीर्घः । हिंसकाः (अथो) अपि च (बस्ताभिवासिनः) वस्त गतिहिंसायाचनेषु-घञ्, वस्य बः + वस निवासे-णिनि । गतिषु उद्योगेषु निवासशीलाः (सर्वान्) (तान्) अन्यद् गतम्-म० १ ॥

विध्यताम् ॥ यथा । एषाम् । इन्द्र । वृत्र-हन् । हनाम । शची-पते । अमित्राणाम् । सहस्र-शः ॥ २३ ॥

भाषार्थ—(अर्बुदिः) अर्बुदि [शूर सेनापति राजा] (च च) और (त्रिषन्धिः) त्रिसन्धि [तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान में मेल अर्थात् प्रीति रखने वाला विद्वान् पुरुष, आप दोनों] (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (वि विध्यताम्) छेद डालें । (यथा) जिससे (वृत्रहन्) हे अन्धकार नाशक ! (शचीपते) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों के पालने वाले (इन्द्र) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाले राजन्] (एषाम्) इन (अमित्राणाम्) शत्रुओं को (सहस्रशः) सहस्र सहस्र करके (हनाम) हम मारें ॥ २३ ॥

भावार्थ—बलवान् राजगण और त्रयी विद्या में कुशल, अर्थात् कर्म अपने कर्तव्य, उपासना ईश्वर भक्ति और ज्ञान सूक्ष्मदर्शिता वाले विद्वान् जन परस्पर मिलकर शत्रुओं को हराकर प्रजापालन करें ॥ २३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय २४

वनस्पतीन् । वानस्पत्यान् । ओषधीः । उत । वीरुधः ॥ गन्धर्व-अप्सरसः । सर्पान् । देवान् । पुण्य-जनान् । पितॄन् ॥ सर्वान् । तान् । अर्बुदे । त्वम् । अमित्रेभ्यः । दृशे । कुरु । उत्-आरान् । च । प्र । दर्शय ॥ २४ ॥

२३—(अर्बुदिः) म० १ । शूरः सेनापती राजा (च) (त्रिषन्धिः) त्रिषु कर्मोपासनाज्ञानेषु सन्धिः संयोगः प्रीतिर्यस्य स त्रयीकुशलो विद्वान् पुरुषः (च) (अमित्रान्) (शत्रून्) (नः) अस्माकम् (वि) विविधम् (विध्यताम्) बहु ताडयताम् (यथा) येन प्रकारेण (एषाम्) कर्मणि षष्ठी । इमान् (इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् राजन् (वृत्रहन्) अन्धकारनाशक (हनाम) मारयाम (शचीपते) म० २० । शचीनां वाचां कर्मणां प्रज्ञानां च पालक (अमित्राणाम्) शत्रूणाम् (सहस्रशः) अ० ८ । ८ । १ । सहस्रं सहस्रम् ॥

भाषार्थ—(वनस्पतीन्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वाले पुरुषों (वानस्पत्यान्) सेवनीय शास्त्रों के पालन करने वालों के सम्बन्धी पदार्थों (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों, (उत) और (वीरुधः) जड़ी बूटियों को, (गन्धर्वाप्सरसः) गन्धर्वों [पृथिवी के धारण करने वालों] और अप्सरों [आकाश में चलने वालों] (सर्पान्) सर्पों [सर्पों के समान तीव्र दृष्टि वालों (देवान्) विजय चाहने वालों, (पुण्यजनान्) पुण्यात्मा (पितॄन्) पितरों [महाविद्वानों] (तान् सर्वान्) इन सब लोगों को (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूरसेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्रेभ्यः दृशे) अमित्रों के लिये देखने को (कुरु) कर (च) और [हमें अपने] (उदारान्) बड़े उपायों को (प्र दर्शय) दिखादे ॥ २४ ॥

भावार्थ—राजा वेद वेत्ताओं, उत्तम अन्न आदि पदार्थों, विश्वकर्मा शिल्पियों और वैज्ञानिक आदि लोगों का संग्रह करके शत्रुओं को अपना वैभव दिखावे ॥ २४ ॥

इस मन्त्र का पहिला और दूसरा भाग अ० ८। ८। १४। तथा १५ में और तीसरा भाग इस सूक्त के मन्त्र २२ में आया है ॥

ई॒शां वो॑ म॒रुतो॑ दे॒व आ॑दि॒त्यो ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ।
ई॒शां व॒ इन्द्र॑श्चा॒ग्निश्च॑ धा॒ता मि॒त्रः प्र॒जाप॑तिः ।
ई॒शां व॒ ऋष॑यश्चक्रुर॒मित्रे॑षु स॒मीक्षय॑न् रुदि॒ते अ॑र्बुदे॒ तव॑ ॥२५॥

ई॒शाम् । वः॒ । म॒रुतः॑ । दे॒वः । आ॒दि॒त्यः । ब्रह्म॑णः । पतिः॑ ॥ ई॒शाम् । वः॒ । इन्द्रः॑ । च॒ । अ॒ग्निः । च॒ । धा॒ता । मि॒त्रः । प्र॒जा-प॑तिः ॥ ई॒शाम् । वः॒ । ऋष॑यः । च॒क्रुः॒ । अ॒मित्रे॑षु । स॒म्-ई॒क्षय॑न् । रु॒दि॒ते । अ॒र्बु॒दे॒ । तव॑ ॥ २५ ॥

भाषार्थ—[हे मनुष्यो !] (मरुतः) शूर लोग, (देवः) विजयी,

२४—प्रथमद्वितीयभागौ व्याख्यातौ-अ० ८। ८। १४, १५ तथा तृतीयो-व्याख्यातोऽस्मिन् सूक्ते-म० २२ ॥

२५-(ईशाम्) प्रत्ययश्रवणसामर्थ्यात्, चक्रुरिति अन्ते श्रूयमाणं सर्वत्र संब-

(आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] और (ब्रह्मणः प्रतिः) वेद का रक्षक पुरुष (वः) तुम्हारे (ईशाम्-) शासक [हुये हैं । (इन्द्रः) बड़ा ऐश्वर्यवान्, (अग्निः) तेजस्वी, (धाता) धारणकर्ता (च) और (मित्रः) प्रेरक (च) और (प्रजापतिः) प्रजापालक मनुष्य (वः) तुम्हारे (ईशाम्-) शासक [हुये हैं] । (ऋषयः) ऋषि लोग [महाज्ञानी पुरुष] (वः) तुम्हारे (ईशांचक्रुः) शासक हुये हैं, [जिन विद्वानों को] (अमित्रेषु) बैरियों पर (समीक्षयन्) दिखाता हुआ, (अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (तव) अपने (रदिते) तोड़ फोड़ कर्म में [तू वर्तमान हुआ है] ॥ २५ ॥

भावार्थ—जैसे पूर्वकाल में शूर वीर और महर्षियों के सत्संग से राजा लोग शासन विद्या में चतुर हुये हैं, वैसे ही सब मनुष्य पूर्वजों के अनुकरण से कार्य सिद्धि करें ॥ २५ ॥

अन्तिम भाग का मिलान मन्त्र ६ के अन्तिम भाग से करो ॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् । इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥२६॥ (२७)

तेषाम् । सर्वेषाम् । ईशानाः । उत् । तिष्ठत । सम् । नह्यध्वम् । मित्राः । देव-जनाः । यूयम् ॥ इमम् । सम्-ग्रामम् । सम्-जित्य । यथा-लोकम् । वि । तिष्ठध्वम् ॥ २६ ॥ (२७)

ध्यते । ईशांचक्रुः (वः) अधीगर्थदयेशां कर्मणि । पा० २ । ३ । ५२ । इति षष्ठी । युष्माकम् (मरुतः) अ० १ । २० । १ । शूरवीराः पुरुषाः (देवः) विजिगीषुः (आदित्यः) अ० १ । ६ । १ । अ+दो अवखण्डने-क्तिन्, अदिति-ण्य । अदितिर्व्रतखण्डराहित्यं यस्य सः । अखण्डव्रती (ब्रह्मणः) वेदस्य (पतिः) पालकः (ईशाम्) (वः) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (च) (अग्निः) तेजस्वी (च) (धाता) धाता (मित्रः) प्रेरकः (प्रजापतिः) प्रजापालकः (ईशांचक्रुः) ईश ऐश्वर्ये-लिट् । ईजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः । पा० ३ । १ । ३६ । आम् प्रत्ययः । आम् प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य । पा० १ । ३ । ६३ । अनुप्रयुज्यमानस्य करोतेरात्मेनपदाभावश्छान्दसः । ईशांचक्रिरे । ईश्वरा नियन्तारो बभूवुः (वः) (ऋषयः) अ० २ । ६ । १ । साक्षात्कृतधर्माणः । अन्यद् गतम् म० ६ ॥

भाषार्थ—(तेषां सर्वेषाम्) उन सबों के (ईशानाः) शासक होकर, (मित्राः) हे प्रेरक (देवजनाः) विजयी जनो ! (यूयम्) तुम (उत् तिष्ठत) उठो और (संनह्यध्वम्) कवचों को पहिनो। (इमं सङ्ग्रामम्) इस संग्राम को (संजित्य) जीतकर (यथालोकम्) अपने अपने लोकों [स्थानों] को (वि तिष्ठध्वम्) फैलकर ठहरो ॥ २६ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य कर्म कुशल और पुरुषार्थी होकर अपने अपने कर्तव्य करके अपने अपने पद पर आनन्दित होवें ॥ २६ ॥

सूक्तम् १० ॥

१—२७ ॥ त्रिषन्ध्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः ॥ १, २२ स्वराडनुष्टुप्; २ त्र्यवसाना विराडतिजगती; ३ विराडास्तारपङ्क्तिः; ४, १६, २७ निचृदनुष्टुप्; ५-७, १०, ११, १४, १५, १८, २०, २३, २४ अनुष्टुप्; ८ विराट् त्रिष्टुप्; ९ स्वराट् पथ्या पङ्क्तिः; १२, १७ पथ्या पङ्क्तिः; १३ षट्पदा जगती; १६ त्र्यवसाना शक्वरी; २१ गायत्री; २५ ककुबुष्णिक्; २६ प्रस्तारपङ्क्तिः ॥

राजप्रजयोः कर्तव्योपदेशः—राजा और प्रजा के कर्तव्य का उपदेश ॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ १ ॥

उत् । तिष्ठत । सम् । नह्यध्वम् । उत्-आराः । केतु-भिः । सह ॥ सर्पाः । इतर-जनाः । रक्षांसि । अमित्रान् । अनु । धावत १

भाषार्थ—(उदाराः) हे उदार पुरुषो ! [बड़े अनुभवी लोगो] (उत् तिष्ठत) उठो और (केतुभिः सह) झंडों के साथ (संनह्यध्वम्) कवचों को पहिनो [जो] (सर्पाः) सर्प [सर्पों के समान] हिंसक (इतरजनाः)

२६—(तेषाम्) (सर्वेषाम्) शत्रूणाम् (ईशानाः) ईश्वराः । नियामकाः सन्तः (उत्ति ष्ठित) इत्यादयो व्याख्याताः-म० २ (इमम्) प्रस्तुतम् (सङ्ग्रामम्) युद्धम् (संजित्य) सम्यग् जित्वा (यथालोकम्) स्वस्वस्थानम् (वि तिष्ठध्वम्) समवप्रविभ्यः स्थः । पा० १ । ३ । २२ । इत्यात्मनेपदम् । विस्तारेण तिष्ठत ॥

१—(उत् तिष्ठत) उद्गच्छत (संनह्यध्वम्) सन्नाहान् धरत (उदाराः) महान्तः । महानुभविनः (केतुभिः) ध्वजैः (सह) (सर्पाः) सर्पतुल्यहिं-

पामर जन (रक्षांसि) राक्षस हैं, (अमित्रान् अनु) [उन] शत्रुओं पर (धावत) धावा करो ॥ १ ॥

भावार्थ—महानुभवी शूर वीर पुरुष कवच आदि पहिन कर और ध्वजा पताका अस्त्र शस्त्र लेकर शत्रुओं पर चढ़ें ॥ १ ॥

इस मन्त्र का मिलान-अथर्व० ११ । ६ । २ तथा १६ से करो ॥

ई॒शां वो॑ वेद॒ राज्यं॒ त्रिष॑न्धे अरु॒णैः के॒तुभिः॑ स॒ह ।
ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि पृ॑थि॒व्यां ये च॑ मान॒वाः ।
त्रिष॑न्धे॒स्ते चेत॑सि दु॒र्णामा॑न॒ उपा॑सताम् ॥ २ ॥

ई॒शाम् । वः॒ । वे॒द॒ । राज्य॑म् । त्रि-स॑न्धे । अ॒रु॒णैः । के॒तु॒-भिः॒ । स॒ह ॥ ये । अ॒न्तरि॑क्षे । ये । दि॒वि । पृ॒थि॒व्याम् । ये । च॒ । मा॒न॒वाः ॥ त्रि-स॑न्धेः । ते । चेत॑सि । दुः॒-नामा॑नः । उप॑ । आ॒स॒ता॒म् ॥ २ ॥

भाषार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [तीनों कर्म, उपासना और ज्ञान में मेल रखने वाले, सेनापति] (वः) तुम्हारी (ईशाम्) शासन शक्ति और (राज्यम्) राज्य [राज्य के विस्तार] को [तुम्हारे] (अरुणैः) रक्त वर्ण [डरावने रूप] वाले (केतुभिः सह) झंडों के साथ (वेद) मैं [प्रजाजन] जानता हूं । (ये) जो (मानवाः) ज्ञानियों के बताये हुये (दुर्णामानः) दुर्नामा [दुष्ट नाम वाले दोष] (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (ये) जो (दिवि) सूर्य में (च)

सकाः (इतरजनाः) पामरपुरुषाः (रक्षांसि) राक्षसाः (अमित्रान्) शत्रून् (अनु) प्रति (धावत) शीघ्रं गच्छत ॥

२—(ईशाम्) ईश ऐश्वर्ये-क, टाप् । शासनशक्तिम् (वः) आदरार्थं बहुवचनम् । युष्माकम् (वेद) अहं प्रजाजनो जानामि (राज्यम्) राज्यविस्तारम् (त्रिषन्धे) अ० ११ । ६ । २३ । त्रिषु कर्मोपासनाज्ञानेषु प्रीतिर्यस्य स त्रिषन्धिः हे त्रयीकुशल सेनापते (अरुणैः) रक्तवर्णैः । भयावहैरित्यर्थः (केतुभिः) ध्वजैः (सह) (ये) (अन्तरिक्षे) मध्यलोके (ये) दिवि) सूर्ये (ये) (च) (मानवाः) तेन प्रोक्तम् । पा० ४ । ३ । १०१ । मनु-अण् ।

और (ये) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर हैं, (ते) वे [सब दोष] (त्रिषन्धेः) [त्रिसन्धि] [त्रयीकुशल विद्वान्] के (चेतसि) चित्त में (उप) हीन होकर (आसताम्) रहें ॥ २ ॥

भावार्थ—(वः) तुह्मारी-आदरार्थ बहुवचन है। प्रजागण त्रिसन्धि अर्थात् अपने कर्तव्य, ईश्वर भक्ति और यथार्थ ज्ञान में प्रीति वाले राजा का आदर सत्कार करें। वह दूरदर्शी पुरुष आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विपत्तियों से आप बचे और सब को बचावे ॥ २ ॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः । क्रव्यादो वातरंहस आ संजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषंधिना ॥ ३ ॥

अयः-मुखाः । सूची-मुखाः । अथो इति । विकङ्कती-मुखाः ॥ क्रव्य-अदः । वात-रंहसः । आ । सजन्तु । अमित्रान् । वज्रेण । त्रि-संधिना ॥ ३ ॥

भावार्थ—(अयोमुखाः) लोहे समान [कठोर] मुख वाले, (सूचीमुखाः) सूई के तुल्य [पैने] मुख वाले, (विकङ्कतीमुखाः) शमी वृक्षों के से [कंटीले] मुख वाले, (क्रव्यादः) मांस खाने वाले (अथो) और (वातरंहसः) पवन के से वेग वाले [पशु पक्षी] (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [म० २। विद्वान्]करके (वज्रेण) वज्र से [मारे गये] (अमित्रान्) वैरियों को (आ सजन्तु) चिपट जावें ॥ ३ ॥

मनुभिर्ज्ञानिभिः प्रोक्ताः (त्रिषन्धेः) विदुषः पुरुषस्य (ते) पूर्वोक्ताः (चेतसि) अन्तःकरणे। ज्ञाने (दुर्णामानः) अ० ८। ६। १। अतिक्रूरदोषाः (उप) उपोऽधिके च। पा० १। ४। ८७। इति हीनार्थे (आसताम्) तिष्ठन्तु ॥

३—(अयोमुखाः) लोहसदृशकठोरमुखाः (सूचीमुखाः) सूचीतुल्यतीक्ष्णमुखाः (अथो) अपि च (विकङ्कतीमुखाः) भृमृदृशि०। उ० ३। ११०। वि+ककि गतौ–अतच्। विकङ्कत एव विकङ्कती शमीवृक्षः। तत्तुल्यबहुकण्टकयुक्तमुखाः (क्रव्यादः) अ० २। २५। ५। मांसभक्षकाः (वातरंहसः) वायुतुल्यवेगयुक्ताः पशुपक्षिणः (आ) समन्तात् (सजन्तु) षञ्ज सङ्गे। श्लिष्यन्तु (अमित्रान्) शत्रून् (वज्रेण) वज्रायुधेन, हतान् इति शेषः (त्रिषन्धिना) म० २। सेनापतिना ॥

भावार्थ—वीर सेनापति सब शत्रुओं को मार कर गिरा देवे कि उनकी लोथों को गीदड़ गिद्ध आदि चोंथ चोंथ कर खा जावें ॥ ३ ॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषंधेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥ ४ ॥

अन्तः । धेहि । जात-वेदः । आदित्य । कुणपम् । बहु ॥
त्रि-संधेः । इयम् । सेना । सु-हिता । अस्तु । मे । वशे ॥४॥

भाषार्थ—(जातवेदः) हे उत्तम ज्ञान वाले ! (आदित्य) हे आदित्य ! [अखण्ड ब्रह्मचारी] (बहु) बहुत (कुणपम्) लोथों को (अन्तः) [रणक्षेत्र के] बीच में (धेहि) रख । (मेरी) (इयम्) यह (सुहिता) अच्छे ढङ्ग से स्थापित (सेना) सेना (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २ । विद्वान् सेनापति] के (वशे) वश में (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस समय प्रधान सेनापति रण भूमि में शत्रुदलन करे, अन्य वीर सैन्य पुरुष अपनी सुव्यूढ सेना से उसका सहाय करें ॥ ४ ॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषंधेराहुतिः प्रिया ॥ ५ ॥

उत् । तिष्ठ । त्वम् । देव-जन । अर्बुदे । सेनया । सह ॥ अयम् । बलिः । वः । आ-हुतः त्रि-संधेः । आहुतिः । प्रिया ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(देवजन) हे विजयी जन ! (अर्बुदे) अर्बुदि [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (सेनया सह) [अपनी] सेना के साथ (उत् तिष्ठ)

४—(अन्तर्) रणक्षेत्रमध्ये (धेहि) धर (जातवेदः) जातानि प्रशस्तानि वेदांसि ज्ञानानि यस्य तत्संबुद्धौ (आदित्य) अ० ११ । ६ । २५ । अखंडब्रह्मचारिन् (कुणपम्) अ० ११ । ६ । १० शवशरीरजातम् (बहु) बहुलम् (त्रिषन्धेः) म० २ सेनापतेः (इयम्) दृश्यमाना (सेना) (सुहिता) सुष्ठु धृता । सुव्यूढा (अस्तु) (मे) मम (वशे) प्रभुत्वे ॥

५—(उत्तिष्ठ) उद्गच्छ (त्वम्) (देवजन) हे विजयिजन (अर्बुदे) अ० ११ । ६ । १ । हे पुरुषार्थिन् सेनापते (सेनया) (सह) (अयम्) (बलिः)

खड़ा हो। (अयम्) यह (बलिः) बलि [धर्म युद्ध की भेट] (वः) तुम्हारे लिये (आहुतः) यथावत् दी गयी है। (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २ । विद्वान् सेनापति] की यही (प्रिया) पियारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेट] है ॥ ५ ॥

भावार्थ—धर्मयुद्ध के लिये शूर सेनापति के साथ सब प्रजागण प्रसन्न होकर सन्नद्ध होवें ॥ ५ ॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्ये३यं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषंधेः सह सेनया ॥ ६ ॥

शिति-पदी । सम् । द्यतु । शरव्या । इयम् । चतुः-पदी ॥
कृत्ये । अमित्रेभ्यः । भव । त्रि-संधेः । सह । सेनया ॥ ६ ॥

भाषार्थ—(शितिपदी) उजाले और अंधेरे में गतिवाली (चतुष्पदी) चारो [धर्म अर्थ काम मोक्ष] में अधिकार वाली (इयम्) यह (शरव्या) बाण विद्या में चतुर [सेना] (संद्यतु) [शत्रुओं को] काट डाले । (कृत्ये) हे छेदनशील [सेना] ! (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २ । त्रयी कुशल सेनापति] की (सेनया सह) सेना के साथ (अमित्रेभ्यः) शत्रुओं के मारने को (भव) वर्तमान हो ॥ ६ ॥

बल दाने जीवने च-इन्। उपहारः (वः) युष्मभ्यम् (आहुतः) समन्ताद् दत्तः (त्रिषन्धेः) म० २ । विदुषः सेनापतेः (आहुतिः) दानम् (प्रिया) प्रीता ॥

६—(शितिपदी) अ० ३ । २६ । १ । कुम्भपदीषु च । पा० ५ । ४ । १३६ । पादस्य लोपो ङीप् च । पादः पत् । पा० ६ । ३ । १३० । पदादेशः । शितिः शुक्लः कृष्णश्च तयोर्मध्ये पादो गमनं तस्याः सा तथा भूता । प्रकाशान्धकारमध्यगतिशीला सेना (सम्) सम्यक् (द्यतु) दो अव खण्डने । छिनत्तु (शरव्या) अ० ३ । १६ । ८ । तत्र साधुः । पा० ४ । ४ । ९८ । शरु-यत् । शरौ बाणविद्यायां कुशला (इयम्) (चतुष्पदी) अ० ६ । १० । २१ । चतुर्वर्गे धर्मार्थकाममोक्षेषु पुरुषार्थेषु पदमधिकारो यस्याः सा (कृत्ये) अ० ४ । ६ । ५ । ऋदुपधाच्चाकॢपिचृतेः । पा० ३ । १ । ११० । कृती छेदने-क्यप् । हे छेदनशीले । (अमित्रेभ्यः) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः । पा० २ । ३ । १४ । इति चतुर्थी । शत्रून् नाशयितुम् (भव) वर्तस्व (त्रिषन्धेः) म० २ । कर्मोपासनाज्ञानेषु कुशलस्य सेनापतेः (सह) (सेनया) ॥

भावार्थ—सब वीर सेनायें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिये प्रधान सेनापति के आधिपत्य में मिलकर शत्रुओं को जीतें ॥ ६ ॥

धूमाक्षी सं पतत कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषंधेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥ ७ ॥

धूम-अक्षी । सम् । पततु । कृधु-कर्णी । च । क्रोशतु ॥
त्रि-संधेः । सेनया । जिते । अरुणाः । सन्तु । केतवः ॥ ७ ॥

भाषार्थ—(धूमाक्षी) धुयें भरी आंखों वाली, (कृधुकर्णी) मन्द कानों वाली [शत्रु सेना] (सं पततु) गिर जावे (च) और (क्रोशतु) रोवे। (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २ त्रयीकुशल सेनापति] की (सेनया) सेना द्वारा (जिते) जीतने पर (अरुणाः) रक्तवर्ण [डरावने रूप] वाले (केतवः) झंडे (सन्तु) होवें ॥ ७ ॥

भावार्थ—वीर सेनापति के आग्नेय आदि शस्त्रों से बैरियों की आंखें धुंधला जावें और ढोल आदि की ध्वनि से उनके कान बहरे होजावें, इस प्रकार जीत होने पर अन्य दुष्टों को डराने को सेनापति अपनी जयपताका ऊंची करे ॥ ७ ॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति । श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥८॥

अव । अयन्ताम् । पक्षिणः । ये । वयांसि । अन्तरिक्षे । दिवि । ये । चरन्ति ॥ श्वापदः। मक्षिकाः। सम् । रभन्ताम्। आम-अदः । गृध्राः । कुणपे । रदन्ताम् ॥ ८ ॥

७—(धूमाक्षी) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् । पा० ५ । ४ । ११३ । इति षच् । षित्वाद् ङीष् । धूमपूरितनेत्रा (सम्) सम्यक् (पततु) निपद्यताम् (कृधुकर्णी) अ० ११ । ६ । ७ । मन्दश्रवणा (च) (क्रोशतु) रोदितु (त्रिषन्धेः) म० २ । त्रयीकुशलस्य सेनापतेः (सेनया) (जिते) जयकर्मणि (अरुणाः) म० २ । रक्तवर्णाः (सन्तु) (केतवः) ध्वजाः ॥

भाषार्थ—(वयांसि) वे गति वाले [प्राणी] (अव अयन्ताम्) उतरें, (ये) जो (पक्षिणः) पंख वाले हैं और (ये) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के भीतर (दिवि) प्रकाश में (चरन्ति) चलते हैं। (श्वापदः) कुत्ते के से पैर वाले [सियार आदि], (मक्षिकाः) मक्खियां (सं रभन्ताम्) चढ़ें, (आमादः) मांसाहारी (गृध्राः) गिद्ध (कुणपे) लोथ पर (रदन्ताम्) नोंचें खरोचें ॥८॥

भावार्थ—पूरी हार होने से शत्रुओं की लोथों को मांसाहारी पशु पक्षी खैंच खैंच कर खावें ॥ ८ ॥

यामिन्द्रे॑ण सं॒धां स॒मध॑त्था ब्रह्म॑णा च बृहस्पते। तया॒हमि॑न्द्र-सं॒धया॒ सर्वा॑न् दे॒वानि॒ह हु॒व इ॒तो ज॑यत॒ मामु॒तः ॥ ९ ॥

याम्। इन्द्रे॑ण। स॒म्-धाम्। स॒म्-अध॑त्थाः। ब्रह्म॑णा। च॒। बृ॒ह॒स्प॒ते॒ ॥ तया॑। अ॒हम्। इ॒न्द्र॒-सं॒धया॑। सर्वा॑न्। दे॒वान्। इ॒ह। हु॒वे॒। इ॒तः। ज॒य॒त॒। मा। अ॒मु॒तः॑ ॥ ९ ॥

भाषार्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़ों के रक्षक राजन्] (यां सन्धाम्) जिस प्रतिज्ञा को (इन्द्रेण) प्रत्येक जीव के साथ (च) और (ब्रह्मणा) ब्रह्म [परमात्मा] के साथ (समधत्थाः) तू ने ठहराया है। (अहम्) मैं [प्रजाजन] (तया) उस (इन्द्रसन्धया) प्राणियों के साथ प्रतिज्ञा से (सर्वान्) सब (देवान्) विजय चाहने वाले लोगों को (इह)

८—(अवायन्ताम्) अय गतौ। निपद्यन्ताम् (पक्षिणः) पक्षवन्तः (ये) (वयांसि) वय गतौ-असुन्। गतिमन्ति सत्त्वानि (अन्तरिक्षे) (दिवि) प्रकाशे (ये) (चरन्ति) (श्वापदः) अ० ११। ९। १०। शृगालादयः पशवः (मक्षिकाः) कीटविशेषाः (संरभन्ताम्) आक्रमन्ताम् (आमादः) मांसाहारिणः (गृध्राः) (कुणपे) शवशरीरे (रदन्ताम्) विलिखन्तु।

९—(याम्) इन्द्रेण) प्रत्येकजीवेन सह (सन्धाम्) प्रतिज्ञाम् (समधत्थाः) सम्यग् धारितवानसि (ब्रह्मणा) परमात्मना सह (च) (बृहस्पते) हे बृहतां रक्षक, राजन् (इन्द्रसन्धया) प्राणिभिः प्रतिज्ञया (सर्वान्) (देवान्)

यहां (हुवे) बुलाता हूं-" (इतः) इस ओर से (जयत) जीतो, (अमुतः) उस ओर से (मा) मत [जीतो]" ॥ ६ ॥

भावार्थ—जैसे राजा प्राणियों की रक्षा के लिये परमात्मा को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता है, वैसे ही प्रजागण निष्कपट होकर अपने वीरों से उसका सहाय करें और बैरियों से न मिलें ॥ ६ ॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषंधिं दिव्याश्रयन् ॥ १० ॥ (२८)

बृहस्पतिः । आङ्गिरसः। ऋषयः । ब्रह्म-संशिताः। असुर-क्षयणम् । वधम् । त्रि-संधिम् । दिवि । आ । अश्रयन् ॥१०॥(२८)

भाषार्थ—(आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने और (ब्रह्मसंशिताः) वेदज्ञान से तीक्ष्ण किये गये (ऋषयः) ऋषियों [धर्मदर्शकों] ने (दिवि) विजय की इच्छा में (असुरक्षयणम्) असुर नाशक (वधम्) शस्त्ररूप (त्रिषन्धिम्) त्रिसन्धि [म० २ । त्रयीकुशल सेनापति] का (आ अश्रयन्) आश्रय लिया है ॥ १० ॥

भावार्थ—सुशिक्षित राजा और विद्वानों को योग्य है कि पूर्वजों के समान धार्मिक, आस्तिक, विज्ञानी, पुरुष का आश्रय लेकर विजय पावें ॥१०॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषंधिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥ ११ ॥

विजिगीषून् (इह) अत्र (हुवे) आह्वयामि (इतः) अस्मात् स्थानात् (जयत) जयं कुरुत (मा) निषेधे (अमुतः) तस्मात् स्थानात् । शत्रुपक्षात् ॥

१०—(बृहस्पतिः) बृहतां रक्षको राजा (आङ्गिरसः) तस्येदम् । पा० ४ । ३ । १२० । अङ्गिरस्-अण् । अङ्गिरसां विज्ञानिनां शिष्यः (ऋषयः) अ० २ । ६ । १ । सन्मार्गदर्शकाः (ब्रह्मसंशिताः) अ० ३ । १६ । ८ । शो तनूकरणे—क्त । ब्रह्मणा वेदज्ञानेन सुतीक्ष्णीकृताः (असुरक्षयणम्) दुष्टानां क्षयकरम् (वधम्) शस्त्ररूपम् (त्रिषन्धिम्) म० २ । त्रयीकुशलं सेनापतिम् (दिवि) विजिगीषायाम् (आश्रयन्) श्रिञ् सेवायाम्-लङ् । आश्रितवन्तः ॥

येन॑ । अ॒सौ । गु॒प्तः । आ॒दि॒त्यः । उ॒भौ । इन्द्रः॑ । च॒ । तिष्ठ॑तः ॥
त्रि-सं॑धिम् । दे॒वाः । अ॒भ॒ज॒न्त॒ । ओज॑से । च॒ । बला॑य । च॒ ॥११॥

भाषार्थ—(येन) जिस [सेनापति] करके (गुप्तः) रक्षित (असौ) वह (आदित्यः) आदित्य [अखण्ड ब्रह्मचारी] (च) और (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्य वाला पुरुष], (उभौ) दोनों (तिष्ठतः) ठहरते हैं । [उस] (त्रिषन्धिम्) त्रिसन्धि [म० २ । त्रयीकुशल सेनापति] को (देवाः) विजय चाहने वालों ने (ओजसे) पराक्रम (च च) और (बलाय) बल के लिये (अभजन्त) भजा है ॥ ११ ॥

भावार्थ--पहिले महात्माओं के अनुकरण से अखण्ड ब्रह्मचर्य और परम ऐश्वर्य धारण करके धर्मात्मा सेनापति के आश्रय से आत्मिक और शारीरिक बल बढ़ावें ॥११॥

सर्वां॑ल्लो॒कान्त्सम॑जयन् दे॒वा आहु॑त्यान॒या ।
बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो वज्रं॒ यमसि॑ञ्चतासुर॒क्षय॑णं व॒धम् ॥ १२ ॥

सर्वा॑न् । लो॒कान् । सम् । अ॒ज॒य॒न् । दे॒वाः । आ-हु॑त्या । अ॒नया॑ ॥ बृह॒स्पतिः॑ । आ॒ङ्गि॒र॒सः । वज्र॑म् । यम् । असि॑-ञ्चत । अ॒सु॒र-क्षय॑णम् । व॒धम् ॥ १२ ॥

भाषार्थ—(सर्वान् लोकान्) सब लोकों [दृश्यमान पदार्थों] को (देवाः) विजय चाहने वालों ने (अनया) इस (आहुत्या) आहुति [बलि वा

११—(येन) त्रिषन्धिना (असौ) प्रसिद्धः (गुप्तः) रक्षितः (आदित्यः) अ० ११ । ६ । २५ । अखण्डव्रती (उभौ) (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (च) (तिष्ठतः) वर्तेते (त्रिषन्धिम्) म० २ । त्रयीकुशलं सेनापतिम् (देवाः) विजिगीषवः (अभजन्त) असेवन्त (ओजसे) आत्मिकबलं प्राप्तुम् (च) (बलाय) शारीरिकसामर्थ्यं प्राप्तुम् (च) ॥

१२—(सर्वान्) (लोकान्) दृश्यमानान् पदार्थान् (सम्) सम्यक् (अजयन्) जयेन प्राप्नुवन् (देवाः) विजिगीषवः (आहुत्या) दानक्रियया

भेट] से (सम्) सर्वथा (अजयन्) जीता है। (आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) बृहस्पति [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुरनाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है] ॥ १२ ॥

भावार्थ—जिस धर्मात्मा सेनापति का आश्रय लेकर विद्वानों ने शत्रुओं का नाश किया है, उसी से प्रीति करके चतुर मनुष्य सब विघ्नों को हटावें ? १२ ॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम्। तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥१३॥

बृहस्पतिः। आङ्गिरसः। वज्रम्। यम्। असिञ्चत। असुरक्षयणम्। वधम् ॥ तेन। अहम्। अमूम्। सेनाम्। नि। लिम्पामि। बृहस्पते। अमित्रान्। हन्मि। ओजसा ॥ १३ ॥

भाषार्थ—(आङ्गिरसः) विद्वानों के शिष्य (बृहस्पतिः) [बड़े बड़ों के रक्षक राजा] ने (यम्) जिस (असुरक्षयणम्) असुर नाशक (वधम्) शस्त्र (वज्रम्) वज्ररूप [सेनापति] को (असिञ्चत) सींचा है [बढ़ाया है]। (तेन) उसी [सेनापति] के साथ, (बृहस्पते) हे बृहस्पति ! [बड़े बड़ों के रक्षक राजन्] (अहम्) मैं [वीर पुरुष] (ओजसा) पराक्रम से (अमूम् सेनाम्) उस सेना पर (नि लिम्पामि) पोता फेरता हूं और (अमित्रान्) बैरियों को (हन्मि) मारता हूं ॥ १३ ॥

(अनया) (बृहस्पतिः) बृहतां रक्षको राजा (आङ्गिरसः) म० १०। विदुषां शिष्यः (वज्रम्) वज्ररूपम् (यम्) (असिञ्चत) सिक्तवान्। वर्धितवान् (असुरक्षयणम्) दुष्टनाशकम् (वधम्) आयुधम् ॥

१३—पूर्वार्द्धो व्याख्यातः-म० १२ (तेन) सेनापतिना (अहम्) वीरपुरुषः (अमूम्) (सेनाम्) (नि) नितराम् (लिम्पामि) लिप उपदेहे, मुचादित्वात् नुम्। कृतलेपां करोमि। विनाशयामि (बृहस्पते) हे बृहतां रक्षक राजन् (अमित्रान्) शत्रून् (हन्मि) मारयामि (ओजसा) पराक्रमेण ॥

भावार्थ—जैसे माली जल सींच कर वृक्षों को बढ़ाता है, वैसे ही धर्मज्ञ राजा वीरों को बढ़ावे और शत्रुओं का नाश करे ॥ १३ ॥

सर्वे॑ दे॒वा अ॒त्याय॑न्ति॒ ये अ॒श्नन्ति॒ वष॑ट्कृतम्। इ॒मां जु॑षध्व॒माहु॑तिमि॒तो जय॑त॒ मामुतः॑ ॥ १४ ॥

सर्वे॑। दे॒वाः। अ॒ति॒-आय॑न्ति। ये। अ॒श्नन्ति। वष॑ट्-कृ॒तम् ॥ इ॒माम्। जु॒ष॒ध्व॒म्। आ-हु॑तिम्। इ॒तः। ज॒य॒त॒। मा। अ॒मुतः॑ ॥ १४ ॥

भाषार्थ—(सर्वे) वे सब (देवाः) विजयी जन (अत्यायन्ति) यहां चले आते हैं, (ये) जो (वषट्कृतम्) (भक्ति से सिद्ध किये हुये [अन्न आदि] को (अश्नन्ति) खाते हैं। [वे तुम]। (इमाम्) इस (आहुतिम्) आहुति [बलि वा भेट] को (जुषध्वम्) सेवन करो-" (इतः) इस ओर से (जयत) जीतो, (अमुतः) (उस ओर से (मा) मत [जीतो]" ॥ १४ ॥

भावार्थ—जिस राज्य में सब लोग धर्म से अन्न आदि भोगते हों, वहां सब मिलकर शत्रुओं को न आने दें ॥ १४ ॥

इस मन्त्र का अन्तिम पाद–म० ६ में आया है ॥

सर्वे॑ दे॒वा अ॒त्याय॑न्तु॒ त्रिष॑न्धे॒राहु॑तिः प्रि॒या। सं॒धां म॑ह॒तीं र॑क्षत॒ यया॑ग्रे॒ असु॑रा जि॒ताः ॥ १५ ॥

सर्वे॑। दे॒वाः। अ॒ति॒-आय॑न्तु। त्रि-स॑न्धेः। आ-हु॑तिः। प्रि॒या ॥ स॒म्-धाम्। म॒ह॒तीम्। र॒क्ष॒त॒। यया॑। अग्रे॑। असु॑राः। जि॒ताः ॥ १५ ॥

१४—(सर्वे) (देवाः) विजिगीषवः (अत्यायन्ति) इण् गतौ। मार्गानतिक्रम्यागच्छन्ति (ये) (अश्नन्ति) भुञ्जते (वषट्कृतम्) (अ० ६। ५। १३। भक्त्या निष्पादितम् (इमाम्) (जुषध्वम्) सेवध्वम् (आहुतिम्) भक्त्या समर्पणम्। अन्यद् गतम्- म० ६ ॥

भाषार्थ—(सर्वे) सब (देवाः) व्यवहार कुशल लोग (अत्यायन्तु) यहां चले आवें, (त्रिषन्धेः) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] की (प्रिया) यह पियारी (आहुतिः) आहुति [बलि वा भेट] है। "[हे वीरो !] (महतीम्) उस बड़ी (सन्धाम्) प्रतिज्ञा को (रक्षत) रखलो, (यया) जिस [प्रतिज्ञा] से (अग्रे) पहिले (असुराः) असुर लोग (जिताः) जीते गये हैं" ॥ १५ ॥

भावार्थ—तत्त्वज्ञ पुरुष दृढ़ प्रतिज्ञा करके धर्मात्मा राजा के सहायक होकर अपना कर्तव्य पालन करें ॥ १५ ॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।
आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् १६

वायुः। अमित्राणाम् । इषु-अग्राणि। आ । अञ्चतु ॥ इन्द्रः। एषाम् । बाहून् । प्रति । भनक्तु। मा । शकन् । प्रति-धाम्। इषुम् ॥ आदित्यः । एषाम् । अस्त्रम् । वि । नाशयतु । चन्द्रमाः । युताम् । अगतस्य । पन्थाम् ॥ १६ ॥

भाषार्थ—(वायुः) वायु [बलवान् वा वायु समान शीघ्रगामी राजा (अमित्राणाम्) बैरियों के (इष्वग्राणि) बाणों के सिरों को (आ अञ्चतु) झुका देवे। (इन्द्रः) इन्द्र [बड़ा प्रतापी सेनानी] (एषाम्) इन [शत्रुओं] के (बाहून्) भुजाओं को (प्रति भनक्तु) तोड़ डाले, वे [शत्रु] (इषुम्) बाण (प्रतिधाम्) लगाने को (मा शकन्) न समर्थ होवें। (आदित्यः) आदित्य

१५—(सर्वे) (देवाः) व्यवहारिणः पुरुषाः (अत्यायन्तु) इण् गतौ। मार्गानतिक्रम्यागच्छन्तु (त्रिषन्धेः) म० २। त्रयीकुशलस्य सेनापतेः (आहुतिः) भक्तिसमर्पणम् (प्रिया) प्रीतिकरी (सन्धाम्) प्रतिज्ञाम् (महतीम्) दृढाम् (रक्षत) पालयत (यया) प्रतिज्ञया (अग्रे) पूर्वम् (असुराः) दुराचारिणः (जिताः) अभिभूताः ॥

१६—(वायुः) कृवापा०। उ० १। १। वा गतिगन्धनयोः—उण्, युगागमः। बलवान् शूरो वायुतुल्यशीघ्रगामी वा राजा (अमित्राणाम्) शत्रूणाम् (इष्वग्राणि) इषूणां शराणामग्राणि (आ अञ्चतु) अञ्चु गतिपूजनयोः, वक्रगतौ च। वक्रगतीनि करोतु (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सेनानीः (एषाम्) शत्रूणाम् (बाहून्) (प्रति) प्रतिकूलम् (भनक्तु) भञ्जो आमर्दने। भग्नान् करोतु

[अखण्ड ब्रह्मचारी, वा सूर्य समान तेजस्वी सेनाध्यक्ष] (एषाम्) इनके (अस्त्रम्) अस्त्रों [भाले वाण तरवार आदि] को (वि नाशयतु) नष्ट कर देवे, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा [आनन्द दाता व चन्द्र समान शान्तिप्रद सेनापति] (पन्थाम् अगतस्य) मार्ग पर न चलने वाले [शत्रु] का (युताम्) बन्धन करे ॥ १६ ॥

भावार्थ—राजा आदि सब सेनापति लोग अपने अपने घातों से शत्रुओं के बिनाश का प्रयत्न करें ॥ १६ ॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥१७॥

यदि । प्र-ईयुः । देव-पुराः । ब्रह्म । वर्माणि । चक्रिरे ॥ तनू-पानम् । परि-पानम् । कृण्वानाः । यत् । उप-ऊचिरे । सर्वम् । तत् । अरसम् । कृधि ॥ १७ ॥

भाषार्थ—(यदि) जो [शत्रुओं ने] (देवपुराः) राजा के नगरों पर (प्रेयुः) चढ़ाई की है, और (ब्रह्म) हमारे धन को (वर्माणि) अपने रक्षा साधन (चक्रिरे) बनाया है। (तनूपानम्) हमारे शरीर रक्षा साधन को (परिपाणम्) अपना रक्षा साधन (कृण्वानाः) बनाते हुये उन लोगों ने (यत्) जो कुछ (उपोचिरे) डींग मारी है, (तत् सर्वम्) उस सब को (अरसम्) नीरस वा फींका (कृधि) कर दे ॥ १७ ॥

भावार्थ—राजा उपद्रवी शत्रुओं को जीत कर प्रजा की सदा रक्षा करे ॥ १७ ॥

यह मन्त्र आ चुका है—अथर्व० ५ । ८ । ६ ॥

(मा शकन्) ते शक्ता न भवन्तु (प्रतिधाम्) छान्दसं रूपम्। प्रतिधातुम्। आरोपितुम् (इषुम्) वाणम् (आदित्यः) अ० ११ । ४ । २५ । अखण्डब्रती सूर्यतुल्यतेजस्वी वा सेनाध्यक्षः (एषाम्) (अस्त्रम्) आयुधजातम् (वि नाशयतु) विनष्टं करोतु (चन्द्रमाः) अ० ५ । २४ । १० । आनन्दप्रदः । चन्द्र-समानशान्तिकरो वा सेनापतिः (युताम्) युञ् बन्धने—लोटि छान्दसं रूपम्। युनीताम्। बध्नातु। बन्धनं करोतु (अगतस्य) अप्राप्तस्य (पन्थाम्) पन्थानम्। सन्मार्गम् ॥

१७—अयं मन्त्रो व्याख्यातः—अ० ५ । ८ । ६ ॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषंधे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥ १८ ॥

क्रव्य-अदा । अनु-वर्तयन् । मृत्युना । च । पुरः-हितम् ॥ त्रि-संधे । प्र । इहि । सेनया । जय । अमित्रान् । प्र । पद्यस्व १८

भाषार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [म० २ । त्रयीकुशल राजन्] [शत्रुओं के लिये] (क्रव्यादा) मांस भक्षक [कष्ट] (च) और (मृत्युना) मृत्यु के साथ (पुरोहितम्) पुरोहित [अग्रगामी पुरुष] का (अनुवर्तयन्) अनुवर्त्ती होकर तू (सेनया) अपनी सेना के साथ (प्र इहि) चढ़ाई कर, (अमित्रान्) बैरियों को (जय) जीत और (प्र पद्यस्व) आगे बढ़ ॥ १८ ॥

भावार्थ—राजा को योग्य है कि आप्त सत्य प्रतिज्ञा वाले पुरुषों के समान शत्रुओं के कष्ट देने और मारने के अस्त्र शस्त्र आदि साधन संग्रह करके चढ़ाई करे ॥ १८ ॥

त्रिषंधे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥ १९ ॥

त्रि-संधे । तमसा । त्वम् । अमित्रान् । परि । वारय ॥ पृषदाज्य-प्रनुत्तानाम् । मा । अमीषाम् । मोचि । कः । चन ॥१९॥

भाषार्थ—(त्रिषन्धे) हे त्रिसन्धि ! [म० २ । त्रयीकुशल राजन्] (त्वम्) तू (तमसा) अन्धकार से (अमित्रान्) बैरियों को (परि वारय)

१८—(क्रव्यादा) अ० ३ । २१ । ८ । मांसभक्षकेन कष्टेन (अनुवर्तयन्) अनुगच्छन् (मृत्युना) मृत्युसाधनेन सह (च) (पुरोहितम्) अ० ३ । १९ । १ । अग्रगामिनं पुरुषम् (त्रिषन्धे) म० २ । हे त्रयीकुशल राजन् (प्रेहि) प्रकर्षेण गच्छ (सेनया) (जय) (अमित्रान्) शत्रून् (प्र पद्यस्व) पद गतौ । अग्रे गच्छ ॥

१९— (त्रिषन्धे) म० २ । हे त्रयीकुशल राजन् (तमसा) आयुधानामन्धकारेण (त्वम्) (अमित्रान्) शत्रून् (परि वारय) सर्वतो वेष्टय

घेर ले। (पृषदाज्यप्रणुत्तानाम्) दही घृत [आदि खाद्य वस्तुओं] से हटाये गये (अमीषाम्) इन [शत्रुओं] में से (कश्चन) कोई भी (मा मोचि) न छुटे ॥ १६ ॥

भावार्थ—राजा आग्नेय आदि अस्त्र शस्त्रों से अचेत और खान पान आदि पदार्थों से शून्य करके शत्रुओं को हरा देवे ॥ १६ ॥

अन्तिम पाद आचुका है-अ० ३। १६। ८। तथा ११। ६। २०॥

शि॒ति॒प॒दी सं प॑तत्व॒मित्रा॑णाम॒मूः सिचः॑ ।

मु॒ह्य॑न्त्व॒द्यामूः सेना॑ अ॒मित्रा॑णां न्यर्बु॒दे ॥ २० ॥ (२८)

शि॒ति॒-प॒दी । सम् । प॒त॒तु॒ । अ॒मित्रा॑णाम् । अ॒मूः । सिचः॑ ॥
मु॒ह्य॑न्तु । अ॒द्य । अ॒मूः । सेनाः॑ । अ॒मित्रा॑णाम् । नि॒-अ॒र्बु॒दे॒ ॥२०॥

भाषार्थ—(शितिपदी) उजाले और अन्धकार में गति वाली [सेना] (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) उन (सिचः) सींचने वाली [सहायक सेनाओं] पर (सं पततु) टूट पड़े। (न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि ! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अद्य) आज (अमित्राणाम्) वैरियों की (अमूः) वे (सेनाः) सेनायें (मुह्यन्तु) अचेत होजावें ॥ २० ॥

भावार्थ—चतुर सेनापति शत्रुओं की सहायक सेनाओं को तुरन्त रोककर व्याकुल करदेवे ॥ २० ॥

मू॒ढा अ॒मित्रा॑ न्यर्बुदे ज॒ह्ये॑षां वरं॑वरम् ।

अ॒नया॑ जहि॒ सेन॑या ॥ २१ ॥

(पृषदाज्यप्रणुत्तानाम्) दधिघृतादिखाद्यवस्तूनां सकाशात् प्रक्षिप्तानाम् (अमीषाम्) शत्रूणाम् (मा मोचि) मुक्तो मा भूत् (कश्चन) एकोऽपि ॥

२०-(शितिपदी) म० ६। प्रकाशान्धकारमध्यगतिशीला सेना (सं पततु) झटिति प्राप्नोतु (अमित्राणाम्) शत्रूणाम् (अमूः) दृश्यमानाः (सिचः) अ० ११। ६। १८। सेचनशीलाः। वर्धयित्रीः सेनाः (मुह्यन्तु) मूढा भवन्तु (अद्य) अस्मिन् दिने (अमूः) (सेनाः) (अमित्राणाम्) (न्यर्बुदे) अ० ११। ६। ४। हे नित्यपुरुषार्थिन् राजन् ॥

मूढाः। अमित्राः। नि-अर्बुदे। जहि। एषाम्। वरम्-वरम्॥ अनया। जहि। सेनया॥ २१॥

भाषार्थ—(न्यर्बुदे) हे न्यर्बुदि! [नित्य पुरुषार्थी राजन्] (अमित्राः) बैरी (मूढाः) घबड़ाये हुये हैं, (एषाम्) इनमें से (वरंवरम्) अच्छे को (जहि) मार। (अनया सेनया) इस सेना से [उन्हें] (जहि) मार॥२१॥

भावार्थ—सेनापति अपनी सेना से शत्रुओं को अचेत करके उन के बड़े बड़े वीरों को मारे॥ २१॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम्॥ २२॥

यः। च। कवची। यः। च। अकवचः। अमित्रः। यः। च। अज्मनि॥ ज्या-पाशैः। कवच-पाशैः। अज्मना। अभि-हतः। शयाम्॥ २२॥

भाषार्थ—(यः च) जो कोई (कवची) कवच वाला है, (च) और (यः) जो कोई (अकवचः) बिना कवच वाला है, (च) और (यः) जो (अमित्रः) बैरी (अज्मनि) दौड़ झपट में है। (ज्यापाशैः) धनुषों की डोरी के फन्दों से और (कवचपाशैः) कवचों के फन्दों से (अज्मना) दौड़ झपट के साथ (अभिहतः) मार डाला गया वह [शत्रु] (शयाम्) सोवे॥ २२॥

भावार्थ—संग्राम के बीच सेनापति दौड़ झपट करके दौड़ते झपटते शत्रुओं को घेरकर मारे॥ २२॥

२१—(मूढाः) अचेतसः (अमित्राः) शत्रवः (न्यर्बुदे) म० २०। हे नित्यपुरुषार्थिन् राजन् (जहि) मारय (एषाम्) (वरंवरम्) श्रेष्ठं श्रेष्ठं वीरम् (अनया) स्वकीयया (जहि) (सेनया)॥

२२—(यः) (च) (कवची) कवचधारी (यः) (च) (अकवचः) कवचरहितः (अमित्रः) पीडकः शत्रुः (यः) (च) (अज्मनि) अ० ६। ६७। ३। अज गतिक्षेपणयोः-मनिन्। गमनक्षेपणव्यवहारे। संग्रामे (ज्यापाशैः) मौर्वीपाशैः (कवचपाशैः) वर्मबन्धनपाशैः (अज्मना) गमनक्षेपणव्यापारेण (अभिहतः) विनाशितः (शयाम्) तलोपः। शेताम्॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्ताँ अर्बुदे हतांछ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥ २३ ॥

ये । वर्मिणः । ये । अवर्माणः । अमित्राः । ये । च । वर्मिणः ॥
सर्वान् । तान् । अर्बुदे । हतान् । श्वानः । अदन्तु । भूम्याम् २३

भाषार्थ—(ये) जो (अमित्राः) शत्रु लोग (वर्मिणः) वर्म [कवच विशेष] वाले हैं, (ये) जो (अवर्माणः) विना वर्म वाले हैं, (च) और (ये) जो (वर्मिणः) झिलम वाले हैं। (अर्बुदे) हे अर्बुदि [शूर सेनापति] (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (श्वानः) कुत्ते (भूम्याम्) रण भूमि पर (अदन्तु) खावें ॥ २३ ॥

भावार्थ—शूर सेनापति से मारे गये सब शत्रुओं की लोथों को कुत्ते आदि खावें ॥ २३ ॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥ २४ ॥

ये । रथिनः । ये । अरथाः । असादाः । ये । च । सादिनः ॥
सर्वान् । अदन्तु । तान् । हतान् । गृध्राः । श्येनाः । पतत्रिणः २४

भाषार्थ—(ये) जो [शत्रु] (रथिनः) रथ वाले हैं, (ये) जो (अरथाः) विना रथ वाले हैं, (ये) जो (असादाः) विना वाहन वाले [पैदल]

२३—(ये) (वर्मिणः) शस्त्रवारककवचविशेषेण युक्ताः (ये) (अवर्माणः) वर्मरहिताः (अमित्राः) शत्रवः (ये) (वर्मिणः) कवचवर्म-व्यतिरिक्तेण शस्त्रनिवारकेण तनुत्राणेन युक्ताः (सर्वान्) (तान्) (अर्बुदे) अ० ११। ६। १। हे शूरसेनापते (हतान्) मारितान् (श्वानः) कुक्कुराः (अदन्तु) भक्षयन्तु (भूम्याम्) रणभूमौ ॥

२४—(ये) शत्रवः (रथिनः) रथारूढाः (ये) (अरथाः) रथरहिताः (असादाः) अवाहनाः। पदातयः (ये) (च) (सादिनः) षद्लृ विशरण-

हैं, (च) और जो (सादिनः) वाहन वाले [घुड़चढ़े, हाथी आदि पर चढ़े हुये] हैं। (तान् सर्वान्) उन सब (हतान्) मारे गयों को (गृध्राः) गिद्ध (श्येनाः) श्येन [बाज आदि] (पतत्रिणः) पक्षीगण (अदन्तु) खावें ॥ २४ ॥

भावार्थ—रणक्षेत्र में मर कर पड़े हुये शत्रु के सेनादलों को मांसाहारी पक्षी खावें ॥ २४ ॥

सहस्रंकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् । विविद्धा ककजाकृता ॥ २५ ॥

सहस्र-कुणपा । शेताम् । आमित्री । सेना । सम्-अरे । वधानाम् ॥ वि-विद्धा । ककजा-कृता ॥ २५ ॥

भाषार्थ—(वधानाम्) हथियारों की (समरे) मारामार में (विविद्धा) छेद डाली गयी, (ककजाकृता) प्यास की उत्पति से सतायी गयी, (सहस्रकुणपा) सहस्रों लोथों वाली (आमित्री) वैरियों की (सेना) सेना (शेताम्) सो जावे ॥२५॥

भावार्थ—वीरों की मार धाड़ से शत्रु सेना अनेक प्रकार से व्याकुल होकर मृत्यु पावे ॥ २५ ॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् । य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥ २६ ॥

गत्यवसादनेषु—णिनि । अश्वारूढाः । गजारूढादयः (सर्वान्) (अदन्तु) भक्षयन्तु (तान्) शत्रून् (हतान्) मारितान् (गृध्राः) मांसाहारिणः पक्षिविशेषाः (श्येनाः) अ० ३ । ३ । ३ । शीघ्रगतयः श्येनादयः (पतत्रिणः) पक्षिणः ॥

२५—(सहस्रकुणपा) असंख्यातशवयुक्ता (शेताम्) (आमित्री) अमित्र-अण् । शात्रवी (सेना) (समरे) युद्धे । प्रहारे (वधानाम्) आयुधानाम् (विविद्धा) विविधं ताडिता (ककजाकृता) कक+जा+कृता । कक गर्वे चापल्ये तृष्णायां च-अच् । जन जनने डप्रत्ययो भावे, टाप् । कृञ् हिंसायाम् क्त, टाप् । ककस्य पिपासाया जया उत्पत्त्या कृता हिंसिता ॥

मर्माविधम् । रोरुवतम् । सु-पर्णाः । अदन्तु । दुः-चितम् । मृदितम् । शयानम् ॥ यः । इमाम् । प्रतीचीम् । आ-हुतिम् । अमित्रः । नः । युयुत्सति ॥ २६ ॥

भाषार्थ—(सुपर्णाः=सुपर्णाः) शीघ्रगामी पक्षी [गिद्ध आदि] (मर्माविधम्) मर्म स्थानों में छिदे हुये, (रोरुवतम्) चिल्लाते हुये (मृदितम्) कुचले हुये, (शयानम्) पड़े हुये, (दुश्चितम्) उस दुष्ट विचार वाले को (अदन्तु) खावें । (यः) जो (अमित्रः) शत्रु (नः) हमारी (इमाम्) इस (प्रतीचीम्) प्रत्यक्ष प्राप्त हुई (आहुतिम्) आहुति [बलि वा भेट] को (युयुत्सति) झगड़ना चाहता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य प्रत्यक्ष सत्य धर्म के विरुद्ध आचरण करें, वे युद्ध स्थल में बध किये जावें, जिससे अन्य दुष्ट दुराचार न करें ॥ २३ ॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषंधिना ॥ २७ ॥ (२७)

याम् । देवाः । अनु-तिष्ठन्ति । तस्याः । न । अस्ति । वि-राधनम् ॥ तया । इन्द्रः । हन्तु । वृत्र-हा । वज्रेण । त्रि-संधिना २७॥

२६ (मर्माविधम्) व्यध ताडने-कर्मणि क्विप् । ग्रहि ज्यावयि व्यधि० । पा० । ६ । १ । १६ । इति सम्प्रसारणम् । नहिवृतिवृषिव्यधि० । पा० ६ । ३ । ११६ । पूर्व पदस्य दीर्घः क्विप्रत्यये । मर्मसु विध्यमानम् (रोरुवतम्) रु शब्दे-यङ्लुकि-शतृ । रोरूयमाणम् । अत्यन्तं शब्दायमानम् (सुपर्णाः) सुपां सुपो भवन्ति । वा । पा० ७ । १ । ३९ । प्रथमास्थाने तृतीया । सुपर्णाः । शीघ्रगामिनः पक्षिणः । गृध्रादयः (अदन्तु) (दुश्चितम्)चिती संज्ञाने-क्विप् । दुष्टा चित्, ज्ञानं यस्य तम् । दुष्टविचारयुक्तम् (मृदितम्) चूर्णीकृतम् (शयानम्) भूमौ वर्तमानम् (यः) (इमाम्) (प्रतीचीम्) अ० ३ । २६ । ३ । प्रति+अञ्चु गतिपूजनयोः-क्विन्, ङीप् । प्रत्यक्षमञ्चन्तीं गच्छन्तीम् (आहुतिम्) दानक्रियाम् (अमित्रः) शत्रुः (नः) अस्माकम् (युयुत्सति) योद्धमिच्छति ॥

भाषार्थ—(याम्) जिस [आहुति—म० २६] को (देवाः) विजय चाहने वाले पुरुष (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं, (यस्याः) जिस [आहुति] की (विराधनम्) निष्फलता (न अस्ति) नहीं है। (तया) उस [आहुति] से (वृत्रहा) अन्धकार नाशक (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाला पुरुष (त्रिषन्धिना) त्रिसन्धि [म० २। त्रयीकुशल सेनापति] के साथ (वज्रेण) वज्रद्वारा [शत्रुओं को] (हन्तु) मारे॥ २७॥

भावार्थ—जैसे अचूक नीति और प्रतिज्ञारूप आहुति को शूरवीर पुरुष परोपकार में दान करते हैं, उसी प्रकार सब मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान में कुशल और पुरुषार्थी जन के सहाय से विघ्नों का नाश करें॥ २७॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

इत्येकादशं काण्डम्॥

इति श्रीमद्राजाधिराजप्रथितमहागुणमहिम **श्री सयाजीराव गायकवाड़ाधिष्ठित** बड़ोदेपुरीगतश्रावणमासपरीक्षायाम्

ऋक्सामाथर्ववेदभाष्येषु लब्धदक्षिणेन श्रीपण्डित

क्षेमकरणदास त्रिवेदिना

कृते अथर्ववेदभाष्ये एकादशं काण्डं समाप्तम्॥

इदं काण्डं प्रयागनगरे मार्गशीर्षमासे कृष्णामावास्यायां तिथौ १९७४ तमे [चतुःसप्तत्युत्तर एकोनविंशतिशतके] विक्रमीये संवत्सरे धीरवीरचिरप्रतापिमहायशस्वि **श्रीराजराजेश्वरपञ्चमजार्जमहोदयस्य** सुसाम्राज्ये सुसमाप्तिमगात्॥

मुद्रितम्—मार्गशीर्षशुक्ला ७ संवत् १९७४ ता० २० दिसंबर १९१७॥

२७—(याम्) आहुतिम् (देवाः) विजिगीषवः (अनुतिष्ठन्ति) आचरन्ति (यस्याः) (न) (अस्ति) (विराधनम्) निष्फलता। असिद्धिः (तया) आहुत्या (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् पुरुषः (हन्तु) मारयतु (वृत्रहा) अन्धकारनाशकः (वज्रेण) वज्रद्वारा (त्रिषन्धिना) म० २। त्रयीकुशलेन सेनापतिना सह॥

अथर्ववेदभाष्य सम्मतियां

श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, गुरुदत्त भवन लाहौर अन्तरंग सभा के प्रस्ताव संख्या ३ तिथि ६-१२-७३ की प्रति।

ला० दीवान चन्द प्रतिनिधि आर्य समाज बटाला का प्रस्ताव, कि पं० क्षेमकरणदास को अथर्ववेद भाष्य के लिये ४०) मासिक की सहायता दी जावे उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि २५) मासिक की सहायता एक वर्ष के लिये दी जावे और उसके परिवर्तन में उतने मूल्य की पुस्तकें उनसे स्वीकार की जावें॥

श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध, स्थान बुलन्दशहर, अन्तरंग सभा ता० ४ जून १८१६ ई० के निश्चय संख्या १३ (अ) और ब० की लिपि।

(अ) समाजों में गश्ती चिट्ठी भेजी जावें कि वे इस भाष्य के ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनावें।

(ब) सभा सम्प्रति १ वर्ष पर्यन्त १५) मासिक एक क्लर्क के लिये पं० क्षेमकरणदास जी को देवे, जिसका बिल उक्त पंडित जी कार्यालय सभा में भेजते रहें। इस धन के बदले में पंडित जी उतने धन की पुस्तकें सभा को देंगे।

लिपि गश्ती चिट्ठी श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा जो पूर्वोक्त निश्चय के अनुसार समाजों को भेजी गयी (संख्या ५८७६ प्राप्त २० जूलाई १८१६ ई०)

॥ ओ३म् ॥

मान्यवर नमस्ते !,

आपको ज्ञात होगा कि आर्यसमाज के अनुभवी वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी गत कई वर्षों से बड़ी योग्यता पूर्वक अथर्ववेद का भाष्य कर रहे हैं। आपने महर्षि दयानन्द के अनुसार ही इस भाष्य को करने का प्रयत्न किया है। भाष्य कांडों में निकलता है अब तक ६ कांड निकल चुके हैं। आर्य समाज के वैदिक साहित्य सम्बन्ध में वस्तुतः यह बड़ा महत्त्वपूर्णकार्य होरहा है। त्रिवेदी महाशय के भाष्य की जानकारों ने खूब प्रशंसा की है। परन्तु खेद है कि अभी आर्यसमाज में उच्च कोटिके साहित्य को पढ़ने की ओर लोगों की बहुत कम रुचि है। लागत तक वसूल नहीं होती। वेदों का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना आर्यमात्र का प्रधान कर्तव्य है। अतएव सविनय निवेदन है कि वैदिक धर्मीमात्र श्री त्रिवेदी जी को उनके महत्त्वपूर्ण गुरुतर कार्य में साहस प्रदान करें। स्वयम् ग्राहकबनें और दूसरों को बनावें। ऐसा करने से भाष्यकार महाशय उसे छापने की अर्थ सम्बन्धिनी चिन्ताओं से मुक्त होकर भाष्य को और भी अधिक उत्तमता से सम्पादन करने की ओर प्रवृत्त होंगे। आशा है कि वेदों के प्रेमी उक्त प्रार्थना पर ध्यान दे इस ओर अपना कुछ कर्त्तव्य समझेंगे। प्रत्येक आर्य के घर में वेदों के भाष्य होने चाहिये। समाजके पुस्तकालयों में तो उनका रखना बहुत ही ज़रूरी है। भाष्य के प्रत्येक कांड का मूल्य त्रिवेदी जी ने बहुत ही थोड़ा रक्खा है।

त्रिवेदी जी से पत्र व्यवहार ५२ लुकरगंज, प्रयाग के पते पर कीजिये। जल्दी से भाष्य को मंगाइये।

भवदीय—

नन्दलाल सिंह,

B. Sc. LL. B. उपमन्त्री।

दो पुस्तक हवन मन्त्राः की जिसका मूल्य ।)॥ है कृपाकर भेजदीजिये मेरी एक बहिन को आवश्यकता है।

श्रीयुत पंडित—**महावीर प्रसाद द्विवेदी**—कानपुर, सम्पादक सरस्वती प्रयाग, फरवरी १९१३।

अथर्ववेद भाष्य—श्रीयुत क्षेमकरणदास त्रिवेदी जी के वेदार्थज्ञान और श्रमका यह फल है कि आपने अथर्ववेद का भाष्य लिखना और क्रम क्रम से प्रकाशित करना आरम्भ किया है... बड़ी विधि से आप भाष्य की रचना कर रहे हैं। स्वर सहित मूल मन्त्र, पद पाठ, हिन्दी में सान्वय अर्थ, भावार्थ, पाठान्तर, टिप्पणी आदि से आपने अपने भाष्य को अलंकृत किया है...आपकी राय है कि "वेदों में सार्वभौम विज्ञान का उपदेश है"। आपका भाष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के ढंग का है।

श्रीयुत पंडित—**गणेश प्रसाद शर्मा** सम्पादक भारत सुदशाप्रवर्त्तक फतहगढ़, ता० १२ अप्रैल १९१३।

हर्ष की बात है कि जिस वेद भाष्य की बड़ी आवश्यकता थी, उसकी पूर्ति का आरम्भ होगया। वेद भाष्य बड़ी उत्तम शैली से निकलता है। प्रथम मन्त्र पुनः पदार्थ युक्त भाषार्थ, उपरान्त भावार्थ, और नोट में सन्देह निवृत्ति के लिये धात्वर्थ भी व्याकरण व निरुक्त के आधार पर किया गया है, वैदिक धर्म के प्रेमियों को कम से कम यह समझ कर भी ग्राहक होना चाहिये कि उनके मान्य ग्रन्थ का अनुवाद है और काम पड़े पर उससे कार्य लिया जा सकता है।

बाबू **कालिका प्रसाद जी**—सिल्क मर्चेन्ट कमनगढ़ा, बनारस सिटी संख्या ५८९ ता० २७-३-१३।

आप को भेजा अथर्ववेदभाष्य का वी० पी० मिला, मैं आप का भाष्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, परमेश्वर सहाय करे कि आप इसे इसी प्रकार पूर्ण करें। आप बहुत काम एक साथ न छेड़कर इसी की तरफ़ समाधि लगाकर पूर्ण करेंगे। मेरा नाम ग्राहकों में लिख लीजिये, जब २ अङ्क छपें मेरे पास भेज देना।

श्रीयुत महाशय **रावत हरप्रसाद सिंहजी वर्मा**, मु० एकडला पोस्ट किशुनपुर, ज़िला फ़तेहपुर हसवा, पत्र ६ दिसम्बर १९१३।

वास्तव में आप का किया हुआ "अथर्ववेद भाष्य" निष्पक्षता का आश्रय लिया चाहता है। आपने यह साहस दिखाकर साहित्य भण्डार की एक बड़ी भारी न्यूनता को पूर्ण कर दिया है। ईश्वर आपको वेद भण्डार के आवश्यकीय कार्यों के सम्पादन करने का बल प्रदान करें।

श्रीयुत महाशय **पंडित श्रीधर पाठक जी, (सभापति हिन्दी साहित्य सम्मेलन लखनऊ)**—मनोविनोद आदि अनेक ग्रन्थों के कर्ता सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट सेक्रेटरियट, पी० डब्ल्यू० डी० श्री प्रयागराज; पत्र ता० १७-६-१३।

आपका अथर्ववेद भाष्य अवलोकन कर चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। आप की यह पाण्डित्य-पूर्ण कृति वेदार्थ जिज्ञासुओं को बहुत हितकारिणी होगी। आप का व्याख्याक्रम परम मनोरम तथा प्रांजल है. और ग्रन्थ सर्वथा उपादेय है।

प्रकाश लाहौर १२ आषाढ़ संवत् १९७३ (२५ जून १९१६—लेखक श्रीयुत पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी)

हम पण्डित क्षेमकरणदास जी का धन्यवाद करने से नहीं रह सकते—स्वामी (दयानन्द) जी ने लिखा है-कि वेद का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है—इसके अनुकूल श्री पंडित जी अपना समय वेद अध्ययन में लगाते हैं—और आर्यों के लिये परम उपयोगी पुस्तक प्रकाशित करने में पुरुषार्थ करते रहते हैं—पंडित जी ने इस समय तक हवन मन्त्रों तथा रुद्राध्याय का भाषा में अर्थ प्रसिद्ध किया है-जो कि आर्यों के लिये पठन पाठन में उपयोगी है। इस सम्बन्ध में यह अथर्ववेद के पांच कांड छपवा कर निःसन्देह बड़ा लाभ पहुंचाया है। आर्यों की जो शिक्षा प्रणाली थी उसको टूटे आज पांच हज़ार वर्ष हो चुके हैं। ऐसे अंधेरे के समय में स्वामी जी ने वेद के ऊपर लोगों के भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न करके एक धर्म का दीपक प्रकाशित किया। परन्तु हमें शोक यह है वेद के पढ़ने पढ़ाने में आर्यलोग इतना समय नहीं लगाते जितना वे प्रबन्ध सम्बन्धी झगड़ों की बातों में लगाते हैं। हमारा विश्वास है कि जब तक पं० क्षेमकरणदास जी जैसे वेदाभ्यासी पुरुषार्थी लोग अपना समय वेदों के खोज में न लगावेंगे तब तक आर्य समाज का कोई गौरव नहीं बढ़ सकता। अथर्ववेद के अर्थ खोजने में बड़ी कठिनता है। इसके ऊपर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं होता. जो इस समय तक छपा हुआ है वह बड़ी अधूरी दशा में है, सूक्त के सूक्त ऐसे हैं कि जिनके ऊपर अब तक कोई टीका नहीं हुई।.. ....इस समय जो पांच कांडों का भाष्य पंडित जी ने प्रकाशित किया है उसके लिखने का ढंग बड़ा अच्छा और सुगम है। प्रथम उन्हों ने सूक्त के तथा मन्त्रों के देवता दिये हैं—पश्चात् छन्द...विद्वानों का यही काम है कि वह जैसे जैसे साधन उनके पास हों वैसा वैसा सोचकर वेद मन्त्रों का अर्थ प्रकाशित करें। ऐसे सैकड़ों प्रयत्न जब होंगे, तब सच्चे अर्थ खोज करना आगामी विद्वानों को सरल होगा। परन्तु इस समय बड़ी भारी कठिनाई यह है कि प्रकाशित पुस्तकों के लिये पर्याप्त संख्या में ग्राहक नहीं मिलते हैं और विद्वानों के पास सम्पत्ति का अभाव होने के कारण हानि के डर से पुस्तकों का प्रकाशित करना बन्द होता है। इसलिये सब आर्यों को परम उचित है कि पंडित क्षेमकरणदास जी जैसे विद्वान् पुरुषार्थी के ग्रन्थ मोल लेकर उनको अन्य ग्रन्थ प्रकाशित करने की आशा देते रहें। त्रिवेदी जी कोई धनाढ्य पुरुष नहीं हैं, उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति जो कुछ उनके पास है लगा दी है.........त्रिवेदी जी ने जो कुछ किया है वह वैदिक धर्म के प्रेम से प्रवृत्त होकर-इस लिये न केवल सब आर्य पुरुषों का कर्त्तव्य है कि इस भाष्य को मोल लेकर त्रिवेदी जी को उत्साहित करें किन्तु धनाढ्य आर्य पुरुषों का यह भी कर्त्तव्य है कि उनकी आर्थिक सहायता करें।

The VIDYADHIKARI (Minister of Education), *Baroda State, letter No.* 624 *dated 6th February* 1913.

....It has been decided to purchase 20 copies of your book entitled अथर्ववेद भाष्यम्. It has been sanctioned for use of the library and the drize distribution. Please send them...also add on the address lable "For Encouragement Fund."

RAI THAKUR DATTA RETIRED DISTRICT JUDGE, Dera Ismail Khan

Letter dated March 25th, 1914.

The Atharva Veda Bhashya:—It is a gigantic task and speaks volumes for your energies and perseverance that you should have undertaken at an advanced age. I wish I had a portion of your will-power.

Letter dated 30th April 1914.

I very much admire your labour of lore and hope...the venture will not fail for want of pecuniary support.

THE MAGISTRATE OF ALLAAABAD.

Letter No. 912 dated 21st May 1915.

Has the honour to request him to be so good as to send a copy each of the 1st and 3rd Kandas of Atharva Veda Bhashya to this office for transmission to the India Office, London.

THE ARYA PATRIKA LAHORE, APRIL 18, 1914.

THE *Atharva Veda Bhashya* or commentary on the *Atharva Veda* which is being published in parts by Pandit Khem Karan Das Trivedi, does great credit to his energy, perseverance and scholarship. The first part contains the Introduction and the first *Kanda* or Book. There is a learned disquisition on the origin of the Vedas and the pre-eminent position in Sanskrit literature .....The arrangement is good, the original *Mantra* is followed by a literal translation and their *bhavarth* or purport in Arya Bhasha. The footnotes are copious; they give the derivation and meaning in Sanskrit of the various words quoting the authority of *Ashtadhyayi* of Panini, *Unadikosha* of Dayananda, *Nirukta* of Yaska, *Yoga Darshana* of Patanjali and other standard ancient works......The Pandit appears to have laboured very hard and the Book before us does credit to his erudition; scholars may not agree with certain of his renderings, but like a true Arya, who venerates the Vedas, he has made an honest attempt to find in the Vedic verses something which will elevate and ennoble mankind. Cross references to verses where the word has already occurred in this Veda are also given to enable the reader to compare notes. There can be no finality in Vedic interpretation, but honest attempts like these which shall render the task easy to others are commendable. We are glad to call public attention to this scholarly work, and hope that Pandit Khem Karn Das Trivedi will get the encouragement which he so richly deserves......Our earnest request is that the revered Pandit will go on with this noble work and try to finish the whole before he is called to eternal rest......

N.B.—The printing and paper are good, the price is moderate.